Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Ksaan Helpline
+91-7415538151

गौरवपूर्ण प्रकाशन-द्वितीय दशक की ओर अग्रसर

मध्य भारत कृषक भारती

ISSN-2582-5976

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-16 अंक-11 ग्वालियर, फरवरी 2022 मूल्य 30 रुपए

गणतंत्र दिवस : प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी 26 जनवरी, 2022 को नई दिल्ली में 73वें गणतंत्र दिवस परेड 2022 के अवसर पर राष्ट्रीय युद्ध स्मारक में शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए।

कृषि में नवाचार बना किसानों के लिए फायदे का सौदा

रायपुरः छत्तीसगढ़ में अब किसान पारम्परिक खेती से हटकर नवाचार की दिशा में काम कर रहे हैं। इन सबके बीच कोरिया जिले में कृषि को लेकर कई दूसरे नवाचार भी हो रहे हैं और कृषि में नवाचार ने कोरिया जिले की अलग पहचान कायम कर दी है। दरअसल कोरिया में लेमन ग्राम और खस की खेती से किसान आर्थिक समृद्धि की ओर बढ़ रहे हैं।

एमडी बायोकॉल्स "कृषि जन नायक पुरस्कार'

एमडी बायोकॉल्स प्राइवेट लिमिटेड को केन्द्रीय कृषि मंत्री नरेन्द्र सिंह तोमर द्वारा 73वें गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर दिल्ली में जीटीवी के मंच पर 20 लाख से भी अधिक किसानों को ऑर्गेनिक खेती के प्रति पूरे भारत वर्ष में जागरूकता फैलाने के साथ-साथ किसान बेहतरीन ऑर्गेनिक और बायो प्रोडक्ट्स प्रदान करने के लिए "कृषि जन नायक पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया। एमडी बायोकॉल्स प्राइवेट लिमिटेड के डायरेक्टर राजेश सचदेवा ने यह पुरस्कार अपने सभी डिस्ट्रीब्यूटर, रिटेलर्स और सभी कर्मचारियों को समर्पित किया है।

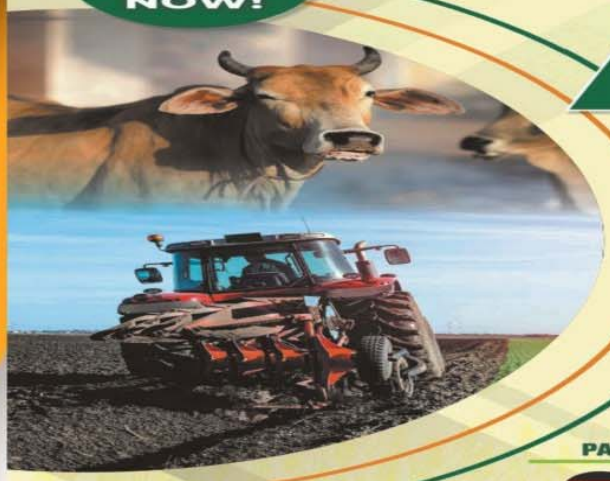

BOOK YOUR STALL NOW!
4th FarmTech Asia
18 19 20 21 February 2022
Venue : Agriculture College Ground, Indore, Madhya Pradesh
Largest and Most Successful International Agriculture Exhibition of Madhya Pradesh
International Exhibition & Conference On Agriculture, Horticulture, Dairy & Food Processing Technology
GLIMPSES OF FARMTECH ASIA 2019
Visitors Attended from More than 16 States of India
More than 160 Companies Participated
Participation of Companies From India and 6 other Countries
PARTICIPANTS FROM COUNTRIES
GERMANY
INDIA
ISRAEL
ITALY
JAPAN
SWEDEN
USA
Organiser:
Co-Organiser:
Supported by:
Stall Booking Contact Details:
Mr. Pradeep Thakor Mobile: +91 9998889578 Email: mktg@farmtechasia.com
Mr. Savan Shah Mobile: +91 7575007740 Email: fta@farmtechasia.com
www.farmtechasia.com

An ISO 9001:2008 Certified Company
कृषि दर्शन
खेत-खलिहान का राजा
1988
थ्रेशर 35HP हापर मॉडल
हडम्बा कटर थ्रेशर
ऑटोफीडिंग थ्रेशर
मक्का थ्रेशर
मिनी कम्बाईन थ्रेशर
रेज बेड सिड ड्रील
स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल
मोटर लिफ्टर
सुदर्शन इण्डस्ट्रीज
विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882
वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

लहसुन की खेती से कैसे कमा सकते हैं मुनाफा अच्छी फसल के लिए कौन-सी किस्में लगाएं ?

मध्यप्रदेश में कुछ किसान परंपरागत खेती से हटकर फसल लगा रहे हैं और इसका उन्हें गजब का फायदा भी हो रहा है. लहसुन एक ऐसी ही फसल है जिसमें गजब की कमाई होती है, लेकिन इसके लिए सही किस्म के बीजों का चयन जरूरी है. मंदसौर, नीमच, रतलाम, धार, और उज्जैन में अच्छी होती है. ये जिले लहसुन की खेती के लिए पूरे देश में जाने जाते हैं.

कौन-कौन सी किस्में होती हैं बढ़िया

यमुना सफेद 1 (जी-1): यमुना सफेद 1 (जी-1) इसके प्रत्येक शल्क कन्द ठोस और बाहरी त्वचा चांदी की तरह सफेद ए कली क्रीमी रंग की होती है. 150-160 दिनों में तैयार हो जाती है, पैदावार 150-160 क्विं. प्रति हे. तक होती है.

यमुना सफेद 2 (जी-50): इसकी फसल शल्क कन्द ठोस त्वचा सफेद गुदा, क्रीम रंग का होता है. पैदावार 130.140 क्विं. प्रति हे. हो जाती है. फसल 165-170 दिनों में रेडी हो जाती है. इसके बीज की फसल बैंगनी धब्बा और झुलसा रोग से प्रभावमुक्त होती है.

यमुना सफेद 3 (जी-282): लहसुन की इस फसल में शल्क कन्द सफेद बड़े आकार व्यास क्लोब का रंग सफेद और कली क्रीम रंग की होती है. एक शल्क में 15-16 कलियां होती हैं. यह प्रजाति चार से पांच महीनों में तैयार हो जाती है. अगर पैदावार की बात करें तो 175-200 क्विं./हे. होती है. यमुना सफेद 3 किस्म निर्यात में अच्छी मानी जाती है.

यमुना सफेद 4 (जी-323): इसका फल सफेद बड़े आकार का होता है. पोथी सफेद और कलियां क्रीम रंग की होती है. एक पोथी में 22-23 कलियां होती हैं. इसकी फसल 5-6 महीने में तैयार हो जाती है. इसकी पैदावार 200-250 क्विं./हे. होती है. लहसुन की यह किस्म भी निर्यात के लिए उम्दा होती है. लहसुन की इन किस्मों के अलावा प्रदेश में महादेव, अमलेटा किस्म की खेती भी किसान कर सकते हैं. इन किस्मों की भी पैदावार अच्छी होती है

उत्कृष्ट कार्य के लिए वैज्ञानिक उद्यानिकी डॉ. कमलेश अहिरवार को मिला सम्मान

छतरपुर। जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय के अंतर्गत संचालित कृषि विज्ञान केंद्र नौगांव जिला छतरपुर में पदस्थ डॉ. कमलेश अहिरवार (वैज्ञानिक उद्यानिकी) को गणतंत्र दिवस के अवसर पर उद्यानिकी के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य वर्ष 2017 से वर्ष 2021 तक कृषि विज्ञान केंद्र नौगांव जिला-छतरपुर को सम्मानित किया गया।

नीमच में आत्मा योजना अंतर्गत कैपेसिटी बिल्डिंग प्रशिक्षण

नीमच। किसान कल्याण तथा कृषि विकास की आत्मा योजना अंतर्गत कलेक्टर एवं मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत नीमच के निर्देशन एवं परियोजना संचालक आत्मा डॉ. यतिन मेहता के मार्गदर्शन में आत्मा योजना अंतर्गत कैपेसिटी बिल्डिंग प्रशिक्षण का आयोजन ग्राम सारेलिया विकास खंड मनासा में किया किया गया महिलाओं को किस तरह से कृषि तकनीकी का उपयोग में लेकर सदुपयोग कर खेती को लाभ का धंधा बनना है इस विषय पर संपूर्ण जानकारी डॉ श्याम सिंह सारंगदेवोत द्वारा दी गई। एनआरएलएम के कमल भूरिया द्वार स्व सहायता समूह के विकास हेतु महिला समूह किस प्रकार आगे बढ़ सकता है उस पर प्रकाश डाला गया उद्यान विभाग के प्रभारी उद्यान विकास अधिकारी जितेन्द्र धाकड़ ने कृषक महिलाओं को उद्यान विभाग की मसाला एवं सब्जी उत्पादन पर जानकारी दी। कृषि विभाग से संबंधित जानकारी देकर विकासखंड तकनीकी प्रबंधक आरएस लोधा ने आभार व्यक्त कर कार्यक्रम का समापन हुआ।

लीज पर 3 एकड़ जमीन लेकर 4 दोस्तों ने शुरू की मिर्च की खेती

अब फूलगोभी के 1.5 लाख पौधे लगाने की है तैयारी

सरकारी और प्राइवेट नौकरियों के इतर आज भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो रोजगार का बड़ा माध्यम बनते जा रहे हैं. बस जरूरत है मजबूत इच्छाशक्ति के साथ आगे बढ़ने की. कृषि के बदलते प्रारूप में अब यह भी आय का जरिया बन गया है. अब युवाओं में कृषि के प्रति रुझान देखने को मिल रहा है. ऐसा ही एक रुझान देवघर के सारवां प्रखंड अंतर्गत रतुरा पहारिया पंचायत के रहनेवाले 4 दोस्तों में देखने को मिला है. इन चारों दोस्तों ने खेती को स्वावलंबन का माध्यम बनाया और पढ़ाई के साथ-साथ इसमें भी जुट गए। पीजी की पढ़ाई के साथ चार दोस्त गोपी चरण मिश्रा, मिंटी कुमार तांती, बसंत वर्मा और विकास तांती ने मिलकर तीन एकड़ जमीन में मिर्च की खेती कर रहे हैं. उन्होंने तीन एकड़ जमीन लीज पर ली है. मिर्च की खेती कर सफलता से उत्साहित इन दोस्तों ने अब फूलगोभी का पौधा तैयार करना शुरू कर दिया है. ये करीब फूलगोभी के करीब 1.5 लाख पौधे लगाने की तैयारी में हैं. मैट्रिक परीक्षा पास करने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए देवघर आ गए। देवघर कॉलेज में हिस्ट्री ऑनर्स के बाद पीजी की पढ़ाई करते हुए कई प्रतियोगी परीक्षाओं में शामिल हुए. पर सफलता नहीं मिलने पर रोजगार के लिए प्राइवेट जॉब करना शुरू कर दिया.

सक्सेस स्टोरी

मिर्च के खेत में देवघर के ये दोस्त, जिसने खेती को बनाया स्वावलंबी बनने का आधार।

ऑर्गेनिक खेती का लिया प्रशिक्षण

फिर बेंगलुरु की अदिति ऑर्गेनिक प्राइवेट लिमिटेड में ऑर्गेनिक खेती का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसके बाद अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में जुट गये. इनके साथ अब एक अन्य अंकित मिश्रा भी सहयोग कर रहे हैं। वो खेती की जानकारी लेकर युवाओं को कॉन्ट्रेक्ट फार्मिंग के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

साभार: https://www.prabhatkhabar.com

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

जान के साथ जहान बचाने की चले मुहिम

बहरहाल, इतना जरूर है कि दिव्यांगों की दिक्कतों के चलते उनके घर-घर जाकर टीका लगाने की जरूरत है। लेकिन जब भारत में कोरोना संक्रमण के मामले अमेरिका के बाद दूसरे नंबर पर हैं तो नागरिकों से सजग-सतर्क व्यवहार की उम्मीद है। हम न भूलें कि इतने बड़े अभियान के बाद करोड़ों लोग ऐसे भी हैं जो आज भी टीका लगाने से बच रहे हैं। तीसरी लहर के आंकड़े बता रहे हैं कि अस्पताल में भर्ती होने वालों व मरने वालों में वे ही लोग ज्यादा हैं, जिन्होंने टीका नहीं लगवाया। निस्संदेह, दोनों टीके लगाने के बाद भी कुछ लोगों को संक्रमण हुआ है, लेकिन यह कम घातक रहा और अस्पताल में भर्ती होने की नौबत नहीं आयी। बहरहाल, एक अनजानी महामारी से फौरी तौर पर लोगों को सुरक्षा कवच तो मिला ही है। जिन लोगों के लिये पहली-दूसरी लहर में संक्रमण घातक हुआ उनमें से अधिकांश लोग पहले से ही गंभीर रोगों से ग्रस्त थे। बहरहाल, जो टीकाकरण से रह गये हैं उन्हें जल्दी से जल्दी टीका लगवाना चाहिए। तभी महामारी का खात्मा संभव है।

एक वैश्विक महामारी के खिलाफ स्वदेशी व देश में निर्मित टीकों की मदद से टीकाकरण का कामयाब साल पूरा करना हमारी उपलब्धि है। इतने कम समय में वैज्ञानिकों ने टीका हासिल किया, राजसत्ता ने इच्छाशक्ति दिखाई और चिकित्सकों, स्वास्थ्यकर्मियों तथा फ्रंट लाइन वर्करों ने उसे अंजाम तक पहुंचाया। सब कुछ जीरो से शुरू करने जैसा था, फिर भी देश ने न केवल सवा अरब से ज्यादा आबादी का ख्याल रखा बल्कि दूसरे देशों की भी मदद की। हम याद रखें कि देश की आर्थिक स्थिति कैसी है, हमारा चिकित्सा तंत्र किस हाल में था और संसाधनों की क्या स्थिति है। दूसरी लहर के दौरान कई बड़े देशों ने वैक्सीन की कच्ची सामग्री देने में आनाकानी की और चीन ने कई तरह के व्यवधान पैदा किये। इतने बड़े व भौगोलिक जटिलताओं के देश के गांव-देहात में जाकर टीके लगाना निस्संदेह कठिन था। टीकों का उत्पादन और फिर सुरक्षित तापमान में लक्षित आबादी तक पहुंचाना आसान नहीं था। जब राज्यों को टीकाकरण का दायित्व दिया गया तो उस दौरान जो राजनीतिक कोलाहल हुआ, उसे देश ने देखा। सुप्रीम कोर्ट की तल्खी भी देखी। सुखद है कि देश की सत्तर फीसदी वयस्क आबादी को दोनों टीके लगे हैं। करीब 157 करोड़ खुराक दी जा चुकी हैं। वह भी तब जब खुद स्वास्थ्यकर्मियों की जान को भी खतरा था। इनकी प्रतिबद्धता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए राष्ट्र ने डाक टिकट जारी किया। लेकिन ऐसे वक्त में जब रोज नये संक्रमण के मामले दो लाख से अधिक आ रहे हैं और सक्रिय मामलों का आंकड़ा दस लाख पार कर गया है, तो सतर्क रहने की जरूरत है। नये वेरिएंट का खतरा टला नहीं है और वायरस के रूप बदलने की आशंका बनी हुई है। कहा जा रहा है कि ओमीक्रोन के कम घातक होने के कारण केवल अस्पताल में भर्ती होने वाले तथा मरने वालों का ही आंकड़ा जारी किया जाये। साथ ही अनावश्यक प्रतिबंधों में तार्किक ढंग से ढील दी जाये ताकि समाज के अंतिम व्यक्ति के लिये रोजी-रोटी का संकट पैदा न हो। सख्ती एक नई मानवीय त्रासदी को जन्म दे सकती है। वहीं, यह अच्छी बात है कि केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय मार्च से बारह से पंद्रह साल के बच्चों के टीकाकरण की दिशा में बढ़ रहा है। निस्संदेह, इससे जहां अभिभावकों की चिंता दूर होगी, वहीं स्कूलों को सामान्य ढंग से खोलने में मदद मिलेगी। विकसित देश पहले ही इस दिशा में आगे बढ़ चुके हैं। बल्कि सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर करके बारह साल से छोटे बच्चों के टीकाकरण के लिये सरकार को निर्देश देने की मांग की गई है। वहीं दिव्यांगों के टीकाकरण के बाबत दायर याचिका की सुनवाई के दौरान सरकार ने हलफनामा दायर किया है कि किसी को जबरन टीका लगाने को बाध्य नहीं किया जाएगा। साथ ही दिव्यांगों को टीकाकरण का प्रमाणपत्र दिखाने की बाबत कहा कि किसी मानक प्रक्रिया के तहत यह अनिवार्य नहीं है।

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 22 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 23 से 28 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।

-संपादक

सूचना

हिन्दी भाषी प्रदेशों में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक पत्रिका मध्यभारत कृषक भारती में कृषक हितैषी विषयों से संबंधित लेखों, समाचारों, फोटो फीचर, सफलता की कहानियाँ, रिसर्च पेपर का हम स्वागत करते हैं। लिखी हुई सामग्री आपकी स्वयं की हो जिसे आप हमारे डाक पते पर या फिर ई-मेल पर भेज सकते हैं।

Mob. 94251-01132
editorkrb@gmail.com

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

संपादक मंडल

प्रधान सम्पादक
राजू गुर्जर (MJC)
94251-01132, 94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम
योगेन्द्र सिंह
94259-16038, 70492-14731
डी.के. बरार
91791-85002, 70247-93010
ब्रजपाल सिंह: 90583-31074
महेश अहिरवार: 94259-62043

:: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण ::

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय
***

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव (Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
***

डॉ. आर.के.एस. तोमर संयुक्त निदेशक विस्तार सेवाएं
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि. ग्वालियर
***

डॉ. भागचन्द जैन प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि वि.वि. रायपुर (छ.ग.)
***

डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),
डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर
***

डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय,
नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर
***

बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस हिन्दू
यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)
***

श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र बैतूल (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542
***

योगेन्द्र कौशिक (प्रगतिशील कृषक)
ग्राम अजडावदा जिला उज्जैन (म.प्र.)
मोबाइल: 93400-29298

गौरवपूर्ण प्रकाशन का निरंतर 16वां वर्ष

मध्य भारत कृषक भारती

• वार्षिक ₹400 • द्विवार्षिक ₹750 • पंचवार्षिक ₹1500 • मध्यप्रदेश • छत्तीसगढ़ • उत्तर प्रदेश • राजस्थान

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें:- 94251-01132 ■ 94245-22090 ■ 0751-4070802

■ वर्ष 16 ■ अंक 11 ग्वालियर, फरवरी 2022 मूल्य ₹ 30/-

अंदर के पन्नों पर

मध्य प्रदेश
- केविके उज्जैन में कृषि हर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने व्यावसायिक प्रशिक्षण 08
- 'प्लग-ट्रे तकनीक' 09
- मौन विष एवं उपयोगिता 10
- सहजन की लाभकारी खेती एवं गुण 11
- प्लास्टिक खाने वाले बैक्टीरिया 12
- फसलों के उत्पादन में मुख्य पोषक तत्वों की भूमिका 13
- कम लागत प्राकृतिक खेती 14
- बकरियों में टीकाकरण एवं सावधानियां 16
- फसलों में जल प्रबंधन 17
- बकरियों में होने वाली फड़किया रोग 18
- राजगिरा की खेती 19
- बकरी पालन का महत्व... 20
- मुर्गियों में पुलोरम रोग के लक्षण, रोकथाम व नियंत्रण 22
- सीमांत एवं छोटे किसानों के लिए वरदान सामूहिक खेती 23
- दुधारु पशुओं में खुर के विकार एवं उनका निदान 24
- किसान भाई जैविक विधि से गेहूँ उत्पादन कैसे लें 25
- दुधारू पशुओं में थनेला/ स्तनशोथ रोग 26
- दुधारू पशुओं में लंगड़ा बुखार/ एवं सावधानियां 27
- उड़द की उन्नत खेती 28
- स्ट्रॉबेरी की खेती कैसे और किस माह में की जाती है 29
- किलनियों का पशुओं पर प्रभाव एवं नियंत्रण 30
- पशुओं की देशी नस्लों का चयनात्मक प्रजनन.... 31
- पशुओं में घाव भरने की प्रक्रिया... 32

उत्तर प्रदेश
- बलिया में वि.वि. की पहल को राज्यपाल ने सराहा 33
- चिया बीजों के स्वास्थ्य लाभ 34
- फरवरी में फसलोत्पादन संबंधित मुख्य खेती-बाड़ी कार्य 35
- वर्मी कम्पोस्ट : भावी पीढ़ी में रोजगार के अवसर 36
- टमाटर की उन्नतशील खेती 37
- वैज्ञानिक तरीके से करें चुकंदर की खेती 38
- शाकों में श्रेष्ठ बथुआ 39
- प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थ 40
- नैनो यूरिया लिक्विड 41
- शरद ऋतु में आम के बागों का संरक्षण एक विश्लेषण 42
- भंडार गृह में लगने वाले कीट एवं रोकथाम के उपाय 43
- कृषि उत्पादन में बायोचार का महत्व 44
- निम्नवर्गीय फलों से स्वास्थ्य और आय 45
- मुलेठी की वैज्ञानिक विधि से खेती एवं रोग प्रबंधन 46
- मटर के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन 48
- सब्जियों को भण्डारित करने के उचित तकनीक 49
- बैंगन की उन्नतशील खेती 50
- कृषि में विभिन्न फसलों के अंकुरण को प्रभावित... 51
- धनिया की जैविक खेती 52
- जीरो बजट प्राकृतिक खेती 54
- मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की भूमिका 55
- आलू फसल पर पाले का प्रभाव तथा इससे बचाव 56
- गाजर घास अनिष्टकारी खरपतवार 57
- नए भारत की आत्मनिर्भरता में कृषि क्षेत्र का योगदान 58
- जैविक खेती में नीम से कीट प्रबंधन का महत्व 59
- यूरिया उपचार से चारे की गुणवत्ता में वृद्धि 60
- आलू के झुलसा रोगों का प्रबंधन 61
- खरपतवार हटाना हो या करनी हो निराई-गुड़ाई... 62

राजस्थान
- कृषि में कीटनाशक का प्रयोग 63
- सौर ऊर्जा 64
- सहजन के फूलों का सेवन... 65
- खीरे की उन्नत खेती एवं कीट प्रबंधन 66
- मूंग की खेती अधिक लाभदायक 67
- प्रोम खाद क्या है 68
- संरक्षित खेती में ऐसे करें प्रमुख रोगों का एकीकृत प्रबंधन 69
- गाजरघास का फसलों, मानव और पशुओं पर दुष्प्रभाव 71
- कृषि में जैव उर्वरकों की महत्ता एवं उपयोग 72
- कम्पोस्ट खाद का कृषि में महत्व 73
- बीज उत्पादन हेतु ध्यान रखने योग्य बातें 74
- सर्दियों में पशुओं का वैज्ञानिक रख रखाव 75
- एकीकृत कृषि प्रणाली... 76
- चना फसल में रोग प्रबंधन 78
- मृदा संकेतकों का मृदा स्वास्थ्य एवं मृदा गुणवता... 79

छत्तीसगढ़
- मृत पशु एवं शव का निपटारा कैसे करें? 80
- श्वानों में हुकवर्मस की समस्या-कारण एवं बचाव 81
- जैविक खेती की विधियां और लाभ 82
- कुसुम उत्पादन की उन्नत तकनीक 83
- अलसी बीज के फायदे, नुकसान व उपयोग 84

हरियाणा
- गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण.... 85
- हरियाणा राज्य ने दी कृषि विकास के आयामों को नई दिशा 86
- कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई को बनाए रोजगार का साधन 88

हिमाचल प्रदेश
- बीज उत्पादन में परागणकर्त्ता कीटों का योगदान 89

जम्मू कश्मीर
- ड्रैगन फ्रूट की खेती एवं स्वास्थ्य लाभ 90

उत्तराखण्ड
- पौधों की वृद्धि पर पोटेशियम के घुलनशीलता का प्रभाव 91

नई दिल्ली
- जैविक खेती, एक चिरस्थायी विकल्प 93

कर्नाटक
- संतरे का फसलोत्तर प्रबंधन एवं मूल्य संवर्धन 94

पंजाब
- फलों की संरक्षित खेती 95

बिहार
- जड़ी-बूटी औषधीय अदरक के पौधे की खेती... 96
- कीट प्रबंधन में कृषि अवशेष प्रबंधन का महत्व 98

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

पीएम मोदी ने 'किसान सम्मान निधि' को बताया किसानों की ताकत

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने शनिवार को किसानों के खाते सीधे प्रधानमंत्री सम्मान निधि की 10वीं किस्त ट्रांसफर की. उन्होंने कहा कि आज देश के करोड़ो किसान परिवारों को, विशेषकर छोटे किसानों को प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि की 10वीं क़िस्त मिली है. किसानों के बैंक खातों में 20 हजार करोड़ रूपये ट्रांसफर किये गए हैं। वहीं पीएम मोदी ने आज वैष्णो देवी मंदिर में भगदड़ के दौरान हुई मौतों पर दुख जताया है. पीएम ने कहा, ' सबसे पहले तो मैं माता वैष्णो देवी परिसर में हुए दुःखद हादसे पर शोक व्यक्त करता हूं. जिन लोगों ने भगदड़ में अपनों को खोया है, जो घायल हैं मेरी संवेदनाएं उनके साथ हैं. केंद्र सरकार, जम्मू-कश्मीर प्रशासन के लगातार संपर्क में है. मेरी लेफ्टिनेंट गवर्नर मनोज सिन्हा जी से भी बात हुई है. राहत के काम का, घायलों के उपचार का पूरा ध्यान रखा जा रहा है.' मोदी ने कहा कि आज जब हम नव वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं, तब बीते साल के अपने प्रयासों से प्रेरणा लेकर हमें नए संकल्पों की तरफ बढ़ना है. इस साल हम अपनी आजादी के 75 वर्ष पूरे करेंगे. ये समय देश के संकल्पों की एक नई जीवंत यात्रा शुरू करने का है. कितने ही लोग देश के लिए अपना जीवन खपा रहे हैं, देश को बना रहे हैं.ये काम पहले भी करते थे, लेकिन इन्हें पहचान देने का काम अभी हुआ है. उन्होंने कहा कि हर भारतीय की शक्ति आज सामूहिक रूप में परिवर्तित होकर देश के विकास को नई गति और नई ऊर्जा दे रही है.

प्रभावित किसानों को संकट के पार निकालेंगे: शिवराज

मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने कहा है कि बेमौसम हुई बारिश और ओलावृष्टि से प्रभावित हुए किसानों को इस दुख की घड़ी में संकट के पार निकालेंगे। फसलों को हुए नुकसान की राहत राशि एवं बीमा राशि का किसानों को शीघ्र भुगतान करवाया जाएगा।

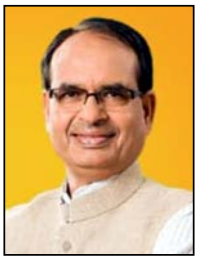

मुख्यमंत्री चौहान ने अशोकनगर जिले की तहसील मुंगावली के ग्राम बजावन में प्रभावित फसलों का निरीक्षण कर रहे थे। मुख्यमंत्री चौहान ने किसानों से संवाद करते हुए कहा कि संकट की इस घड़ी में किसानों के दुख दर्द में शामिल होने के लिए ग्राम बजावन में आया हूँ। मैं किसानों की परेशानी को भली भांति जानता हूँ। किसान अपने पसीने से फसलों को सींचता है, तभी अन्न का दाना मिल पाता है। इसी बीच यदि फसलों पर प्राकृतिक आपदा का कहर बरसता है तो फसलें चौपट हो जाती हैं। इससे किसानों के सपने चकनाचूर हो जाते हैं। मुख्यमंत्री चौहान ने कहा कि फसलों को जो नुकसान पहुँचा है, उसकी भरपाई राहत राशि तथा बीमा राशि दिलाकर पूरी की जाएगी। उन्होंने कमिश्नर एवं कलेक्टर को निर्देश दिये कि फसलों के नुकसान के सर्वे का कार्य 18 जनवरी तक पूर्ण कराया जाए। सर्वे का कार्य पूरी ईमानदारी और पारदर्शिता के साथ हो। सर्वे उपरांत सूची पंचायतों में लगाई जाए, जिससे संबंधित किसान भी अवगत हो सकें।

छत्तीसगढ़ में फलोत्पादन एवं मसाला खेती को मिला प्रोत्साहन

मुख्यमंत्री भूपेश बघेल के नेतृत्व में छत्तीसगढ़ सरकार की किसान हितैषी नीतियों और योजनाओं से खाद्यान्न उत्पादन एवं फसल विविधता को बढ़ावा मिलने के साथ ही उद्यानिकी फसलों की खेती को भी प्रोत्साहन मिला है। इसका परिणाम यह रहा है कि छत्तीसगढ़ राज्य में केला, पपीता,अदरक, हल्दी और टमाटर की उन्नत खेती किसान करने लगे हैं। बीते तीन सालों में कृषक साग-सब्जी के अलावा फल एवं मसालेदार फसलों की खेती में काफी रूचि लेने लगे हैं। इससे राज्य में फल एवं मसालों की मांग एवं आपूर्ति में काफी हद तक संतुलन की स्थिति बनी है। किसानों की आय में भी वृद्धि हुई है। राज्य में मुख्यतः केला, पपीता, टमाटर के खेती के अलावा हल्दी, अदरक तथा शकरकंद की खेती कृषकों द्वारा की जा रही है। उद्यानिकी के तहत संचालित दो बड़ी योजना राष्ट्रीय बागवानी मिशन तथा राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के अंतर्गत विगत तीन वर्षों में फलों की खेती में सबसे अधिक केला एवं पपीता का उत्पादन रहा है। राज्य के 19 जिलों में संचालित राष्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत विगत तीन वर्षों में केले की खेती 3227 हेक्टेयर में की गई है।

कृषक भारती में सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)

रामप्रकाश रघुवंशी

98272-78063

***

नरसिंहपुर (म.प्र.)

नवीन शुक्ला: 89894-36330

मंदसौर (म.प्र.)

डॉ. देवेन्द्र शर्मा: 90395-98640

***

बलिया (उ.प्र.)

आर.एन. चौबे: 94535-77732

***

पश्चिम बंगाल

राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा

समीर रंजन नायक

70422-31678

***

हापुड़ (उ.प्र.)

मयंक गौड़: 83848-66823

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

सावधान हो जाइए-अंतरिक्ष से हो रही नरवाई जलाने की निगरानी

हाल ही में देश की राजधानी दिल्ली में वायु प्रदूषण के कारण लगे लॉकडाउन ने पूरे देश में हाहाकार मचा दिया। हर स्तर पर शासन और प्रशासन सतर्क और सक्रिय हो गया। इन दिनों बढ़ते वायु प्रदूषण के लिये नरवाई या पराली जलाने की घटनाओं को भी एक प्रमुख कारण माना जाता है। भारत शासन ने इन घटनाओं की निगरानी करने और रोकथाम के लिये भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान को निर्देशित किया है। भा.कृ.अनु.सं. अंतरिक्ष से कृषि परिस्थितिकी तंत्र की निगरानी और मॉडलिंग के लिये बनाए गए संगठन- क्रिम्स के उपग्रह के माध्यम से पूरे देश में नरवाई/पराली जलाने की घटनाओं की निगरानी कर रहा है। क्रिम्स के आंकड़ों के अनुसार देश में नरवाई जलाने के सर्वाधिक मामले नवम्बर माह में सामने आ रहे हैं। नवम्बर में अब तक कुल 83 हजार मामले सामने आ चुके हैं। इस महीने खरीफ की प्रमुख फसल धान की हार्वेस्टर से कटाई के बाद बचे डंठलों को जला दिया जाता है।

हमारे लिए अफसोसनाक खबर यह है कि इनमें पंजाब और हरियाणा के बाद सर्वाधिक 4910 घटनाएं म.प्र. में हुई हैं। पंजाब में अभी तक 68 हजार 896 घटनाएं, हरियाणा में 5 हजार 548 और छत्तीसगढ़ में मात्र 131 एवं राजस्थान में 903 नरवाई जलाने के मामले उपग्रह से निगरानी के दौरान सामने आए हैं।

म.प्र. में नरवाई जलाने की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए शासन और प्रशासन सतर्क हो गया है। म.प्र. के अतिरिक्त मुख्य सचिव कृषि अजीत केसरी ने प्रदेश में इस तरह की घटनाओं की निगरानी एवं रोकथाम के लिए सभी आयुक्त एवं जिलाध्यक्षों को नियमित निगरानी एवं सख्त कार्यवाही के लिये निर्देशित किया है। अतिरिक्त मुख्य सचिव कृषि ने चिंता व्यक्त करते हुए कहा है कि वर्ष 2020 में पंजाब के बाद नरवाई जलाने की सर्वाधिक 49 हजार 482 घटनाएं म.प्र. में हुई हैं। प्रदेश में नरवाई जलाने की घटनाएं मुख्यतः गेहूँ की फसल कटाई के बाद होती है। परन्तु अब खरीफ की धान फसल की कटाई के बाद भी घटनाओं में वृद्धि हो रही है। प्रदेश में वर्ष 2020 में खरीफ फसलों के बाद नरवाई जलाने की 12 हजार 501 घटनाएं सेटेलाइट के माध्यम से चिन्हित की गई हैं। प्रदेश में कृषि अभियांत्रिकी संचालनालय, क्रिम्स के सहयोग से प्रदेश में नरवाई जलाने की घटनाओं के आसमानी निगरानी की दैनिक रिपोर्ट कलेक्टर्स को भेज रहा है। रिपोर्ट में जिले, ब्लॉक, तहसील एवं ग्रामवार नरवाई जलाने की घटना की जानकारी होती है जिसके आधार पर प्रशासन घटना स्थल पर तुरंत कार्यवाही कर रहे हैं।

इंदिरा गांधी कृषि विवि के विज्ञानियों ने विकसित की प्रजाति

छत्तीसगढ़ में अलसी के रेशे से बनेगा लिनेन कपड़ा

रायपुर। इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर के कृषि विज्ञानियों ने अलसी के रेशे से लिनेन कपड़ा बनाने का प्रयोग कुछ साल पहले ही कर लिया था। अब इसको वृहद स्तर पर लाने की तैयारी है। कृषि विज्ञानियों के अनुसार प्रदेश में जलवायु परिवर्तन के आधार पर फसल चक्र परिवर्तन के लिए अलसी की सात ऐसी किस्में विकसित की हैं, जिन्हें सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ेगी। यानी जमीन की नमी से ही भरपूर फसल तैयार हो जाएगी। अब अधिक मात्रा में अलसी का उत्पादन होगा तो इसका इस्तेमाल औद्योगिक रूप से करने की तैयारी चल रही है। इनमें इंदिरा अलसी-32, आरएलसी-133, आरएलसी-148, आरएलसी-141, एलसी-164, उतेरा अलसी-एक और उतेरा अलसी-दो प्रजातियां शामिल हैं। इन किस्मों को संकरित करके विकसित किया गया है। ये किस्में ऐसे क्षेत्र के किसानों के लिए वरदान साबित होंगी, जहां वर्षा बेहद कम होती है। इन अलसी के रेशे का इस्तेमाल लिनेन कपड़ा बनाने के लिए भी किया जा सकता है। इसके अलावा इनके कई औषधीय गुण हैं।

इस योजना के तहत किस्में की है विकसित: विश्वविद्यालय के आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग प्रमुख कृषि विज्ञानी डा. दीपक शर्मा ने बताया कि रायपुर में संचालित अखिल भारतीय समन्वित अलसी परियोजना के तहत ये किस्में विकसित की गई हैं, जो कम वर्षा आधारित पद्धति में अधिक उत्पादन देने में सक्षम हैं।

70 साल की 'साइंटिस्ट' भगवती आज हैं किसानों की रोल मॉडल

भगवती देवी को खेतों के वैज्ञानिक पुरस्कार से 2011 में तत्कालीन कृषि मंत्री शरद पवार ने नवाजा था। उसके बाद से उन्हें कई पुरस्कार मिल चुके हैं।

18 साल पहले की बात है, जब एक दिन चूल्हे-चौके में काम करने के बाद मैं खेतों में जलाने के लिए लकड़ियां जुटा रही थी। उस वक्त जुटाई गई लकड़ियों में मैंने देखा कि सफेदे (यूकेलिप्टस) की लकड़ी में ढेर सारे दीमक लगी हुई है। मेरे मन में यह ख्याल आया कि जिस सफेदे को दीमक इतने प्रेम से खाती हैं, अगर उसे फसलों के बीच-बीच में रख दिया जाए तो शायद दीमक फसलों को छोड़कर सफेदे की लकड़ियों को खाने लगेंगी। मैंने सबसे पहले इस तरकीब को गेहूं की फसल में आजमाकर देखा। यह तरकीब रंग लाई। यह कहना है राजस्थान के सीकर जिले की 70 साल की महिला किसान भगवती देवी का, जो अब किसानों की रोल मॉडल हैं। 'खेतों के वैज्ञानिक' सम्मान और 50 हजार रुपए के 'कृषि प्रेरणा सम्मान' से नवाजी जा चुकीं भगवती देवी वैसे तो राजस्थानी में अपनी बात कहती हैं, मगर उनके पति सुंडाराम वर्मा इसका हिंदी में तर्जुमा भी करते जाते हैं, जो खुद कृषि वैज्ञानिक हैं और नए-नए प्रयोगों को अंजाम देने में लगे रहते हैं। भगवती देवी कहती हैं कि मैंने जब यह तरकीब अपनी फसलों पर आजमाई तो यह बेहद कारगर साबित हुई। उसके बाद से तो मैंने दीमक को अपना दोस्त ही बना लिया।

मेरी तरकीब को बीकानेर विश्वविद्यालय ने जांचा-परखा, तब दी मान्यता

भगवती देवी कहती हैं कि मेरी इस तरकीब के बारे में जब कृषि वैज्ञानिकों को पता चली तो हकीकत जानने के लिए राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय (बीकानेर) के कृषि अनुसंधान निदेशक डॉ. एमपी साहू भगवती देवी के खेतों पर पहुंच गए। उस वक्त मेरे खेत में मिर्च की फसल लगी हुई थी। मैंने उन्हें अपना प्रयोग दिखाया। सफेदे की लकड़ी फसल के बीच रखकर अपना प्रयोग डॉ. साहू को दिखा दिया। उसके बाद डॉ. साहू के निर्देशन में मेरी तकनीक का पुनः शेखावटी कृषि अनुसंधान केन्द्र पर किया गया। जब वहां भी प्रयोग सफल रहा तो मेरे प्रयोग को मान्यता मिल गई।

साभार: https://www.bhaskar.com

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती

केविके जावरा में कड़कनाथ मुर्गीपालन पर तीन दिवसीय आवासीय प्रशिक्षण

रतलाम। कृषि विज्ञान केंद्र जावरा द्वारा किसानों की आत्मनिर्भर क्षमता हेतु लाभकारी कड़कनाथ मुर्गीपालन पर तीन दिवसीय आवासीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का समापन हुआ। यह प्रशिक्षण मत्स्य पालन पशुपालन और डेयरी मंत्रालय भारत सरकार द्वारा वित्त पोषित परियोजना के अंतर्गत आयोजित किया गया प्रशिक्षण के अंतर्गत केवीके हेड डॉ. सर्वेश त्रिपाठी के मार्गदर्शन एवं नोडल अधिकारी सुशील कुमार के सहयोग से 3 दिनों तक प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण दिया गया जिसमें डॉ. सर्वेश त्रिपाठी ने कड़कनाथ मुर्गी पालन की बारीकियों से अवगत कराया साथ ही कृषि के साथ-साथ मुर्गी पालन कर खेती को लाभ का धंधा कैसे बनाया जाए आदि विषयों पर विस्तृत जानकारी किसानों को दी। नोडल अधिकारी डॉ. सुशील कुमार एवं डॉ. डी.आर. पचौरी ने कड़कनाथ मुर्गी पालन में होने वाले रोगों की रोकथाम एवं उपचार के बारे में विस्तृत जानकारी दी। साथ ही अन्य वैज्ञानिकों ने अपने विषय से संबंधित जानकारी किसानों को प्रदान की। समापन में समस्त प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाण पत्र वितरित किए गए। इस कार्यक्रम में केवीके के वैज्ञानिक डॉ. बरखा शर्मा डॉ. सी.आर. कांटवा, डॉ. रामधन घसवा का डॉ. रोहताश सिंह भदौरिया, डॉ जी. पी. तिवारी, डॉ. शिशा रामजाखड़, मनोज कुमार रजक, अनिल उपाध्याय, निरंजन नाथ जी आदि उपस्थित रहे। साथ ही जिले के अलग-अलग विकास खंडों के कुल 40 प्रशिक्षणार्थियों ने प्रशिक्षण का लाभ लिया।

केविके उज्जैन में कृषि हर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने व्यावसायिक प्रशिक्षण

उज्जैन। कृषि विज्ञान केन्द्र, रा.वि.सि.कृ.वि.वि. उज्जैन द्वारा महिला सशक्तिकरण के अंतर्गत पांच दिवसीय व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम डॉ. आर.पी. शर्मा प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रमुख के मार्गदर्शन में संपन्न हुआ प्रशिक्षण की मुख्य थीम'' मौसमी फल एवं सब्जियों का मूल्य संवर्धन'' के अंतर्गत कृषिहर महिलाओं एवं युवतियों को आत्मनिर्भर बनाने हेतु स्थानीय सब्जियों एवं फलों को परिरक्षित करके मार्केटिंग करने के गुर डॉ. रेखा तिवारी वरिष्ठ वैज्ञानिक के द्वारा प्रत्याक्षिक रूप से बताये गये। जिसमें मुख्यतः इमली, आंवला, संतरा, सोयाबीन, हल्दा, करेला, ग्वारफली, नींबू, टमाटर, आलू केला, पपीता, आदि से विभिन्न प्रसंस्करित पदार्थ बताए गए। साथ ही इनकी मार्केटिंग हेतु विशेष ध्यान में रखने वाली सावधानियां जैसे की फूड सर्टिफिकेट, विशिष्ट पैकिंग, मार्केटिंग एवं अपने उत्पाद का मूल्य निर्धारण करने हेतु अपनाए जाए वाली सभी जानकारियों को विस्तृत से बताया। प्रशिक्षण के माध्यम से औषधीय गुध एवं पोषक तत्वों की जानकारी भी विस्तार से बताई गई। संस्था के वैज्ञानिक डॉ. डी.एस. तोमर, डॉ. एस. के. कौषिक, श्री डी.के. सूर्यवंशी , डॉ. मौनी सिंह, राजेन्द्र गवली तथा श्रीमती गजाला खान ने अपने विषयानुरूप जानकारी दी। प्रशिक्षणर्थियों को संस्था की अन्य गतिविधियों एवं यूनिट का भ्रमण भी कराया गया जैसे की डेयरी यूनिट, बकरीपालन, वर्मीकम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, रेनवाटर हार्वेस्टिंग आदि। कार्यक्रम के अंत में सभी प्रशिक्षार्थियों से प्रशिक्षण संबंधी फीडबेक भी लिया गया। ग्राम ढेडिया, हरसोदन तथा गुराडिया गुर्जर से कुल 22 महिलाएं वं युवतियों को सफल प्रशिक्षण उपरांत सर्टिफिकेट भी वितरित किये गये। कार्यक्रम को सफल बनाने में संस्था के, अजय गुप्ता, श्रीमती सपना सिंह तथा, कु. काजल चौधरी का विषेष सहयोग रहा।

सौर ऊर्जा पंप स्थापित कर बिजली के मामले में आत्मनिर्भर बन रहे नीमच जिले के किसान

नीमच। सोलर ऊर्जा पंप स्थापित कर नीमच जिले के किसान बिजली के मामले में आत्म निर्भर बन रहे हैं। अनेक गांवों के किसानों ने अपने खेतों में मुख्यमंत्री सोलर पंप योजना के तहत अनुदान योजना का लाभ उठाकर मात्र 72 हजार रूपयेमें 5 हॉर्स पावर तक का सौर ऊर्जा पंप लगाकर बिजली की समस्या से हमेशा के लिए निजात पा ली है। अब किसान अपनी सुविधा से दिन में ही अपनी फसलों की सिंचाई कर पा रहे हैं। किसानों को रात्रि में सिंचाई की

चिंता से मुक्ति मिल गई है। साथ ही बिजली चले जाने का डर भी नहीं रहा है। सौर ऊर्जा पंप किसानों के लिए वरदान साबित हो रहा है, और इसके फायदे को देखते हुए जिले के अनेक गांव के किसानों का रुझान भी अब सौर ऊर्जा पंप स्थापित करने की ओर बढ़ रहा है। नीमच जिले के कराडिया महाराज निवासी किसान ईश्वरलाल पिता बद्रीलाल पाटीदार को सौर उर्जा पम्प स्थापित होने के बाद सिंचाई के लिए बिजली की समस्या से निज़ात मिल गई है।

छिंदवाड़ाः ग्राम पलटवाड़ा में सरसों प्रक्षेत्र दिवस संपन्न

छिन्दवाड़ा। उप संचालक कृषि जितेन्द्र कुमार सिंह और आंचलिक अनुसंधान केन्द्र चंदनगांव के सह संचालक डॉ. विजय पराडकर और अन्य विभागीय अधिकारियों की उपस्थिति में जिले के परासिया विकासखंड के ग्राम पलटवाडा में कृषक कमलेश साहू के खेत में सरसों प्रक्षेत्र दिवस संपन्न हुआ। कार्यक्रम में स्थानीय ग्रामीण नीरज कुमार साहू, लोकेश साहू और अन्य ग्रामीण कृषकों ने कार्यक्रम में सहभागिता कर सरसों की खेती पर विस्तृत चर्चा की। उप संचालक कृषि श्री सिंह ने बताया कि कृषकों को सरसों फसल विशेष कार्यक्रम के अंतर्गत जिले में तिलहन के रखबे को बडाने के लिये नवाचार का सामूहिक प्रयास किया जा रहा है जिसमें कृषकों को सफलता मिल रही है। आंचलिक अनुसंधान केन्द्र चंदनगांव के सह संचालक डॉ.पराडकर ने किसानों को सरसों की खेती के संबंध में विस्तार से जानकारी दी। कार्यक्रम में किसानों को जैविक खेती के साथ ही समन्वित खेती की सलाह दी गई ।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

'प्लग-ट्रे तकनीक'

शीत ऋतु में कद्दूवर्गीय सब्जियों की नर्सरी लगाने का सुरक्षित उपाय

डॉ. ऋचा प्यासी (सहायक प्राध्यापक)
कृषि महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
डॉ. राजकुमार देशलहरा

प्रायः कद्दूवर्गीय सब्जियों जैसे तरबूज, खरबूज, लौकी, खीरो आदि की नर्सरी तैयार करने का उपयुक्त समय फरवरी-मार्च का महीना होता है। क्योंकि तब तक ठंडे मौसम का प्रभाव लगभग कम हो चुका होता है जो की कद्दूवर्गीय फसलों के लिए अच्छा माना गया है क्योंकि ये सब्जियों पाले एवं कम तापमान के प्रति बेहद संवेदनशील होती है। परंतु पारवरिक परीके से उगाई जाने वाली फसल नर्सरी फरवरी के अंत से मार्च मध्य तक लगाई जाती है। जिससे मुख्य फसल के फल मई-जून के महीने तक ही से बाजार में पहुंच पाती है इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए प्लग-ट्रेनर्सरी अथवा प्लास्टिक-प्रो-टेऊनर्सरी की तकनीकि का उपयोग किया जाने लगा है। जिसके माध्यम से शीत ऋतु यानि दिसम्बर-जनवरी के महीने में शीत कद्दूवर्गीय सब्जियों की नर्सरी तैयार कर ली जाती है जिससे मुख्य फसल बाजार में सामन्य फसल की तुलना में 45 से 55 दिन पहले पहुंच जाती है। मार्च अंतिम सप्ताह से अप्रैल मध्य तक तैयार सब्जी की आवक बाजार में पहुंचती है जिससे पहली फसल के रूप में ज्यादा दामों पर बेचा जा सकता है।

प्लास्टिक ट्रे अथवा प्लग ट्रे क्या है?: प्लग ट्रे प्लास्टिक से निर्मित ट्रे नुमा आकार की होती है जिसमें अनेक प्लग (गहरे सेल) बने होते है। प्रत्येक प्लग (सेल) में एक पौध उगाई जाती है। इनमे मृदा विहिन माध्यम से जैसे पीट, परलाईट रॉकबूल, रेत कोकोपीट आदि का उपयोग किया जाता है क्योकि इनमें रोग लगने की संभावना न के बराबर होती है तथा इनकी जल को सोखने की क्षमता उत्तम होती है एवं ये अनेक पोषक तत्वों से भरपूर रहते है। ये प्लग-ट्रे विभिन्न आकार प्रकार की होती है जो इनमें मौजूद सेल के आकार तथा संख्या पर निर्भर होती है। प्रायः कद्दूवर्गीय सब्जियों के लिये ऐसे प्लग ट्रे जिनमें 3.75 से.मी (1.5 इंच) गहरे व चैडे कुल 185 से 190 तक प्लग (सेल) निर्मित हो सर्वउपयुक्त रहती है।

(प्लग-ट्रे मै नर्सरी पौध तैयार करने की विधि)

सर्व प्रथम प्लास्टिक ट्रे को उपचारित कर लेना चाहिए जिससे रोग व संक्रमण के खतरों से पौधो का पहले ही सुरक्षित कर लिया जा सके। जिसके लिए 0.1 प्रतिशत क्लोरीन ब्लीच अथवा 0.1 प्रतिशत सोडियम हाइपोक्लोराइड के घोल में ट्रे को डुबाया जाता है। इसके पश्चात प्रत्येक प्लग को 3: 1: 1: (तीन भाग कोकोपीट, एक भाग वर्गीक्यूलाइट, एक भाग परलाइट के मिश्रण से भर देते हैं। इन ट्रे को नट हाउस अथवा पालीहाउस में रखना सुरक्षित रहता है। फिर प्रत्येक सेल में 1 से.मी की गहराई पर बीज को दबा दें इसके तुरंत बाद हल्की फहार की सिचाई दें। इस तरह से एक ट्रे में 185-190 नर्सरी पौध 30-32 दिन की अवधि में तैयार हो जाते हैं।

बीज दर एवं बीजो की संख्या प्रति ग्राम नीचे सारणी में दी गई है:-

फसल	बीज संख्या/प्रति ग्राम	बीज दर
तरबूज	20-22	900-950 ग्राम
खरबूज	30-35	600-700 ग्राम
खीरा	30-35	600 ग्राम
लोकी	2-3	1.5-2 ग्राम

तरबूज व खरबूजे की एक हेक्टेयर की फसल के लिए लगभग 100-110 ट्रे प्लास्टिक से नर्सरी पौध तैयार की जा सकती है। जिसका खर्चा 55 पैसे प्रति पौध आता है। एवं इसमें पारंपरिक तरीके की तुलना में बीज ही उगता है।

नर्सरी अवस्था के दौरान पौधों की देखभाल

सिंचाई:- प्लग-ट्रे में लगी नर्सरी पौध पर पानी इस तरीके से डालें जिससे प्रत्येक सेल्स (पौधे) में हमेशा पर्याप्त नमी बनी रहें। सिंचाई फुहार के माध्यम से सुबह के समय डाले क्योंकि शाम को सिंचाई करने से पौधों की जड़ों में गलन की समस्या हो सकती है।

उर्वरक एवं खाद: इन्हें सीधे ना देकर पानी में घोल बनाकर डाला जाता है। कद्दूवर्गीय सब्जियों के लिए हफ्ते में एक बार 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फास्फोरस व 50 ग्राम पोटेशियम को 100 लीटर पानी में घोल बनाकर डालते हैं। ऐसा तीन से चार पर दिया जा सकता है।

रोग नियंत्रण: आर्द-पतन-नर्सरी पौधे का प्रमुख रोग है अगर ये फेलता दिखे तो पौधों के 0.2 प्रतिशत बेवस्टीन के घोल से उपचारित करना अथवा 0.1 प्रतिशत फार्मेलियन के घोल का भी छिडकाव किया जा सकता है। जब नर्सरी पौध में 3-4 पत्तियाँ आ जाए तथा वे 30-32 दिन के हो जाएं तब ये रोपण के लिए तैयार माने जाते है।

प्लग -ट्रे नर्सरी उत्पाद तकनीकी को क्यों अपनाएं

- प्लग-ट्रे तकनीकि के माध्यम से वर्ष के किसी भी समय बेमौसमी नर्सरी को उगाया जा सकता है। ■ मृदा जनित रोग जैसे पौध सड़न-गलन लगने की संभावना ना के बराबर रहती है। ■ स्वस्थ्य एवं रोग मुक्त पौधे कम समय में तैयार किए जा सकते है। ■ पारंपरिक तरीके से नर्सरी उगाने से कई पौधे नष्ट हो जाते है परंतु प्लग ट्रे के माध्यम से इस समस्या से निजात पाया जा सकता है। ■ प्लग ट्रे नर्सरी से प्रायः 95 से 100 ते पौधे जीवित रहते हैं। जिनके पौधारोपण के बाद भी जीवित रहने की काफी संभावना रहती है। ■ पारंपारिक तरीके की तुलना में आधी बीज दर लगती है। तथा देख रेख में भी कम खर्च आता है। ■ नर्सरी उत्पादन एक बेहद सफल व्यवसाय के तौर पर उभर रहा है।

" प्लास्टिक लो-टेबल"

शीत ऋतु में कद्दूवर्गीय सब्जियों को उगाने का बेहद विकल्प: प्रायः हमारे देश में उत्तर पश्चिम तथा उत्तर मैदानी भागों में कद्दूवर्गीय फसल जैसे तरबूज, खरबूज, खीरो, करेला, लौकी, आदि को उगाने का उपयुक्त समय फरवरी अंत से लेकर मार्च के महीने को माना गया है। क्योंकि उस वक्त तक ठंड मौसम के सभी प्रतिकूल प्रभाव काफी कम हो जाते है। कद्दूवर्गीय सब्जियों के पौधे अपने जीवनकाल में कम तापमान एवं वाले प्रति बेहद संवेदनशील होते है। परंतु प्लास्टिक लो-टेनल तकनीकी के इस्तेमाल से इस समस्या से पूर्णतः निजात पाया जा सकता है। लो-टेबल को मुख्य उद्देश्य पौधों को पाले तथा शीत लहर की मार से सुरक्षा प्रदान करना होता है। इसके अंतर्गत जनवरी प्रथम सप्ताह से लेकर फरवरी मध्य के बीच कद्दूवर्गीय फसलों की नर्सरी पौध कर जी जाती है। जिसके फलस्वरूप अगेती फसल मुख्य फसल की तुलना में 40-50 दिन पहले ही बाजार में बिकने पहुंच जाती है। जिसे पहली आवक के रूप में अधिक दामों मे बेच कर निश्चित तौर पर अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। इस लेख में इस तकनीकि के इस्तेमाल से ठंड के मौसम में कद्दूवर्गीय सब्जियों के सफल उत्पादन के विषय में विस्तृत जानकारी दी गई है।

'प्लास्टिक लो-टनल क्या है? क्यारियों के ऊपर तार व पॉलीथीन की सहायता से जमीनी सतह से 50-60 से.मी. ऊँची टेबलनुमा आकृति का निर्माण करते हैं जिसे प्लास्टिक लो-टेबल कहा जाता है। इस प्रकार की संरचना का मुख्या उद्देश्य वाले व ठंड पौधो की रक्षा कर बे-मौसमी सब्जियों का उत्पादन करना है। इसके निर्माण के लिए लोहे के पतले तार व पॉलीथीन की आवश्यकता होती है तारों को क्यारियों के ऊपर अर्धचन्द्राकार रूप में मोडकते हुए मिट्ठी जमीन में दबाकर स्थित कर देते है जिससे तार के दोनों अंतिम छोरो के बीच की दूरी 50-60 से.मी. की रहें। इसके पश्चात इन तारों के ऊपर 30-40 माइक्रॉन की पारदर्शी पॉलीथीन को चढ़ाकर ढॉक देते हैं तथा इसकी सतह को मिट्ठी में दबा दिया जाता है। इस प्रकार जब ठंड वाला अत्याधिक होता है तब सूर्य की ऊष्मा को अवशोषित करने के कारण टेबल के अंदर का तापमान बाहर की तुलना 6-7 डिग्री सेल्सियम तक अधिक बढ़ जाता है। जिसकी गर्माहट से जाडे में भी अधिक बढ़ जाता है। जिसकी गर्माहट में भी पौधों की सुरक्षा होती रहती है। जैसे-तैसे आने वाले दिनों में तापमान बढ़ता हैं। प्रत्येक पौधे के पास पॉलीथीन पर छिद्र कर दिए जाते हैं परंतु जब बाहर का तापमान अनुकुल हो जाए तथा पौधों में पुष्पन की क्रिया भी आरंभ हो जाए तब लो-टेबल को पूर्णतया हटा लिया जाता है।

नर्सरी उत्पादन: नर्सरी की पौध को दिसंम्बर मध्य से जनवरी मध्य के बीच में प्लग ट्रे (प्रो-टेऊ) की सहायता से नेट हाउस में तैयार किया जाता है। बीजों को 2 ग्राम बेविस्टीन प्रतिकिलों के आधार पर उपचारित करने से तथा ट्रे में मृदा विहिन माध्यम में उगाने से रोग मुक्त नर्सरी तैयार होती है। जब नर्सरी पौध 30-32 दिन की हो जाए तथा प्रत्येक पौध मे 3-4 स्वस्थ्य पत्तियाँ दिखने लगें तब ये खेत में प्रत्यारोपण के लिए तैयार माने जाते हैं प्रायः खेत में पौध रोपने का श्रेष्ठ समय जनवरी दूसरे सप्ताह से लेकर फरवरी मध्य तक का होता है। प्लग ट्रे के माध्यम से उगाई गयी नर्सरी पौध एक आकार की स्वस्थ्य होती है। तथा इनकी खेत में पौध रोपण के पश्चात जीवित रहने की संभावना सामान्य नर्सरी की तुलना में कई गुना अधिक रहती है।

मुख्य खेत में पौधारोपण: खेत को अच्छे से तैयार करने के बाद जमीन सतह से 10 कि.मी. ऊँचे उठे बडे नुमा आकृति बना ले। प्रत्येक बेड में एक क्यारी उपयुक्त रहती है। दो क्यारियों के बीच को दूरी 1.5 से.मी. 1.6 से.मी. रखें तथा पौध से पौध की दूरी 50 से.मी। इस तरह दो टबलों के बीच की दूरी 1.5 से.मी. स्वतः ही रहेगी।

बीज दर नीचे दी गई है

उर्वरक, सिंचाई एवं पौध प्रबंधन: प्लास्टिक लो-टेबल में प्रायः ड्रिप-पद्धति के द्वारा सिचाई की जाती है तथा उर्वरक भी पानी में घोल बनाकर ड्रिप पद्धती की सहायता से ही देते है। मुख्यतः पौध की प्रारंभिक अवस्था, पुष्पन एवं विकसित होने की अवस्था उर्वरक एवं सिचाई के प्रति ज्यादा संवेदनशील होती है। 50 किलोग्राम नत्रजन, 70 किलोग्राम फास्फोरस व 50 किलोग्राम पोटेशियम की मात्रा भरपूर रूप से पोषक देने में सहायक होती फास्फोरस व पोटेशियम उर्वरक की संपूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा खेत तैयार करने के वक्त मृदा में डाल दी जाती है। कद्दूवर्गीय सब्जियों की अधिक उत्पादकता मादा फूलों की ज्यादा संख्या होने पर भी निर्भर करती है। जिसे 25 मिलीग्राम बोरिक एसिड तथा यूरिया के घोल का छिडकाव करने से भी प्राप्त किया जा सकता है। बोरान का छिडकाव करने से तरबूज तथा खरबूजे में होने वाली फल चटकने की समस्या से निजात पाया जा सकता है।

परागण की प्रक्रिया: मुख्यतः सभी कद्दूवर्गीय सब्जियों में परागण मधमक्खियों के द्वारा किया जाता है। लो-टबल में छिद्रों की सहायता से मधुमक्खी अंदर प्रवेश कर पाती हैं। एक हैक्टेयर के क्षेत्रफल के लिए 25,000-30,000 मधुमक्खी की संख्या पर्याप्त है।

रोग एवं कीट प्रबंधन: कद्दूवर्गीय सब्जियों में मुख्य रूप सक सफेद मक्खी फल की मक्खी, माह व फल भेदक जैसे कीटों का ज्यादा प्रकोप रहता है। अतः इनसे बचाव के लिए 2 मिली ग्राम इमिडाक्लोरोफिल नाम कीटनाशक का प्रतिलीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें। फफूंद में पनपने वाले रोग जैसे मोजैक, बैक्टीरिया एवं वायरस जनित रोगों के लिए बीजों को 2 ग्राम बेक्सीन प्रति किलो बीज बैवस्टीन से बीजो प्रचार करना चाहिए। तथा डाईथेन-एम-45 2 ग्राम प्रतिलीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करने से मृदुरोमिल आसित (निल्डयू) पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

फलों की तुडाई: अगर जनवरी मध्य में पौधारोपण किया है तो मार्च अंत या अप्रैल प्रथम सप्ताह में फल तोड़ने के लिए तैयार हो जाते है। वैसे ही फरवरी प्रथम सप्ताह में लगाई गयी रोपणी से फसल अप्रैल मध्य तक बाजार में पहुंच जाती है। जो कि सामान्य मौसम की फसल की तुलना 45-50 दिन जल्दी होती है। तथा फसल की उत्पादकता भी सामान्य फसल ये 15-20 प्रतिशत तक अधिक होती है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

मौन विष एवं उपयोगिता

डॉ. अनिल कुमार सिंह, डॉ. एस.के. सिंह
(वरिष्ठ वैज्ञानिक) कृषि विज्ञान केन्द्र, दतिया (म.प्र.)

मधुमक्खी पालन एक मत्वपूर्ण कृषि निवेश है जिससे हमें अनेक औषधीय गुणों वाले पदार्थ जैसे शहद, मोम, शलाभ, पराग, रायल जैली तथा डंक विष मिलता है तथा फसलों में पर परागण द्वारा उत्पादन में भी वृद्धि होती है। मधुमक्खी छत्तों की रक्षा हेतु श्रमिक मधुमक्खियां डंक का प्रयोग करती है। यह एक विषाक्त, अवाष्पशील प्रोटीन तथा वाष्पशील कार्बनिक पदार्थों का मिश्रण है जिसे हम कृत्रिम रूप से एकत्र कर कई लाभ उठा सकते है। औषधि के रूप में भी मधुमक्खी विष का प्रयोग किया जा रहा है। यह गठिया, लकवा, चर्म रोग आदि के उपचार में सहायक होता है। मगर संवदेनशील व्यक्ति को चिकित्सक की सलाह पर ही इसका प्रयोग करना चाहिये।

भौतिक गुण

यह पारदर्शी द्रव है, जिसका घनत्व 1.13, स्वाद कड़वा तथा गंध तीव्र होती है। यह कमरे के तापमान पर सूख जाता है जिसके कारण इसके भार में 70 प्रतिशत की कमी आ जाती है। शुष्क विष ठोस व पारदर्शी होता है। यह अम्ल तथा पानी दोनों में घुलनशील है। शुष्क अवस्था में ये उच्च व निम्न तापक्रम के प्रति प्रतिरोधक है।

रासायनिक संरचना: यह अवाष्पशील प्रोटीन तथा वाष्पशील कार्बनिक पदार्थों का एक जलीय मिश्रण है जिसमें मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, एमीनो अम्ल, पेप्टाइज प्रोटीन, एन्जाइम व वाष्पील पदार्थों में इथेनाल, फार्मिक अम्ल व ब्यूटाइल एसिटेट व आक्सोएमाइल एसिटेट होता है। एपिस फ्लेरिया का विष कम विषैला होता है जबकि भारतीय मौन का विष इटालियन व सारंग मधुमक्खी से दो गुना विषैला होता है।

विष एकत्रित करने की विधि: कुछ समय तक मधुमक्खी विष एकत्र करने का तरीका कठिन व मधुमक्खियों के लिये कष्टकारी था जिसमें मधुमक्खियों को मारकर उनका विष निकाला जाता था। वैक्टोन, मोर्स तथा स्अीवर्स नामक वैज्ञानिकों ने श्रमिक मधुमक्खियों की विष ग्रन्थियों से विष निकालने के लिये आधुनिक व सरल विधि विकसित की है, जिससे गहरे बाटमबोर्ड की तरह अलग से बोर्ड का निर्माण करवाया जाता है, इसमें तॉबें अथवा स्टील के तार समानान्तर लगाये जाते है जिसके उपर बरीक नाइलोन का कपड़ा लगा दिया जाता है। तार में विद्युत के हल्के करण्ट को प्रवाहित करने की व्यवस्था रहती है। साथ ही तार के नीचे विष को संग्रहित करने के लिये शीषे की प्लेट लगा दी जाती है तथा फिर करंट प्रवाहित कर दिया जाता है। श्रमिक मधुमक्खियां जो इसके सम्पर्क में आती है। उन्हें हल्का विद्युत करंट लगता है जिससे वह गुस्से में नाइलोन के कपड़े पर डंक मारती है, और विष नीचे रखी शीषे की प्लेट पर एकत्र हो जाता है। इसे मधुमक्खी कॉलोनी में मात्र पांच मिनिट तक ही लगाकर रखना चाहिये। इस प्रकार बीस मौन वंषों

से एक के बाद एक में लगाने पर लगभग दस हजार श्रमिक मधुमक्खियों से एक ग्राम मौन विष का संग्रह किया जा सकता है।

मधुमक्खी विष का औषधि में प्रयोग

मधुमक्खियों के विष से अनेक रोगों का उपचार किया जा सकता है।

- मधुमक्खी विष का उपयोग अनेक औषधियां बनाने में किया जाता है जिससे गठिया, वात रोग, लकवा रोग से पीड़ित रोगियों का उपचार किया जा सकता है। इन रोगों के उपचार हेतु जीवित मधुमक्खियों द्वारा डंक लगाया जाता है। यह विधि चीन में बहुत प्रचलित है। • यह विष एन्टीवायोटिक के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त न्यूराईटिस एवं न्यूरालोजिया आदि रोगों के उपचार के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।
- एन्टीबायोटिक गुण होने के कारण ये हाइपरटेंशन, आंख के रोगों के साथ, मलेरिया जैसी बीमारियों के इलाज में भी कारगर है। ये कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को भी नियंत्रित करता है।
- त्वचा रोग, मलेरिया, घेंघा एवं रक्त चाप जैसे रोगों के लिये भी उपयोगी दवा है।
- विष का प्रयोग क्रीम व दवा बनाने में भी किया जाता है।

मौन विष में उपस्थित प्रमुख तत्व

	तत्व	प्रतिशत
प्रोटीन	हयालोरोनिडेज	1-3
	फास्फोलाइपेज I2	10-12
पेप्साईड्स	मेलिटिन	50
	सेकापिन	0.5-2.0
	एमसीडीपेप्टाइड	1-2
	एपामीन	1-3
	प्रोकामिन	1-2
एमिन	हिस्टामिन	0.5-2.0
	डोपामिन	0.2-1.0
	नारएड्रेनेलिन	0.1-0.5
	गामा-ऐमिनोब्यूटाएरिक एसीड	0.5
शर्करा	ग्लूकोस	0.5
	फ्रुक्टोस	2.0
	फास्फोलिपिड्स	5.0
	एमिनो अम्ल	1.0
	वाष्पषील तत्व	4-8

स्वच्छ भारत मिशन
नगर पालिक निगम छिंदवाड़ा (म.प्र.)
आज़ादी का अमृत महोत्सव
26 जनवरी 2022 गणतंत्र दिवस राष्ट्रीय पर्व के पुनीत अवसर पर नगरवासियों को
हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं
''राष्ट्र प्रेम की बने मिसाल, 26 जनवरी मनाए जैसे धार्मिक त्यौहार''
कोरोना संक्रमण से बचने के लिए आपस में दूरी बनाए रखें, मास्क पहने एवं बार-बार हाथ धोने सहित स्वास्थ्य दिशा निर्देशों का पूरी तरह पालन करें।
26 January HAPPY Republic Day
निवेदकः नगर पालिक निगम छिन्दवाड़ा

ISSN-2582-5976

सहजन की लाभकारी खेती एवं गुण

श्री कुंअर, खुशबू नामदेव
(पीएचडी स्कॉलर) उद्यान विज्ञान
रीना रावत, मोना रघुवंशी
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

सहजन का वैज्ञानिक नाम मोरिंगा ओलीफेरा है और यह भारतीय मूल का मोरिंगासाय परिवार का सदस्य है। तथा यह एक औषिधीय पौधा है। सहजन को अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नाम से जाना जाता है जैसे- ड्रमस्टिक, मोरिंगा, शेवगा, मूंगा, सुरजना तथा सहजन को बिना किसी विशेष देखभाल एवं शून्य लागत पर आमदनी देने वाली फसल है। किसान भाई अपने घरो के आसपास अनुपयोगी जमींन पर सहजन के पौधे लगाकर आर्थिक संपन्नता प्राप्त कर सकते है। यह एक बहुवार्षिक तथा कमजोर जमीन पर भी बिना सिंचाई के साल भर हरा-भरा और तेजी से बढ़ने वाला पौधा है।

जलवायु एवं मृदा: सहजन की फसल को किसान सूखे की स्थिति और कम गुणवत्ता वाली मिट्टी में भी लगा सकते है। तथा इसकी वृद्धि के लिए गर्म और नमीयुक्त जलवायु की आवश्यकता होती है। फूल खिलने के लिए 25 से 30 डिग्री तापमान अनुकूल है परन्तु व्यवसायिक खेती के लिए 6 से 7 पी एच मान वाली दोमट मिट्टी बेहतर मानी गई है।

सहजन प्रजातियां

रोहित-1 : इस किस्म के पौधे रोपने के 4 से 6 महीने बाद ही उत्पादन शुरू कर कर देता है एक साल में दो बार फलियों की उपज होती है और दस साल तक व्यावसायिक उत्पादन होता रहता है। इस किस्म की फलियां हरे रंग की एवं 40 से 60 सेंटीमीटर लंबी होती है। फलियों का गुदा स्वादिस्ट एवं मुलायम होता है।

कोयम्बटूर -2: इसकी फलियों की लम्बाई 25 से 35 सेंटीमीटर होती है प्रत्येक पौधा 250 से 375 छड़ी पैदा करता है।

पी के एम -1 पी के एम -1: की प्रत्येक छड़ी लम्बाई में बड़ी होती है और प्रत्येक पौधा 200 से 350 छड़ी पैदा करता है

पी.के.एम -2 : प्रत्येक छड़ी की लम्बाई 45 से 75 सेंटीमीटर होती है और प्रत्येक पौधा 300 से 400 छड़ी पैदा करता है लेकिन पी.के.एम 2 किस्म के पौधे में ज्यादा पानी की जरुरत होती है।

सहजन फसल को उगाने की विधि :सहजन की फसल को दो अलग अलग तरीके से लगा सकते है जैसे बीज विधि से और कलम (शाखा के टुकड़ो से) दोनों से ही लगाना अच्छा माना जाता है लेकिन अच्छे फलन और साल मे दो बार फलन के लिए बीज से प्रबर्धन करना अच्छा है तथा एक हेक्टैयर में खेती करने के लिए 500 से 600 ग्राम बीज पर्याप्त है बीज को सीधे तैयार गड्ढों में या फिर पॉलीथिन बैग मे तैयार कर गड्ढो मे लगाया जा सकता है। पॉलीथिन बैग मै पौधे एक महीने मै लगाने योग्य हो जाते है। बीज सीधे गड्ढो में लगाए जाते है और 2.5-2.5 मीटर की दुरी के साथ प्रति हेक्टैयर 1600 पौधे लगाए जा सकते है तथा 45×45×45 सेंटीमीटर आकार के पिट खोदे जाते है और बीज गड्ढे के केंद्र मे बोये जाते है बीज बुवाई के 10 से 12 दिनों बाद अंकुरित हो जाता है। जब सहजन सिंचाई चैनलों के साथ एकल पंक्तियो में लगाया जाता है, तो 2 मीटर की दुरी पर्याप्त होती है। और एक महीने की तैयार पौध को पहले से तैयार किये गये गड्ढो मे माह जुलाई - सितम्बर तक रोपनी कर देनी चाहिए।

नोट : पौध रोपण से पहले बीज को पानी मे रात भर भीगने के लिए डाल दे।

पौध रोपण से पहले छिल्के को निकाल ले। छिलके को हटाकर सिर्फ गुटली को लगाए।

रेटूनिंग: हर साल मोरिंगा मे जब फसल खत्म हो जाती है, पेड़ो को जमीन के स्तर से एक मीटर की ऊचाई से काटा जाता है कटाई के बाद पौधों से फुटाव होता है और रेटूनिंग के बाद चार या पांच महीने में फिर फल लगते है। उत्पादन चक्र के दौरान तीन रेटूनिंग की जाती है।

शस्य प्रबंधन: पौधा जब लगभग 75 सेंटीमीटर का हो जाये तो पौध के ऊपरी भाग की खोटनी कर दे, इसके बगल से शाखाओ को निकलने में आसानी होगी। रोपनी के तीन महीने बाद 100 ग्राम यूरिया +100 ग्राम सुपर फास्फेट +50 ग्राम पोटाश प्रति गड्ढा की दर से डाले तथा इसके तीन महीने बाद 100 ग्राम यूरिया प्रति गड्ढा पुनः उपयोग करें। सहजन पर किये गये शोध में यह पाया गया कि मात्र 15 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति गड्ढा तथा एजोस्पिरिलियम और पी एस बी (5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) के प्रयोग से जैविक सहजन की खेती, उपज मे बिना किसी ह्रास् के किया जा सकता है।

सिंचाई: अच्छे उत्पादन के लिए सिंचाई करना लाभदायक है। गड्ढो में बीज से अगर प्रबर्धन किया गया है तो बीज के अंकुरण और अच्छी तरह से स्थापन तक नमी का बना रहना आवश्यक है। फूल लगने के समय खेत ज्यादा सूखा या ज्यादा गीला रहने पर दोनों ही अवस्था में फूल के झड़ने की समस्या होती है।

फल की तुड़ाई एवं उपज: साल में दो बार फल देने वाले सहजन की किस्मो की तुड़ाई सामान्यता फरवरी -मार्च और सितम्बर -अक्टूबर में होती है। प्रत्येक पौधे से लगभग (40 -50 किलोग्राम) सहजन सालभर में प्राप्त हो जाता है सहजन की तुड़ाई बाजार और मात्रा के अनुसार 1 से 2 माह तक चलता है। सहजन के फल में रेशा आने से पहले ही तुड़ाई करने से बाजार में मांग बनी रहती है।

सहजन की सहफसली खेती: सहजन में इंटरक्रॉपिंग के लिए ऐसी फसलों को चुनना चाहिए जो कि सूखे के लिए सहिष्णु है और उनकी मिटटी की प्राथमिकता भी मोरिंगा के समान हो। परिपक्व पेड़ो पर बेल वाली फसल जैसे- करेला, तोरई, सेम लगाई जा सकती है साथ ही साथ टमाटर, मिर्च, सेम, मक्का, बाजरा दालों की भी खेती मोरिंगा के साथ की जा सकती है।

किसानो के लिए सहजन खेती के फायदे ङ्क

सहजन की फसल लगाने के निम्नलिखित फायदे होते है जैसे -

• इस फसल को न्यूनतम सिंचाई की आवश्यकता होती है। • इसके लिए कम मात्रा में खाद और उर्वरको की आवश्यकता होती है। • इसकी खेती में अधिक श्रम की आवश्यकता नहीं होती है • किसान भाई एक हेक्टैयर से भी कम क्षेत्र में खेती करते है, इसलिए वे आसानी से अपने उत्पाद को स्थानीय बाजार में ले जा सकते है।

सहजन का गुण एवं उपयोग

• सहजन बहुउपयोगी पौधा है। पौधे के बीज, पत्ती, छाल, जड़ का प्रयोग भोजन, आयुर्वेदिक दवा और औद्योगिक कार्यो आदि मे किया जाता है • सहजन के फल और फूलों को सब्जियों के रूप में प्रयोग किया जाता है। सहजन का गुदा और बीज, करी, सुप और सांभर में उपयोग किया जाता है। • सहजन की पत्तियां एवं फूल को हर्बल मेडिसिन के रूप उपयोग किया जाता हैं। • आयुर्वेद चिकित्सको के अनुसार यह एक ऐसा औषधीय पौधा है जो लगभग 300 से भी अधिक रोगों से बचाव करता है। • सहजन कम लागत पर आमदनी देनी वाली फसल है सभी किसान भाई अपने घरों के आस-पास अनुपयोगी जमीन पर सहजन के कुछ पौधे लगा सकते है जिससे उन्हें घर के खाने के लिए सब्जी उपलब्ध हो सकेगी वही इसे स्थानीय बाजार में बेचकर आर्थिक सम्पन्नता भी ले सकते है। • सहजन के बीज से निकाले जाने वाले तेल का उपयोग कई तरह की दवाईयां बनाने में किया जाता है तथा इसके तेल को चेहरे पर लगाने से चेहरे के दाग धब्बे साफ हो जाते है • एक अध्ययन के अनुसार इसमें दूध की तुलना में चार गुना पोटेशियम तथा संतरा की तुलना में सात गुना विटामिन सी है। • इसका उपयोग परफ्यूम, दवा, उर्वरक, और पानी को प्यूरिफाई करने के लिए किया जा सकता है इसलिए सहजन की जड़ को बहुत उपयोगी माना जाता है। • भारत में कई आयुर्वेदिक कम्पनियां मुख्यतः व्यावसायिक के रूप से सहजन से दवा बनाकर जैसे -पाउडर, कैप्सूल, तेल, बीज आदि विदेशो में निर्यात कर रहे है।

ISSN-2582-5976

प्लास्टिक अपशिष्ट प्रदूषण के लिए एक नई खोज
प्लास्टिक खाने वाले बैक्टीरिया

अंजलि कुमारी (शोधकर्ता)
पर्यावरण विज्ञान विभाग, एम.जी.सी.जी.वी विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)

विकाश सिंह (शोधकर्ता)
कृषि अभियांत्रिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

रमेश वर्मा (शोधकर्ता) कृषि अभियांत्रिकी विभाग, काशी हिन्दू वि.वि. वाराणसी (उ.प्र.)

प्लास्टिक प्रदूषण पृथ्वी के वातावरण में प्लास्टिक की वस्तुओं और कणों (जैसे प्लास्टिक की बोतलें, बैग और माइक्रोबीड्स) का संचय है जो वन्यजीवों, वन्यजीवों के आवास और मनुष्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। प्रदूषक के रूप में कार्य करने वाले प्लास्टिक को आकार के आधार पर सूक्ष्म, मेसो- या मैक्रो मलबे में वर्गीकृत किया जाता है।

पक्षियों से लेकर मछलियों से लेकर अन्य समुद्री जीवों तक हर साल प्लास्टिक से लाखों जानवर मारे जाते हैं। प्लास्टिक की बोतलें दुनिया के वार्षिक प्लास्टिक उत्पादन का लगभग छठा हिस्सा बनाती हैं। प्लास्टिक एक ऐसी स्थायी सामग्री है जो लंबी अवधि के लिए पारिस्थितिक, आर्थिक और पर्यावरण-विषैले प्रभाव पैदा करती है, जैसे-

- **समुद्री जीवन पर भौतिक प्रभाव:** उलझाव, अंतर्ग्रहण और भुखमरी।
- **रासायनिक प्रभाव:** पीसीबी और डीडीटी जैसे लगातार कार्बनिक प्रदूषकों का निर्माण।
- प्रदूषित नदियों से आक्रामक प्रजातियों और प्रदूषकों का समुद्र में दूर-दराज के क्षेत्रों में परिवहन।
- **आर्थिक प्रभाव:** मत्स्य पालन, जहाजों और पर्यटन को नुकसान।

प्लास्टिक का अपघटन एक चुनौती है

अंतर्राष्ट्रीय ग्रीनपीस संगठन के अनुसार, विश्व स्तर पर केवल 9 प्रतिशत प्लास्टिक का पुनर्नवीनीकरण किया जाता है।

पर्यावरण पर प्लास्टिक अपघटन के प्रतिकूल प्रभाव

- प्लास्टिक की थैलियों का पर्यावरण पर सबसे

बड़ा प्रभाव यह है कि इसे सड़ने में कई साल लग जाते हैं।
- जब प्लास्टिक की थैलियां सूरज की रोशनी में नष्ट हो जाती हैं तो जहरीले पदार्थ मिट्टी में मिल जाते हैं।
- अगर प्लास्टिक की थैलियों को जलाया जाता है, तो वे हवा में एक जहरीला पदार्थ छोड़ते हैं जिससे परिवेशी वायु प्रदूषण होता है।
- प्लास्टिक की थैलियों को दुनिया भर में लैंडफिल में अंधाधुंध फेंक दिया जाता है जो भूमि के एक बड़े क्षेत्र पर कब्जा कर लेते हैं और उनके अपघटन चरण के दौरान इन लैंडफिल से खतरनाक मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड गैसों के साथ-साथ अत्यधिक जहरीले लीचेट्स का उत्सर्जन करते हैं।
- प्लास्टिक की थैलियों से निकलने वाला कचरा मानव और पशु स्वास्थ्य के लिए गंभीर पर्यावरणीय खतरा है।

प्लास्टिक खाने वाले बैक्टीरिया: एक नई खोज

जापानी शोधकर्ताओं ने 2016 में मिट्टी और अपशिष्ट जल से एकत्रित पीईटी (पॉलीइथाइलीन टेरेफ्थेलेट) प्लास्टिक के मलबे पर रहने वाले रोगाणुओं का विश्लेषण करके प्लास्टिक खाने वाले जीवाणु, 'आइडोनेला सैकाइनेसिस' की खोज की। जापान के साकाई में, इस जीवाणु को मूल रूप से एक तलछट के नमूने से अलग किया गया था, जो प्लास्टिक की बोतल रीसाइक्लिंग सुविधा से एकत्र किया गया था। यह जीवाणु **Ideonella** जीनस और **Comamonadaceae** परिवार से संबंधित है। यह 5.5 से 9.0 के पीएच और 15-42 °C के तापमान के भीतर विकसित होता है। यह प्लास्टिक कंपाउंड पॉलीइथाइलीन टेरेफ्थेलेट (पीईटी) को तोड़ने और उपभोग करने में सक्षम है। लेकिन टूटने की प्रक्रिया, पीईटी के अंगूठे के आकार के टुकड़े को पूरी तरह से विघटित करने के लिए 30 डिग्री सेल्सियस पर लगभग 6 सप्ताह का लंबा समय लेती है।

नए सुपर-एंजाइम का आविष्कार

जापान में प्लास्टिक के टूटने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए, 'सुपर-एंजाइम' को दो अलग-अलग एंजाइम **PETase** और **MHETase** को जोड़कर बनाया गया था, जो दोनों प्लास्टिक खाने वाले बग में पाए गए थे। पीईटी सबसे आम थर्माप्लास्टिक है, जिसका उपयोग एकल-उपयोग वाली पेय की बोतलें, कपड़े और कालीन बनाने के लिए किया जाता है और इसे पर्यावरण में टूटने में सैकड़ों साल लगते हैं। पेटेज एंजाइम इस समय को दिनों तक छोटा कर सकता है। टीम ने प्रयोगशाला में प्राकृतिक **PETase** एंजाइम विकसित किया, जो **PET** को तोड़ने में लगभग 20 प्रतिशत तेज होगा। अप्रैल 2020 में, ट्रांस-अटलांटिक टीम ने एक 'सुपर-एंजाइम' बनाया, एंजाइम को केवल **PETase** और **MHETase** नामक एक दूसरे एंजाइम को मिलाकर विकसित किया गया था। यह सुपर-एंजाइम छह गुना तेजी से काम करता है।

बैक्टीरिया प्लास्टिक को कैसे विघटित करते हैं?

सबसे पहले, **Ideonella sakaiensis PET** से टेंड्रिल जैसे धागों से जुड़ जाते हैं और फिर **PET** हाइड्रोलेस या **PETase** छोड़ते हैं। इस तरह पीईटी तीन उप-यौगिकों में विघटित होता है-

- मोनो (2-हाइड्रॉक्सीएथाइल) टेरेफ्थेलिक एसिड **(MHET)**
- हेटेरोडिमर; टेरेफ्थेलिक एसिड (टीपीए) से बना है, और
- एथिलीन ग्लाइकॉल।

MHET को तब कोशिका के बाहरी झिल्ली पर एक लिपिड-एंकर वाले **MHET** हाइड्रोलेस एंजाइम **(MHETase)** द्वारा अवक्रमित किया जाता है। एथिलीन ग्लाइकॉल, **I.sakaiensis** और कई अन्य बैक्टीरिया द्वारा आसानी से पच जाता है। टेरेफ्थेलिक एसिड (टीपीए), टेरेफ्थेलिक एसिड ट्रांसपोर्टर प्रोटीन की मदद से जीवाणु (आई। सैकेएंसिस) सेल में प्रवेश करता है, जहां एसिड ऑक्सीकृत और विघटित होता है। इस तरह दोनों एंजाइम पीईटी को टेरेफ्थेलिक एसिड और एथिलीन ग्लाइकॉल में तोड़ देते हैं। बैक्टीरिया तब दोनों उपोत्पादों को पचाते या विघटित करते हैं। इस प्रकार यह हमारे पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले प्लास्टिक से छुटकारा पाने में बहुत उपयोगी साबित होता है। यह खोज प्लास्टिक कचरे से निपटने के लिए संभावित कम-ऊर्जा समाधान बनाने, प्लास्टिक रीसाइक्लिंग में बहुत मददगार है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

फसलों के उत्पादन में मुख्य पोषक तत्वों की भूमिका

डॉ. वाय.के. शुक्ला, डॉ. रश्मि शुक्ला
कृषि विज्ञान केन्द्र खण्डवा (म.प्र.)

नाइट्रोजन

यह प्रथम आवश्यक पोषक तत्व है जो पौधों की कोशिकाओं और पर्णहरित (क्लोरोफिल) के निर्माण में भूमिका निभाता है। क्लोरोफिल (पर्णहरित) प्रकाश संश्लेषण में मदद करता है जिससे पौधों का भोजन बनता है और खाद्य पदार्थ संचित होता है। पेड़ पौधों व जीव जन्तुओं यहां तक की मनुष्यों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में गुणों का स्थानांतरण डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. नामक यौगिक से होता है जिसका निर्माण नाइट्रोजन के बिना असंभव है। अमीनों अम्ल के संश्लेषण में भी नाट्रोजन अत्यंत ही महत्वपूर्ण है।

नाइट्रोजन की कमी के प्रमुख लक्षण

जब पौधों के वृद्धिकाल में नाइट्रोजन तत्व की कमी होती है तो उसका लक्षण पौधों की निचली पत्तियों पर अच्छी तरह से दृष्टिगोचर होता है। प्रभावित पत्तियां (प्रथम निचली) पीली पड़ने लगती हैं और बाद में सूख जाती है।

■ पौधों की बढ़वार रूक जाती है। ■ पौधों की अतः गांठे (दो गांठों के बीच की दूरी) घट जाती है। ■ पौधों में हरित लवक (हरियाली) की कमी हो जाती है। ■ प्रोटीन की मात्रा की कमी हो जाती है। ■ नई कोशिकाओं का बनना कम हो जाता है। ■ तना पतला सीधा व कड़ा हो जाता है।

नाइट्रोजन की अधिकता के लक्षण

पौधों में नाइट्रोजन तत्व की अधिकता होने पर बानस्पतिक वृद्धि अधिक हो जाती है। पत्तियां गहरी हरे रंग की हो जाती हैं और फसल देर से पकती है। फसल पर रोग एवं कीड़ों की आक्रमण की संभावना बढ़ जाती है।

नाइट्रोजन की आपूर्ति करने के उपाय

सब्जी फसलों को पोषक तत्व (नाइट्रोजन) की आपूर्ति करने के लिए अकार्बनिक व कार्बनिक हरी खाद, जैविक खाद, कम्पोस्ट, खलियां, मुगियों की बिछावन की खाद, पशु अवशेष, नाइट्रोजन स्थिर करने वाले वृक्षों की पत्तियों की खाद, दलहनी फसलें उगाकर, जैविक खाद जैसे एजोटोबैक्टर एजोस्पाइरीलम इत्यादि का प्रयोग करके किया जा सकता है।

विभिन्न खाद उर्वरकों मे विद्यमान की मात्रा: नीचे दी गई सारिणी में कार्बनिक व अकार्बनिक रासायनिक उर्वरकों में नत्रजन की मात्रा इस प्रकार है-

प्रकार	उर्वरक	नत्रजन (:)
अकार्बनिक	यूरिया	46
	अमोनियम सल्फेट	21
	कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट	25-28
	अमोनियम क्लोराइड	25-26
	डाइ अमोनियम फास्फेट	18
कार्बनिक	कम्पोस्ट	0.5-1.0
	पशु गोबर	0.3-0.4
	घरेलू राख	0.5-1.9
	भेड़ का गोबर	0.5-0.7
	मुर्गीखाने की खाद	1.0-1.8
	उपचारित स्लज	1.7-1.9

चीनी मिल की खोई की खाद (प्रेशमड)

फास्फोरस

पेड़ पौधों-फलों व सब्जियों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों में नाइट्रोजन के बाद फॉस्फोरस दूसरा महत्वपूर्ण तत्व हैं। यह पौधों की वृद्धि एवं अन्य रासायनिक क्रियाओं में योगदान करता है। यह कोशिकाओं में पाए जाने वाले नाभिक में न्यूक्लियो प्रोटीन का एक विशेष अंग हैं। इसकी उपलब्धता से फसल शीघ्र पकती है। सब्जियों की गुणवत्ता अच्छी हो जाती है तथा पौधों में रोग से लड़ने की क्षमता का विकास होता है। जड़ों में बनने तथा मूल रोम के विकास में फॉस्फोरस का विशेष महत्व हैं।

कमी के लक्षण

फास्फोरस की कमी से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है, पौधों की बढ़वार रूकने से पत्तियां किनारे की तरफ से बैगनी गुलाबी रंग की हो जाती है। पुरानी पत्तियां पहले प्रभावित होती है जड़ों का विकास रूक जाता है। मूल रोम छोटे ये नहीं बनते हैं। जड़ों का घनत्व कम हो जाता है। पत्तियों के पर्ण छिद्र में स्टोमैटा नहीं खुलते जिसके कारण पौधों का ताप दिन में बढ़ जाता है। फसल पकने में देर होती है। फसलों में बीज कमजोर व छोटे बनते हैं इसकी अधिकता होने पर सूक्ष्म तत्व जैसे जस्ता, लोहा व कोबाल्ट की कमी होने लगती है।

मिट्टी में फास्फोरस

मिट्टी के सतह में फॉस्फोरस की कुल मात्रा 0.02 से 0.10 प्रतिशत पाई जाती हैं। मिट्टी में फॉस्फोरस डालने पर 70-80 प्रतिशत मात्रा भूमि में स्थिर हो जाती है और पौधों को अनुपलब्ध रहती है। पी.एच.मान. 6.7.-7.5 के मध्य वाली मृदा में इसकी उपलब्धता अधिक रहती है। नम व सूखी भूमि में फॉस्फोरस का संचालन कम होता है। अधिक लाभ लेने के लिए इन्हें बीज या पौधों के अलग बगल देना चाहिए। सब्जियों में इसकी मात्रा 30-60 कि.ग्रा./हे. की दर से प्रयोग की जाती है। संकर किस्मों में यह मात्रा 80 कि.ग्रा./हे तक पहुंच जाती हैं।

स्त्रोत	फॉस्फोरस
रॉक फास्फेट	24-40
सिंगल सुपर फास्फेट	16-20
ट्रिपल सुपर फास्फेट	48-53
मोनो अमोनियम फास्फेट	46-62
डाई अमोनियम फास्फेट	46-53
कार्बनिक खाद	5-10

पोटेशियम

आवश्यक पोषक तत्वों में पोटेशियम तीसरा प्रमुख तत्व है। यह पौधों में रोग निरोधक क्षमता बढ़ाता है। पाला व शीत से भी पौधों की रक्षा करता है। पानी की अधिकता व कमी दोनों अवस्थाओं में पौधों की सुरक्षा करता है। कीट -व्याधियों ये पौधों को सुरक्षित रखता है। बीज सुडौल व उच्च गुणवत्ता युक्त बनने में मदद करता है। इसके अलावा दलहनी फसलों की जड़ों के गाठों द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण व प्रकाश संश्लेषण द्वारा प्रोटीन व स्टार्च बनने में मदद करता है। इन्जाइम क्रियाशीलता को बढ़ाता है तथा अन्य तत्वों के संतुलन बनाए रखने में मदद करता हैं।

कमी के लक्षण

पोटेशियम की कमी से पौधों की बढ़वार रूक जाती है तने कमजोर होकर गिर जाते है। कमी का लक्षण सर्वप्रथम पुरानी व नीचे की पत्तियों पर दिखलाई देता हैं। पत्तियों के किनारों का हरा रंग उड़ने लगता है और पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। सब्जियों की पैदावार घट जाती है। रोग एवं कीड़े मकोड़ों तथा पाला का प्रभाव तेजी से पड़ने लगता है। कन्द एवं जड़ वाली फसलों में पोटेशियम का अच्छा असर देखने को मिलता है। पौटेशियम की अधिकता होने पर नत्रजन की कमी का लक्षण दिखलाई पड़ता है।

मिट्टी में पोटेशियम

पोटेशियम देने के लिए रासायनिक उर्वरक का सहारा लेना पड़ता है या फिर जीवांश खाद या कम्पोस्ट खाद का प्रयोग किया जाता है।

स्त्रोत	पोटेशियम (%)
म्यूरेट आफ पोटाश	60-62
पोटेशियम सल्फेट	50
जीवांश खाद या कम्पोस्ट	0.9-1.5

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

कम लागत प्राकृतिक खेती

डॉ. शैलेश कुमार सिंह
वरिष्ठ वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
डॉ. आर.के.एस. तोमर
डॉ. अनिल कुमार सिंह
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय,
कृषि विज्ञान केन्द्र, दतिया (म.प्र.)

जीरो बजट प्राकृतिक खेती क्या है?: प्राकृतिक खेती का मुख्य आधार देसी गाय है। जीरो बजट प्राकृतिक खेती देसी गाय के गोबर एवं गौमूत्र पर आधारित है। प्राकृतिक खेती कृषि की प्राचीन पद्धति है। यह भूमि के प्राकृतिक स्वरूप को बनाए रखती है। प्राकृतिक खेती में रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता है। इस प्रकार की खेती में जो तत्व प्रकृति में पाए जाते है, उन्हीं को खेती में उर्वरक व कीटनाशक के रूप में उपयोग किया जाता है। एक देसी गाय के गोबर एवं गौमूत्र से एक किसान तीस एकड़ जमीन पर जीरो बजट खेती कर सकता है। प्राकृतिक खेती में फसलों के पोषक तत्व की आपूर्ति हेतु जीवाणु खाद, देसी प्रजाति के गौवंश के गोबर एवं मूत्र से जीवामृत, घनजीवामृत तथा जामन बीजामृत, गोबर की खाद, कम्पोस्ट, फ़सल अवशेष और प्रकृति में उपलब्ध खनिज जैसे- रॉक फास्फेट, जिप्सम आदि से किए जाते हैं। इनका खेत में उपयोग करने से मिट्टी में पोषक तत्वों की वृद्धि के साथ-साथ जैविक गतिविधियों का विस्तार होता है। जीवामृत का महीने में एक अथवा दो बार खेत में छिड़काव किया जा सकता है। जबकि बीजामृत का इस्तेमाल बीजों को उपचारित करने में किया जाता है। प्राकृतिक खेती में प्रकृति में उपलब्ध जीवाणु, मित्र किट और जैविक कीटनाशकों द्वारा फ़सल को हानिकारक कीटों एवं रोगों से बचाया जाता है। इस विधि से खेती करने वाले किसान को बाजार से किसी प्रकार का उर्वरक, खाद, कीट एवं रोगनाशक रसायनों को खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फसलों की सिंचाई के लिये पानी एवं बिजली भी मौजूदा खेती-बाड़ी की तुलना में दस प्रतिशत ही खर्च होती है ।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती की आवश्यकता

- पिछले कई वर्षों से खेती में काफी नुकसान देखने को मिल रहा है। इसका मुख्य कारण हानिकारक कीट एवं रोगनाशकों का उपयोग है। इसमें लागत भी बढ़ रही है। • भूमि के प्राकृतिक स्वरूप में भी बदलाव हो रहे है जो काफी नुकसान भरे हो सकते हैं। रासायनिक खेती से प्रकृति वातावरण एवं मनुष्य के स्वास्थ्य में काफी गिरावट आई है। • किसानों की पैदावार का आधा हिस्सा उनके उर्वरक, खाद, कीट एवं रोगनाशकों में ही चला जाता है। यदि किसान खेती में अधिक मुनाफा या फायदा कमाना चाहता है तो उसे प्राकृतिक खेती की तरफ अग्रसर होना चाहिए। • खेती में खाने पीने की चीजे काफी उगाई जाती है जिसे हम उपयोग में लेते है। इन खाद्य पदार्थों में जिंक और आयरन जैसे कई सारे खनिज तत्व उपस्थित होते है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक होती है। रासायनिक खाद और कीटनाशक के उपयोग से जमीन की उर्वरक क्षमता खो रही है। यह भूमि के लिए बहुत ही हानिकारक है और इससे तैयार खाद्य पदार्थ मनुष्य और जानवरों की सेहत पर बुरा असर डाल रहे है। • रासायनिक खाद और कीटनाशक के उपयोग से मिट्टी की उर्वरक क्षमता काफी कम हो गई। जिससे मिट्टी के पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ गया है। इस घटती मिट्टी की उर्वरक क्षमता को देखते हुए जैविक खाद उपयोग जरूरी हो गया है।

रासायनिक खेती और जीरो बजट प्राकृतिक खेती के बीच अंतर:

रासायनिक खेती

रासायनिक रूप से प्रबंधित मिट्टी में, पौधों के पोषक तत्वों की पूर्ति केवल

अकार्बनिक स्रोत के माध्यम से की जाती है, बिना किसी कार्बनिक स्रोत के भोजन प्राप्त करने के लिए। यह अंततः मृदा-पारिस्थितिकी तंत्र को विकास माध्यम से वंचित कर देता है। अधिकांश पोषक तत्व जड़ क्षेत्र से बाहर निकल जाते हैं और फसल बेहतर जड़ लंगर के लिए आवश्यक पोषक तत्व को खो सकती है। इसी तरह रासायनिक रूप से प्रबंधित मिट्टी फसलों को अधिक संरचना समर्थन प्रदान नहीं करती है। उपरोक्त के संयोजन से फसल पकती है। रासायनिक रूप से प्रबंधित मिट्टी मिट्टी में अवशेषों को छोड़ती है और जल पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनता है। कभी-कभी यह मानव पर्यावरण के लिए विषाक्त प्रभाव का कारण बनता है। अकार्बनिक इनपुट सामग्री महंगी होती है और उत्पादन और संचालन के लिए बहुत अधिक तकनीकी ज्ञान और निवेश की आवश्यकता होती है।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती

जैविक प्रबंधन में, खाद्य वेब संबंधों और तत्व चक्रण पर ध्यान केंद्रित किया जाता है जिसका उद्देश्य कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता, संवहनीयता और होमोस्टैसिस (संतुलित संतुलन) को अधिकतम करना होता है। भौतिक (संरचना), रासायनिक (पोषक तत्व परिवर्तन और खनिजकरण) और जैविक गतिविधि (अपघटन) फसल की स्थिति और विकास के पक्ष में हैं। मिट्टी की जीवंतता फसल वृद्धि के लिए एक अच्छा विकास माध्यम और समर्थन प्रदान करती है। सभी प्रथाएं आपस में जुड़ी हुई हैं और अंतिम उत्पाद अपघट्य होगा। इसलिए पर्यावरण प्रदूषण का कोई कारण नहीं है। कार्बनिक इनपुट सामग्री कम खर्चीला स्रोत हैं, जो आसानी से उपलब्ध हैं और लागू करने में बहुत आसान है।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती का महत्व

- भोजन के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट, 2017 में कहा गया है कि कृषि-पारिस्थितिकी विश्व की संपूर्ण आबादी को भोजन उपलब्ध कराने और उसका उपयुक्त पोषण सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त पैदावार देने में सक्षम है। ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं, जहाँ गाँव प्राकृतिक खेती की ओर आगे बढ़ते हुए ग्रामीण जीवन में रूपांतरण ला रहे हैं तथा शहरों में भी प्राकृतिक खेती के सफल प्रयोग हो रहे हैं। • बिना सरकारी सहायता के इन उपलब्धियों को देखते हुए कल्पना की जा सकती है कि यदि इसमें राज्य का सहयोग प्राप्त हो तो बड़ी संख्या में किसानों को लाभ मिल सकता है। • हालांकि भारत सरकार प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिये लोगों को प्रोत्साहित कर रही है किंतु यह प्रोत्साहन प्रचार और जागरूकता के साथ-साथ सब्सिडी और आर्थिक स्तर पर भी होना चाहिये। • भारत बड़ी मात्रा में उर्वरकों पर सब्सिडी देता है। यह सब्सिडी वर्ष 1976-77 की 60 करोड़ रु. से बढ़कर वर्तमान में 75 हज़ार करोड़ रुपए हो गई है। •भारत के सबसे बड़े आर्थिक बोझों में से एक सिंथेटिक उर्वरकों के लिये प्रदत्त केंद्रीय सब्सिडी रही है। इसकी तुलना में जैविक क्षेत्र को मात्र 500 करोड़ रुपए की सब्सिडी प्राप्त है। • इसके अतिरिक्त, परंपरागत कृषि विकास योजना तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के लिये जैविक मूल्य श्रृंखला विकास अभियान के दायरे में अत्यंत सीमित क्षेत्र ही है। प्राकृतिक खेती के अंतर्गत मात्र 23.02 मिलियन हेक्टेयर भूमि है जो भारत में कुल कृषि योग्य भूमि (181. 95 मिलियन हेक्टेयर) की मात्र 1.27% है।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती के सिद्धांत

पद्मश्री सुभाष पालेकर द्वारा विकसित जीरो बजट प्राकृतिक खेती के मुख्यत: चार सिद्धांत दिये हैं जो निम्न है: • पहला सिद्धांत है, कि खेतों में कोई जोताई नहीं करना। यानी न तो उनमें जुताई करना, और न ही मिट्टी पलटना। धरती अपनी जुताई स्वयं स्वाभाविक रूप से पौधों की जड़ों के प्रवेश तथा केंचुओं व छोटे प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवाणुओं के जरिए कर लेती है। • दूसरा सिद्धांत है, कि किसी भी तरह की तैयार खाद या रासायनिक उर्वरकों का उपयोग न किया जाए। इस पद्धति में हरी खाद और गोबर की खाद को ही उपयोग में लाया जाता है। • तीसरा सिद्धांत है, कि निंदाई-गुड़ाई न की जाए। न तो हलों से न शाकनाशियों के प्रयोग द्वारा। खरपतवार मिट्टी को उर्वर बनाने तथा जैव-बिरादरी में संतुलन स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। बुनियादी सिद्धांत यही है कि खरपतवार को पूरी तरह समाप्त करने की बजाए नियंत्रित किया जाना चाहिए। • चौथा सिद्धांत है कि रसायनों पर बिल्कुल निर्भर न करना है। जोतने तथा उर्वरकों के उपयोग जैसी गलत प्रथाओं के कारण जब से कमजोर पौधे उगना शुरू हुए, तब से ही फसलों में बीमारियां लगने तथा कीटों की समस्याएं खड़ी होनी शुरू हुई। छेड़छाड़ न करने से प्रकृति-संतुलन बिल्कुल सही रहता है।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती के घटक

- **बीजामृत-** यह प्रथम चरण होता है जिसमें गाय के गोबर, गोमूत्र तथा चूना व कृषि भूमि की मृदा से बीज शोधन किया जाता है।
- **जीवामृत-**गाय के गोबर, गोमूत्र व अन्य जैविक पदार्थों का एक घोल तैयार कर किण्वन किया जाता है। किण्वन के पश्चात् प्राप्त इस पदार्थ को उर्वरक व कीटनाशक के स्थान पर प्रयोग में लाया जाता है।
- **मल्चिंग-** इसमें जुताई के स्थान पर फसल के अवशेषों को भूमि पर आच्छादित कर दिया जाता है।
- **वाफसा-** इसमें सिंचाई के स्थान पर मृदा में नमी एवं वायु की उपस्थिति को महत्व दिया जाता है।

बीजामृत: बीज पादप जीवन का मुख्य आधार है, जो एक संतति से दूसरी संतति तक जीवन वाहक कार्य करता है। क्योंकि पौधे का जीवन चक्र बीज से प्रारंभ होकर बीज में ही समाप्त हो जाता है। अतः बीज का स्वस्थ होना अति आवश्यक है, ताकि वह स्वस्थ संतति को कायम रख सके। यदि बीज ही रोगाणुओं से ग्रसित हो जाएंगे तो उससे उगने वाले पौधा अस्वस्थ, रोगग्रस्त, कमजोर, ओज रहित व किसानों के लिये अलाभकारी सिद्ध होंगे। बीज पर रोगाणु व कीट अत्यधिक आक्रमण करते हैं क्योंकि बीज में प्रायः सभी पोषक तत्व मौजूद होते हैं, जिसका उपयोग कर ये अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं इसलिये बीजों को स्वस्थ रखने के लिये बीजों के भंडारण एवं वर्धन काल में कीट एवं रोगों से बचाकर आगे के फसल समय में रोगों के आक्रमण से बचाया जा सके और बीज तनावमुक्त हो जाए। भारत में किसानों के पास पहुचने वाला 70% बीज अनुपचारित होता है। बहुत कम ऐसे किसान होते हैं जो स्वंय बीज को उपचारित करते हैं। अर्थात भारत में अधिकतर फसलें अनुपचारित बीजों के द्वारा बोई जाती हैं। अनुपचारित बीजों में हानिकारक कीटों और जीवाणुओं के कारण बीज जनित संक्रमण का खतरा होता है अर्थात बीज पौधा बनने से पहले ही तनाव में होता है जिस कारण बीज अंकुरण प्रतिशत और शक्ति होती है और फसल उत्पादन कम होने से किसान की आमदनी भी कम होती है।

यदि बीजों को खेत में डालने से पहले ही उनको तनावमुक्त कर दिया जाता है तो वे प्रफुल्लता से विकसित होंगे और अन्न के भण्डार से हमें परिपूर्ण करेंगे हैं। बीजों को तनावमुक्त करने के लिए उन्हें खेत में बोने से पहले

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

उपचारित कर लें तो अच्छी पैदावार होगी। बीजों को बीज जनित संक्रमण के कारण उत्पन्न होने वाले तनाव से मुक्त करने के लिए उपचारित किया जाता है। बीजोपचार के लिए रासायनिक, यान्त्रिक और पारंपरिक/स्वदेशी विधियाँ प्रचलित हैं। शोध बताते हैं कि स्वदेशी विधियों से बीजोपचार से बेहत्तर फसल उत्पादन होता है। ये स्वदेशी पद्धतियाँ अन्य की तुलना में कम खर्चीली, सुरक्षित व पर्यावरण के अनुकूल होती हैं और इनमें उपयोग किये जाने वाले पदार्थ आसानी से मिल जाते हैं। इन स्वदेशी पद्धतियों में से एक है 'जीरो बजट प्राकृतिक खेती' के अन्तर्गत 'बीजामृत'। यदि बीजामृत को बीजों अमृत कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि इससे बीजोपचार करने से बीजों की अंकुरण क्षमता बढ़ने के साथ-साथ किसान का बहुत-सा धन अपव्यय होने से बच जाता है। बीजामृत को किसान अपने घर या खेत पर आसानी से तैयार कर सकता है। बीजामृत से बीजोपचारित करने के निम्नलिखित लाभ हैं: • बीजों की अंकुरण क्षमता बढ़ती है। • बीज जल्दी से सुप्तावस्था टूटती है। • बीजों में उम्र बढ़ने के निरोधक समाप्त होते हैं एवं बीज दीर्घायु होते हैं। • बीजों में एक समान अंकुरण होता है। • प्रारम्भिक अवस्था से ही मौसमी कीटों और रोगों से बचाव होता है। • स्वस्थ पौधे उगते हैं। • बीजामृत का बीजामृत के घोल का पत्तियों पर छिड़काव करने से भी विभिन्न फसलों में उत्पादन बढ़ता है। (Chadha, Saini and Paul 2012)

बीजामृत में जीव संख्या कॉलोनी गणना (कॉलोनी गठन इकाईयां मिली लीटर

जीवाणु	20.4×105
फफुंद	13.8×103
एक्टिनोमाइसेट्स	3.6×103
स्फुद्राणु	4.5×102
नत्राणु	5.0×102

Source: Pathak and Ram 2013

बीजामृत की पोषक तत्व स्थिति

परिमाण	मात्रा (Content)
पी.एच.	7.07
मिश्रित घुलनशील सामग्री	3.5 dSm-1
कुल नाइट्रोजन	770 पी.पी.एम.
कुल फास्फोरस	166 पी.पी.एम.
कुल पोटाशियम	126 पी.पी.एम.
कुल जिंक	4.29 पी.पी.एम.
कुल कॉपर	1.58 पी.पी.एम.
कुल लौह तत्व	282 पी.पी.एम.
कुल मैंगानिज	10.7 पी.पी.एम.

Source: Pathak and Ram 2013

1 पी.पी.एम. =1 मिलीग्राम प्रति लीटर; dSm-1 = deci Siemens per metre (used to measure salinity)

बीजामृत बनाने की सामग्री

बीजामृत (बीज संस्कार)	100 किलोग्राम बीज संस्कार हेतु सामग्री
पानी	20 लीटर
देशी गाय का मूत्र	5 लीटर
देशी गाय का गोबर	5.0 किलो ग्राम
चूना	50 ग्राम
फसल जड़ के पास या मेढ़ की मिट्टी	एक मुट्ठी

इन सभी को क्रमानुसार मिलाकर घोल तैयार करें। फिर उसको लकड़ी की डण्डी से घड़ी की सुई की दिशा में धीरे-धीरे मिलाएं। इसको छाँव में बोरी से ढक कर रखें। इस घोल को 24 घंटे रखने के बाद बीजों पर संचारित करें।

विशेष – गोबर • केवल गाय का गोबर उपयोग करें। यदि

आपके पास भैंस है तो आधा गोबर भैंस का मिला सकते हैं लेकिन आधा गोबर गाय का ही मिलाना है। • ताजा गोबर ही अच्छा होगा। गोबर 7 दिन तक प्रभावशाली होता है।

विशेष–गौ–मूत्र • जितना पुराना होगा उतना ही लाभकारी होगा जो गाय जितना ज्यादा दूध देती है उसका गोबर व मूत्र उतना ही कम प्रभावशाली होता है। • इसलिए देशी गाय का मूत्र सबसे अच्छी होता है। बीजामृत से बीज, अंकुरित बीज या किसी रोपण योग्य पौधों का उपचार करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। रोपण योग्य पौधों को बिजामृत में डुबोकर व बाहर निकाल रोपित करना होता है। यह पौधें की प्रारम्भिक अवस्था के दौरान कीड़ो और रोगों से फसल को प्यांत संरक्षण प्रदान करता है।

बीजामृत का उपयोग

- घास वर्गीय फसल (जैसे कि धान, गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा, रोगी इत्यादि) एवं दलहनी फसलें: इनमें से चयनित फसल के बीज को फर्श या देशी गाय के गोबर से लिपी हुई भूमि पर फैला कर अंदाजे से बीज पर बीजामृत छिड़कें। बीज को दोनों हाथों से मल कर छाया में सुखा कर बीज बोएं।
- **दलहन:** दलहन के बीजों का छिलका पतला होने के कारण हाथों से रगड़ने पर निकल जाता है। चयनित बीज को फर्श पर फैला करअंदाजे से बीजामृत छिड़कें। दोनों हाथों की उंगलियाँ फैलाकर बीजों को धीरे से ऊपर-नीचे करके मिलाएं। छाया में सुख कर बीज बोएं।
- **मूँगफली/सोयाबीन:** इनके छिलके बहुत पतले एवं संवेदनशील होते हैं। इनके बीज लें और उसके 10% मात्रा घन-जीवामृत लेकर धीरे से मिलाएं।
- **गन्ना/केला/आलू/हल्दी/अदरक:** चयनित फसल के बीजों को बाँस टोकरी में रख कर टोकरी को बीज सहित कुछ क्षणों के लिए बीजामृत में डुबो कर निकाल लें। इसके बाद बीज लगाएं।
- **सब्जियाँ:** पैकेट से बीज को निकाल कर ठण्डे पानी से धो कर बीजामृत से संस्कार कर छाया में सुखा कर बिजाई करें।
- **फल:** फलों के बीजों को भी सामान्य तरीके से बीज-संस्कार करें।
- कलम (पॉपलर/सहजन/खाने का पान/काली मिर्च इत्यादि): चयनित बीजों को बाँस की टोकरी में रख कर बीजामृत में डुबो कर बीजाई करें।
- **पौधशाला:** पौधशाला में बीज डालने के पहले बीज का संस्कार करें उसके बाद रोपाई करें। पौधशाला से पौधे निकाल कर उनकी जड़ों को बीजामृत में डुबो कर रोपाई करें।

जीवामृत: जीवामृत एक अत्यधिक प्रभावशाली जैविक खाद है. जिसे गोबर के साथ पानी मे कई और पदार्थ जैसे गौमूत्र, बरगद या पीपल के नीचे की मिटटी, गुड़ और दाल का आटा मिलाकर तैयार किया जाता है. जीवामृत पौधों की वृद्धि और विकास के साथ साथ मिट्टी की संरचना सुधारने में काफी मदद करता है. यह पौधों की विभिन्न रोगाणुओं से सुरक्षा करता है तथा पौधों की प्रतिरक्षा क्षमता को भी बढ़ाने का कार्य करता है, जिससे पौधे स्वस्थ बने रहते हैं तथा फसल से बहुत ही अच्छी पैदावार मिलती है. फसल को दी जाने वाली प्रत्येक सिंचाई के साथ 200 लीटर जीवामृत का प्रयोग प्रति एकड़ की दर से उपयोग किया जा सकता है, अथवा इसे अच्छी तरह से छानकर टपक या छिड़काव सिंचाई के माध्यम से भी प्रयोग कर सकते है, जो कि एकड़ क्षेत्र के लिए पर्याप्त होता है. छिड़काव के लिए 10 से 20 लीटर तरल जीवामृत को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है।

जीवामृत बनाने की सामग्री

• प्लास्टिक का एक ड्रम (लगभग 200 लीटर) • 10 किलो देशी गाय का गोबर • 10 ली. पुराना गौमूत्र • 1 किलो गुड़ या 4 लीटर गन्ने का रस (जीवाणुओ की क्रियाशीलता बढ़ाने हेतु) • 1 किलो बरगद या पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी • 1 किलो दाल का आटा • 1 ढकने का कप

तरल जीवामृत बनाने की विधि: सबसे पहले एक प्लास्टिक बड़ा ड्रम लिया जाता है जिसे छायां में रखकर दिया जाता है। इसके बाद 10 किलो देशी गाय का ताजा गोबर, 10 लीटर पुराना गोमूत्र, 1 किलोग्राम किसी भी दाल का आटा (अरहर, चना, मूंग, उड़द आदि का आटा), 1 किलो बरगद या पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी तथा 1 किलो पुराना सड़ा हुआ गुड़ को 200 लीटर पानी में अच्छी तरह से लकड़ी की सहायता से मिलाया जाता है.अच्छी तरह मिलाने के बाद इस ड्रम को कपड़े से इसका मुह ढक दें. इस घोल पर सीधी धूप नही पड़नी चाहिए। अगले दिन भी इस घोल को फिर से किसी लकड़ी की सहायता से दिन में दो या तीन बार हिलाया जाता है. लगभग 5-6 दिनों तक प्रतिदिन इसी कार्य को करते रहना चाहिए। लगभग 6-7 दिन के बाद, जब घोल में बुलबुले उठने कम हो जाये तब समझ लेना चाहिए, कि जीवामृत तैयार हो चुका है. जीवामृत का बनकर तैयार होना ताप पर भी निर्भर करता है अतः सर्दी में थोड़ा ज्यादा समय लगता है किन्तु गर्मी में 2 दिन पहले तैयार हो जाता हो जाता है. यह 200 लीटर जीवामृत एक एकड़ भूमि के लिये सिंचाई के साथ देने के लिए पर्याप्त है।

मल्चिंग: सब्जियों, खरपतवारों और सफेद तिपतिया घास के जमीनी आवरण के साथ अनाज की फसलें, स्वस्थ बाग के पेड़ विकसित किए जाते हैं। पुआल के साथ मल्चिंग करने से मिट्टी में नमी की मात्रा विकसित होती है और सूक्ष्मजीवों और केंचुओं के विकास के लिए अनुकूल होती है। यह बिना जुताई के बीज के अंकुरण में सुधार करता है। सफेद तिपतिया घास जैसे ढकने वाले पौधों की वृद्धि प्रभावी रूप से मातम को रोक देती है। फलियां जैसी आच्छादित फसलों की वृद्धि से मिट्टी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ जाता है। फूल आने से पहले खरपतवार की कटाई और खुली जमीन को ढकने से फसल के खरपतवार का क्षेत्र कम हो जाता है और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा विकसित हो जाती है। जड़ी-बूटियों के इस अभ्यास से, उपयोग से बचा जा सकता है। मल्चिंग शून्य बजट प्राकृतिक खेती के चार पहियों में से एक है। सूक्ष्म-जलवायु बनाना आवश्यक है जिसके अंतर्गत सूक्ष्म जीवों का सर्वोत्तम विकास हो सके, अर्थात् 25 से 32एब् तापमान, 65 से 72 प्रतिशत नमी और मिट्टी में अंधेरा और गर्माहट। मल्चिंग निश्चित रूप से मिट्टी की नमी को संरक्षित करती है (इसलिए सिंचाई की आवश्यकता को कम करती है इसे ठंडा करती है और इसके सूक्ष्म जीवों की रक्षा करती है।

वाफसा: बीजामृत से बीज संस्कार करने के बाद बीज या पौधे लगाने के बाद जब हम फसलों को या फलों के पेड़ों को सिंचने के पानी के साथ हर महीने में एक बार या दो बार जीवामृत देते है तो भूमि रूपी मां को आच्छादन रूपी सारी (एक स्तर का निर्माण) से कर देंगे और भूमि के अंदर वाफसा निर्माण करे । वाफसा माने भूमि में मिटटी के कणों के बीच जो खाली जगह होती है उन में हवा और वाष्प कणों का मिश्रण निर्माण होना।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती के लाभ

कृषकों की दृष्टि से लाभ • भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है। • सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती है। • रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है। • फसलों की उत्पादकता में वृद्धि। • बाजार में जैविक उत्पादों की मांग बढ़ने से किसानों की आय में भी वृद्धि होती है। • भूमि के जलस्तर में वृद्धि होती है। • मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है। फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि। • अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता का खरा उतरना।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

बकरियों में टीकाकरण एवं सावधानियां

दलजीत छाबड़ा, रवि सिकरोडिया
राखी गांगिल, राकेश शारदा
जॉयसी जोगी
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, वेटनरी कोलेज, महू
नानाजी देशमुख वेटनरी साइंस यूनिवर्सिटी, जबलपुर

निर्धन एवं छोटे किसानों की आजीविका के लिए एवं आर्थिक द्रष्टि से बकरीपालन का महत्वपूर्ण स्थान है बकरियो का रखरखाव सामान्य होता है एवं उसमे अधिक पूंजी की जरुरत नहीं पड़ती है और लागत से कई गुना ज्यादा मुनाफा होता है। परंतु बकरीपालन तभी सफल होगा यदि सुचारु रूप से किया जाए, बकरियो के रोगों के बारे में, टीकाकरण के बारे में जानकारी एवं जागरूकता रखी जाए।

बकरियों में कई ऐसे रोग होते हैं जिनसे ग्रसित होकर बकरियों की मौत हो सकती है और बकरीपालक को काफी आर्थिक नुकसान हो सकता है, इसलिए समय रहते बकरियो में टीकाकरण करवाने से नुकसान को रोका जा सकता है। बकरियों में कई रोग के टीके लगाये जाते हैं- जीवाणु जनित रोग जैसे एंटरोटोक्सीमिया रोग, हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया/गलघोटू रोग, तड़का/छड रोग, एक टंगिया रोग/लंगड़ा बुखार के टीके और विषाणुजनित रोग जैसे मुंहखुरपका रोग, चेचक/गोटपोक्स, पी.पी.आर. रोग/बकरी प्लेग, सी.सी.पी.पी. रोग, पशुमाता रोग, इत्यादि। टीकाकरण तीन से चार माह के मेमनों में शुरू किया जाता है। मौसम के अनुसार, क्षेत्र के अनुसार टीके कब कौनसे लगाये जाएंगे निश्चित किया जाता है। सरकारी संस्थान के टीके या निजी संस्थानों से टीके लिए जा सकते हैं। दो टीके के बीच पंद्रह दिन से ले कर एक महीने का अंतर होना जरुरी है।

टीका क्या होता है?

टीका एक स्वास्थ्य उत्पाद है जो की बकरियों में प्रतिरोधक क्षमता को बढाता है एवं विभिन्न रोगों से सुरक्षा प्रदान करता है। टीकाकरण के द्वारा बकरियों को आने वाले समय में संक्रमक रोगों से बचाया जा सकता है, प्रत्येक रोग का टीका अलग होता है। एक रोग का टीका दूसरे रोग से बचाव नहीं कर सकता, हर बीमारी का टीका अलग होता है।

बकरियो में टीकाकरण का क्या महत्व है

टीकाकरण बकरियों के रोगों से जुड़े उपचार एवं मृत्युदर की लागत को कम कर किसानों पर आर्थिक बोझ को कम करने में मदद करता है। नियमित टीकाकरण द्वारा बकरी पालक ना सिर्फ दवाओं पर होने वाले खर्च को कम कर सकते हैं। बल्कि रोगों से बकरियों का बचाव कर एक बेहतर उत्पादन भी प्राप्त कर सकते हैं।

बकरियों में टीकाकरण के दौरान सावधानिया

टीकों के इस्तेमाल के दौरान कुछ बातों का ध्यान रखना जरुरी है-

- बकरियो को टीका किस उम्र में लगाना है इसका ध्यान रखना जरुरी होता है।
- टीका किस मौसम के पहले या किस माह में लगाना है, उसका भी ध्यान दिया जाता है।
- टीका खरीदने के बाद साफ़ जगह पर रखें उचित तापमान पर उसका संग्रहण करें
- टीके की मात्रा भी निश्चित होती है। यदि मात्रा कम होगी तो उसका सही प्रभाव नहीं मिलेगा।
- टीकाकरण कार्यक्रम प्रायः सुबह के वक़्त ही रखा जाता है। सूर्य की तेज रोशनी एवं तेज गर्मी से टीका ख़राब हो सकता है।
- टीकाकरण करवाने से पूर्व बकरियों को परजीवी नाशक दवा पशु चिकित्सक की सलाह पर देनी चाहिए।
- टीकाकरण हमेशा स्वस्थ बकरियों में किया जाता है रोगी एवं दुर्बल बकरियों में टीकाकरण ना करें। टीकाकरण से पहले बकरियो को किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए।
- टीकाकरण प्रभावशाली हो इसलिए बकरियों का अच्छा रखरखाव करें। बाड़ो में अच्छी साफ सफाई रखें।
- टीकाकरण किए गए बकरियों को बिना टीका दिए या बीमार बकरियों से अलग रखें
- टीकाकरण के तुरंत बाद बकरियों को ज्यादा व्यायाम ना करवाएं, ख़राब मौसम से भी बचाव करें। ■ जहां तक संभव हो टीकाकरण के बाद दो सप्ताह तक अन्य दवाओ का इस्तेमाल ना करें।
- टीके का घोल बनाने के लिए हमेशा प्लास्टिक के बरतन का उपयोग करें। धातु के बर्तन में टीके का घोल ख़राब हो सकता है।
- बर्तन में किसी प्रकार का केमिकल ना लगा हो जिससे टीका ख़राब हो सकता है। साफ़ पानी से बरतन को धोएं परंतु घोल बनाते वक्त बर्तन साफ और सूखा हो।
- टीके का गोल बनाने के लिए टीके के साथ दिए गए पानी का ही इस्तेमाल करें। पीने के पानी में मौजूद क्लोरीन इत्यादि टीके को खराब कर देते हैं।
- यदि बकरियो की संख्या कम हो या अधिक, टीके का घोल बनाने के बाद जल्दी से जल्दी बकरियो को टीका लगाना शुरू करें
- टीके की बोतल का ढक्कन एकदम नहीं खोलना चाहिए, उसमे धुल मिट्टी नहीं जाना चाहिए। सिरिंज और सुई की सहायता से बोतल के अंदर ही घोल बनाया जाता है।

इससे यहाँ निष्कर्ष निकलता है कि बकरियों में उपचार से बेहतर है रोकथाम जो कि सिर्फ टीकाकरण द्वारा ही संभव है। परंतु टीकाकरण बकरियों में तभी सफल होगा जब सावधानीपूर्वक किया जाए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

फसलों में जल प्रबंधन

टीकम चन्द यादव एवं तीरूनिमा पटले
(शोध छात्र) कृषि महाविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

कृषि के क्षेत्र में सिंचाई का विशेष स्थान है क्योंकि जल के द्वारा पौधे अपना खाद्य पदार्थ मिट्टी से ग्रहण करते हैं। प्रकाश संश्लेषण क्रिया एवं अन्य प्रतिक्रियाओं के लिए जल आवश्यक है। कृषि में अन्य क्रियाओं की तरह जल प्रबंधन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जानकारी की कमी से हमारे किसान भाई या तो अधिक जल का व्यवहार करते हैं या कम, इससे उन्हें कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी नहीं होती है। यदि वैज्ञानिक विधि से जल प्रबंध करें तो उन्हें समुचित लाभ प्राप्त हो सकेगा। किसी फसल में वैज्ञानिक ढंग से सिंचाई करने एवं समुचित जल निकास का प्रबंध ही जल प्रबंध कहलाता है। ऐसा देखा गया है कि प्रायः किसान भाई अपने खेतों में अधिक पानी का व्यवहार करते हैं जिससे समुचित लाभ नहीं मिल पाता है। विभिन्न फसलों में जल प्रबंध की वैज्ञानिक विधि के विषय में जानकारी आवश्यक है जिससे उन्हें भरपूर लाभ मिल सके एवं फसल की उत्पादकता भी बढ़ सके।

गेहूँ

हमारे मे गेहूँ के लिए चार सिंचाई की अनुशंसा की गयी है। पहली सिंचाई बुआई 20-25 दिन, दूसरी सिंचाई 40-45 दिन, तीसरी सिंचाई 70-75 दिन एवं चौथी सिंचाई 95-100 दिनों पर करें। यदि सभी अवस्थाओं के लिए पानी उपलब्ध न हो तो प्राथमिकता के आधर पर सिंचाई करें। पानी की उपलब्धि यदि एक सिंचाई के लिए हो तो सिंचाई बुआई के 20-25 दिनों पर करें। यदि दो सिंचाई के लिए हो तो पहली सिंचाई बुआई के 20-25 दिनों के बाद एवं दूसरी सिचांई 60-65 दिनों के बाद करें। यदि तीन के लिए हो तो पहली 20-25 दिनों पर, दूसरी 40-45 दिनों पर तथा तीसरी 70-75 दिनों पर करें। पहली सिंचाई के समय पानी कम होनी चाहिए। साधारण खेत में 4-5 सेंमी. पानी लगने पर सिंचाई बंद कर दें। इस समय शीर्ष जड़ का निर्माण होता है जिससे कल्ले निकलते हैं। यदि आप ज्यादा सिंचाई करेंगे तो कल्लों का निर्माण उचित संख्या में नहीं होगा। इस सिंचाई के बाद दो सिंचाई करें जिससे पानी 6 सेंमी. लगना चाहिए। इस समय पौधे बड़े हो जाते हैं एवं इन्हे पानी की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक होता है जो पोषक तत्व का उचित मात्रा में उपलब्ध कराते हैं। सिंचाई की संख्या वर्षा के आधर पर कम या ज्यादा हो सकती है। गेहूँ में सिंचाई बार्डर विधि से करते हैं। जब पानी मेड़ से करीब तीन चौथाई दूरी पर पहुंच जाए तो खेत में सिंचाई करना बंद कर एवं चैथाई अपने ही पानी के दबाव से पट जाएगा।

आलू

आलू में सिंचाई की संख्या प्रभेदों पर निर्भर करता है कम समय में होने वाले प्रभेदों जैसे कुफरी अशोका, पोखराज में 2-3 सिंचाई में ही अच्छी उपज प्राप्त होती है जबकि मध्य परिपक्वता वर्ग के प्रभेदों जैसे कुफरी ज्योति एवं पूर्ण अवधि वर्ग जैसे कुफरी सिन्दूरी में 4-5 सिंचाई की आवश्यकता होती है फिर भी पहली सिंचाई सभी प्रभेदों में अंकुरण के समय 10-15 दिन पर एवं फिर आवश्यकतानुसार 15 दिनों पर एवं फिर आवश्यकतानुसार 15 दिनों के अंदर पर करें। यदि मिट्टी अधिक बलुहट हो वैसी स्थिति में प्रत्येक सिंचाई 10-15 दिनों के अंतराल पर करें ताकि पौधों को पूर्ण नमी मिलती रहे। प्रत्येक सिंचाई की गहराई 6 सेंमी. से ज्यादा न हो। पाला से बचने के लिए सिंचाई आवष्यक करें।

राई-सरसों

राई सरसों में दो सिंचाई देने की जरूरत है। पहली सिंचाई बुआई के 30 दिनों बाद करें एवं दूसरी सिंचाई बुआई के 60-70 दिनों के बाद करें जब 50 प्रतिशत फूल फल में परिणत हो जाए। पहली सिंचाई के समय 40 किलोग्राम नेत्रजन का उपरिवेशन प्रति हे. की दर से सिंचाई के 2-3 दिनों के बाद करें। इससे उपज में काफी वृद्धि होती है। प्रत्येक सिंचाई की गहराई 6 सेंमी. हो रखें।

धान

धान खरीफ मौसम की प्रमुख फसल है। धान की खेतों में विभिन्न तरह के जल प्रबंध की समस्याएं है। अन्य फसलों की तुलना में धान के लिए अधिक पानी की आवश्श्यकता होती है। खेत में लगभग हर समय पानी लगा रहना आवश्यक है। जल के समुचित उपयोग के लिए खेतों का समतलीकरण एवं हल्की ढ़ाल का निर्माण बहुत ही आवश्यक है। यदि खेत समतल नहीं होता तो निचले हिस्से में अधिक जल जमाव हो जाएगा तथा उपरी हिस्से में जल की प्रचुर मात्रा उपलब्ध नहीं हो पाएगी। अतः कदवा करते समय खेत को अच्छी तरह समतल कर लें तथा सिंचाई करते समय खेत को अच्छी तरह समतल कर लें तथा सिंचाई जल के बहाव की दिशा में बहुत हल्की ढ़ाल (0.1-0.2 प्रतिशत) रखे। खेत में किसी समय 5 से0मी0 से अधिक जल रखने की आवश्यकता नहीं है। धान की फसल पर सिंचाई संबंध किए गए अनुसंधानों से यह तय हो चुका है कि इस फसल में पानी का लगातार जमाव जरूरी नहीं है बल्कि बीज स्थली से लेकर कटाई के 10 दिन पहले तक बारी-बारी से कमी जमीन को गीला रखा जाय। कभी खेत में 5 सेंमी. से 7 सेंमी. तक का जल जमाव रखा जाए। ऐसा पाया गया है कि धान में जिस समय कल्ले निकलते हैं पुष्पन होते हैं और दाने भरते हैं। उस समय जल की कमी नहीं होनी चाहिए अन्यथा उपज में अत्यधिक कमी हो जाती है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

बकरियों में होने वाली फड़किया रोग

डॉ. शैलेन्द्र सिंह, डॉ. स्वतंत्र सिंह
डॉ. आलोक कुमार सिंह, डॉ. कविता रावत
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

बकरी के बीमारियों में फड़किया रोग सबसक खतरनाक और प्राणघातक बीमारी है। यह बिमारी किसी भी उम्र की बकरी को हो सकती है। इस बिमारी के बारें में कहा जाता है। कि जिन बकरियों को यह बिमारी हो जाती है उसका बच पाना बहुत मुश्किल होता है।

कहने का मतलब यह है कि बिमारी में मृत्यु काफी अधिक लगभग 90 प्रतिशत तक होती है। जिससे पशुपालकों को बहुत अधिक आर्थिक नुकसान उठना पड़ता हैं। यह एक विषाणु जनिक पेरामिक्सो नामक विषाणु से होता है।

रोग का प्रसारण

इस रोग के प्रासरण के कई तरीके है जैसे कि

- संक्रमित पशु से स्वस्थ पशु मे हवा के द्वारा
- संक्रमित पशु के साथ -साथ खाने के द्वारा ।
- संक्रमित पानी के द्वारा भी स्वस्थ पशु के अंदर प्रवेश कर जाते हैं तथा रोग उत्पन्न करते हैं।
- 4 महीने से 1 बर्ष के बीच के मेमने एंव कुपोषण व परजीवी ग्रसित इस रोग के लिए ज्यादा संवेदी होते है।

रोग की पहचान

इस रोग की पहचान इस रोग के लक्षणों को देखकर किया जाता हैं इस रोग के प्रमुख लक्षण में।

- बकरा के शरीर का तापमान बढ़ जाता है।
- संक्रमित बकसी के नाक तथा मुख से लार सी टपकने लगती है। यह लार लगातार टपकती है।
- संक्रमित बकरी हॉफती रहती है।
- निमोनिया के लक्षण दिखाई देते हैं।
- बकरी को दस्त लगने लगते हैं।
- इस रोग में संक्रमित बकरियां हमेशा आंख बंद किये रहती हैं और आंख खोलने में असमर्थ होती है।
- बकरी के मुंह के अंदर छाले होने लगते हैं जिससे संक्रमित बकरी खाने-पीने में असमर्थ होती है। ये छाले पेट तक फेल जाते हैं।
- संक्रमित पशु के मुंह से बहुत बुरी तरह की बदबू आने लगती है।
- कभी-कभी संक्रमित बकरियों के मलत्याग करते समय खून भी आने लगता है।

रोकथाम

हालांकि बीमारी होने पर 90 प्रतिशत बकरियो की मृत्यु हो जाती हैं। फिर भी हम कुछ बातों को ध्यान में रखकर स्वस्थ बकरियों से बचाया जा सकता है।

- स्वस्थ बकरी को इस रोग से बचाने के लिए टीकाकरण अवश्य रूप से प्रतिवर्ष कराना चाहिए।
- बकरी के फार्म को हमेशा साफ-सुथरा रखना चाहिए।
- इस रोग से पीड़ित बकरी को स्वस्थ बकरी से अलग रखकर इलाज करना चाहिए।
- इस बिमारी से पीड़ित बकरी को चारा खिलाने या पानी पिलाने के लिए जिस बर्तन का इस्तेमाल किया जाता हो उस बर्तन का उपयोग कभी भी स्वस्थ पशु के लिए नहीं करना चाहिए जिससे यह संक्रामक बीमारी अन्य बकरी को ना लगे।
- इस बिमारी से पीड़ित बकरी को किसी को बेचने या इधर-उधर भेजने की कोशिश नहीं करना चाहिए।

केवीके झाबुआ द्वारा राष्ट्रीय बालिका दिवस

झाबुआ। कृषि विज्ञान केन्द्र, झाबुआ द्वारा ग्राम परवलिया विकासखंड थादला में राष्ट्रीय बालिका दिवस का आयोजन डॉ. आई.एस. तोमर, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख केवीके, झाबुआ के मार्गदर्शन में किया गया। इस कार्यक्रम में थांदला विकासखंड के एस.डी.एम. अनिल भाना, वैज्ञानिक डॉ. जगदीश मौर्य, डॉ. चन्दन कुमार, अनिल कुमार शर्मा केवीके, झाबुआ, म.प्र.ग्रा.बैंक के उप क्षेत्रिय प्रबंधक राधामोहन मिश्रा, आजिविका मिशन के जिला परियोजना अधिकारी, देवेन्द्र श्रीवास्तव, नाबार्ड के जिला विकास प्रबंधक, नितिन अलौने, सतगुरू फाउंडेशन के मुख्य कार्यपालन अधिकारी, कन्हैया चैधरी, ग्राम परवलिया के 125 महिला एवं पुरूष कृषक एवं 30 ग्रामीण बालिकाएं सम्मिलित हुए। कार्यक्रम के आरंभ में डॉ. तोमर द्वारा समस्त बालिकाओ का अभिनंदन करते हुए समाज निर्माण में बालिकाओं की भूमिका पर प्रकाश डाला साथ ही आपने किसानों को संबोधित करते हुए उन्नत किस्मों के उत्पादन के साथ बाजार प्रबंधन पर विस्तार से जानकारी प्रदान की। एस.डी.एम. महोदय श्री भाना द्वारा किसानों को जैविक खेती बढ़ावा देने की बात कही आपने रासायनिक उत्पादों से मानव स्वास्थ्य व मृदा स्वास्थ्य पर पड़ने दु:परिणामों के बारे में विस्तार से जानकारी प्रदान करते हुए जैविक उत्पादों के महत्व को विस्तारपूर्वक समझाया। डॉ. मौर्य द्वारा किसानों को फसल प्रबंधन के बारे में विस्तार से जानकारी प्रदान की। डॉ. कुमार द्वारा जैविक खेती में पशुओं के महत्व पर प्रकाश डालते हुए पशुओ से प्राप्त अपशिष्ट का उपयोग कर कृषिगत लागत को कम कर अधिक उत्पादन प्राप्त करने के तरीकों पर प्रकाश डाला। केन्द्र द्वारा संचालित निकरा परियोजना अंतर्गत अंगिकृत ग्राम परवलिया के 25 महिला कृषकों को 1000 कड़कनाथ चूजों, 150 सब्जी बीज के पैकेट एवं चयनित 2 किसानों को हरा चारा संरक्षित करने हेतु साइलेज बैग का वितरण किया गया। इस आयोजन में नाबार्ड द्वारा गठित आजिविका मिशन द्वारा थाई अमरूद का वृक्षारोपण कर श्री अलौने द्वारा किसानों को नाबार्ड द्वारा जलसंरक्षण के क्षेत्र में किये जा रहे विभिन्न कार्यों से अवगत कराया। कार्यक्रम के अंत में डॉ. चन्दन द्वारा सभी उपस्थितबालिकाओं ग्रामीणों एवं अतिथियों का आभार व्यक्त किया।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

राजगिरा की खेती

एस.के. तिवारी, कौशलेन्द्र शुक्ला
(असिस्टेंट प्रोफेसर), सेज यूनिवर्सिटी, इंदौर (म.प्र.)

भूमि की तैयारी

पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व दूसरी और तीसरी साधारण हल से कर मिट्टी भुर-भुरी बना लेना चाहिए।

बोने का समयः मध्य जून से मध्य जुलाई तक।

बीज की मात्रा

एक किलो बीज एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होते हैं। जिन्हें 2 से 3 ग्राम प्रति 1 किलो के हिसाब से थिरम से उपचारित कर बोना चाहिए।

बोने का तरीका

दो तरीके से बोया जाता है। पहला छिटककर व ऊपर से पाटा चला दिया जाता है। दूसरा लाइन में, लाइन से लाइन की दूरी 40 से 45 सेंटीमीटर व पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 सेंटी मीटर रखना चाहिए।

प्रजातियां

यह नम व गर्म मौसम में जहां वर्षा कम होती है। अच्छे से उगाया जा सकता है। इसकी कई अच्छी जातियां हैं। जैसे, जी.ए.-1, जी.ए.-2, अन्नपूर्णा आदि। क्रमशः 110 से 115 दिन, 95 से 100 दिन 0 105 से 110 दिन में पक जाती है। उपज 20-23 क्विंटल व 20-22 क्विंटल पर हेक्टेयर होती है।

खाद व उर्वरक

गोबर की खाद खेत तैयार करते समय दो ट्रॉली प्रति एकड़ डाल देना चाहिए व बाद में 60/40/20 किलो नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश पर हेक्टेयर के हिसाब से देना चाहिए। नत्रजन की आधी जबकि फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बोते समय दे देना चाहिए। नत्रजन की बाकी आधी को दो बराबर मात्रा में बाद में देना चाहिए।

सिंचाई

खरीफ की फसल में तो जरूरत नहीं पड़ती है। हां यदि रबी में बोई है या देरी से बोई तो आवश्यकता अनुसार दे सकते हैं।

खरपतवार नियंत्रण

फसल बोने के 20/25 दिन में पहली निंदाई व बाद में इसी तरह दो से तीन बार निंदाई कर लेना चाहिए।

कीट व बीमारियां

इसमें केटर्पिलर आता है। रोगोर का उपयोग एक लीटर पानी में दो एमएल डालकर स्प्रे करना चाहिए। बलास्ट आदि रोग के लिए बाविस्टि 2 ग्राम एक लीटर पानी में घोलकर स्प्रे करना चाहिए।

कटाईः जब फसल पक जाए तो पत्ते पीले हो जाते हैं, कटाई कर लेना चाहिए।

उपजः 20/25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

यह चोलाई कुल का पौधा है जिसमें लाल गुच्छों में बालिया आती हैं। इसको फसलों के बीच लगाया जाता है। मैदानों में रबी में भी लगाया जाता है। इसके खेत बहुत ही सुंदर रंगीन बालियों के साथ दिखते हैं। इसकी खीर पट्टी व आटे से उपवास में हलवा बनता है। लड्डू भी खूब स्वादिष्ट होते हैं जो बचपन में बहुत खाते थे। रोटी भी बनाई जाती है। इसका जन्म स्थान पेरू माना जाता है। विश्व में इसकी 60 से भी ज्यादा प्रजातियां उगाई जाती हैं।

दक्षिण अमेरिका में इसको एक पत्रि फसल माना जाता था। स्पेन ने आक्रमण किया तब इसकी फसल को बर्बाद कर रोक लगा दी थी। इसको मैदान में दाने व पत्तियों की सब्जी के लिए भी लगाते हैं। लाल भाजी के नाम से भी खूब बिकती है। इसका उपयोग कई प्रकार से किया जाता है। यश्ह गुलेटि से मुक्त होता है। इसलिए गेहूँ के स्थान पर खाया जा सकता है। प्रोटीन का अच्छा स्रोत है। इसमें एंटी इंफ्लेमेंटरी गुण होने के कारण सूजन उतारने के काम आता है। कैल्शियम की भरपूर मात्रा होती है जो हड्डियों को मजबूत करता है। यह ब्लड बोलेस्ट्राल को कम करता है। इसलिए हृदय के लिए भी अच्छा रहता है। सुगर रोगियों के लिए अच्छा विकल्प है। यह इंसुलिन को कंट्रोल करता है। इसमें जिंक, विटामिन ई पाया जाता है जो एमुनिटी को बूस्ट करता है। साथ ही आंखों की दृष्टि ठीक रखता है। फाइबर अधिक होने के कारण वजन कम, कम्बज दूर करने के भी काम आता है। आयरन होने से एनिमिक रोगी को दिया जाता है।

सहकारी बैंक महाप्रबंधक गृहमंत्री द्वारा सम्मानित

छिंदवाड़ा। देश के 73वें गणतंत्र दिवस भारत पर्व पर प्रदेश के गृह, जेल, संसदीय कार्य, विधि एवं उत्कृष्ट कार्य विभाग मंत्री डॉ. नरोत्तम मिश्रा जी के मुख्य आतिथ्य में शासन द्वारा पुलिस ग्राउंड छिंदवाड़ा में आयोजित गणतंत्र दिवस समारोह में जिला सहकारी केंद्रीय बैंक के महाप्रबंधक कृष्ण कुमार सोनी को केसीसी योजनांतर्गत ऋण वितरण में शत प्रतिशत लक्ष्य पूर्ति करने के लिए मंत्री के द्वारा प्रशस्ति पत्र प्रदत्त कर सम्मानित किया गया।

देश की अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका

जबलपुर। आजादी के 75 में अमृत महोत्सव के अंतर्गत जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय में 'क्षेत्रीय फसलों के विविधीकरण' विषय पर शैलेन्द्र सिंह कृषि उत्पादन आयुक्त मप्र शासन के मुख्यातिथ्य एवं कुलपति डॉ. प्रदीप कुमार बिसेन की अध्यक्षता में एक दिनी आनलाईन कार्यशाला का आयोजन किया गया। जिसमें तीन राज्यों (मप्र, उप्र व राजस्थान) के कृषि के विख्यात वैज्ञानिक शामिल हुए। प्रारंभ में अपने स्वागत भाषण में संचालक अनुसंधान सेवायें डॉ. जी.के. कौतू ने फसलों के विविधीकरण पर प्रकाश डाला और इसकी उपयोगिता के बारे में बताया। कार्यशाला के उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि मध्यप्रदेश शासन के कृषि उत्पादन आयुक्त शैलेंद्र सिंह आईएएस ने कहा कि देश की अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। फसलों के विविधीकरण विषय पर किसानों को नये एवं उपयोगी सुझाव व समस्याओं के समाधान हेतु जानकारी प्रदान करें एवं जो सुझाव दिए जाएं वह किसान के परिपेक्ष में मूल्यांकन करने वाला हो जो उनके लिए उपयोगी साबित हो। उन्होंने आगे कहा इस विषय पर विचार करना अतिआवश्यक है। फसलों के विविधीकरण हेतु प्रशासन की भूमिका अतिमहत्वपूर्ण होगी।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

भारत में ग्रामीण आजीविका सुरक्षा के लिए बकरी पालन का महत्व

डॉ. कुश श्रीवास्तव
डॉ. संजय शुक्ला
डॉ. अजित प्रताप सिंह
पशु जैव औद्योगिकी केन्द्र, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

बकरी ग्रामीण क्षेत्रों में, विशेष रूप से विकासशील देशों मेंए प्रमुख पशुधन प्रजातियों में से एक है। यह दूध, मांस और खाल प्रदान करती है और वह भी अपेक्षाकृत खराब गुणवत्ता वाले चारा और फसल अवशेषों का उपयोग करके। बकरी पालन का मुख्य लाभ यह है कि यह कम गुणवत्ता वाले चारे पर आसानी से पनप सकती है। इसके लिए कम आवास प्रबंधन की आवश्यकता होती है और बीमारियों का खतरा कम होता है।

बकरी का मांस और दूध दोनों ही दुनिया भर में लोकप्रिय हैं। माना जाता है कि बकरी के दूध में कई औषधीय गुण होते हैं और यह पचने में आसान होता है। इसकी विस्तृत पारिस्थितिक सीमा के कारण बकरी को भारत में लगभग हर जगह पाला जाता है और यह ग्रामीण क्षेत्र में आय व आजीविका का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है । इन्हीं गुणों के कारण बकरी को 'गरीबों की गाय' कहा गया है। विश्व में, बकरी की आबादी में 1961 से 2019 तक लगातार वृद्धि देखी गई है. यह वृद्धि 1991 से 2019 में सर्वाधिक रही। वर्तमान समय में विश्व में लगभग 1,094,068,295 बकरी जाती के पशु हैं स जिसमें एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा योगदान है (57.5%) इसके बाद अफीका (33.8%) अमेरिका (5.5%) यूरोप (2.9%) और ओशिनिया (0.3%) का स्थान है। जाहिर हैए एशिया और अफ्रीका को मिलाकर विकासशील देश दुनिया में बकरी की आबादी के बड़े हिस्से का संधारण करते हैं। इनमें से भारत बकरी आबादी में पहले स्थान पर हैए उसके बाद चीन और पाकिस्तान हैं। भारत मेंए देश की 20वीं पशुधन गणना के अनुसार वर्तमान बकरी की आबादी 148.88 मिलियन है जो कुल पशुधन आबादी का 27.7% है। 2012 की पशुधन गणना की तुलना में बकरी की आबादी में 10.14% की वृद्धि हुई है। 1951 से 2007 तक देश की कुल बकरी की आबादी में लगातार वृद्धि हुई है जहाँ जनसंख्या 47ण्2 मिलियन से बढ़कर 140.5 मिलियन हो गई है। वर्ष 2012 से 2019 के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी की आबादी में 10ण्35ः और शहरी क्षेत्रों में 5.78% की वृद्धि हुई। राज्यों मेंए राजस्थान में सबसे अधिक बकरियां 20.8 मिलियन हैं. इसके बाद पश्चिम बंगाल (16.3 मिलियन) और उत्तर प्रदेश (14.5 मिलियन) है। बकरियों को आम तौर पर मांस और दूध के लिए पाला जाता है हालांकि उनमें से कुछ (अंगोरा बकरी) से बाल और फाइबर (जैसे मोहैर) भी प्रदान करते हैं। बकरी मांस उत्पादन में भारत विश्व में दूसरे पर है। भारत में बकरी के मांस काए देश के कुल मांस उत्पादन में 13.53 प्रतिशत का योगदान है। मांस के अलावा भारत में दूध बकरी का एक और महत्वपूर्ण उत्पाद है। भारत बकरी के दूध का शीर्ष उत्पादक है इसके बाद बांग्लादेश का स्थान है। बकरी के दूध का हमारे देश के कुल दुग्ध उत्पादन में 3 प्रतिशत का योगदान है। हालांकि 2013-14 से 2018.19 तक दुधारू बकरियों की संख्या 30.91192 से बढ़कर 36ण्83431 मिलियन हो गई हैए परन्तु प्रति पशु औसत दूध उपज स्थिर 0.45 किलोग्राम/ दिन बनी हुई है बीएएचएसए 2019। इन आंकड़ों से यह संकेत मिलता है की भारत में बकरियों की एक बड़ी आबादी हैए परन्तु यहाँ प्रति पशु उत्पादकता अभी भी काफी कम है। इसी कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी की नस्ल व आबादी में सुधार हेतु कार्य करने की आवश्यकता है जो ग्रामीण किसानों के साथ.साथ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक और सामाजिक उत्थान में सहायता करेगी।

भारत में व्याप्त बकरी की नस्ल विविधता

दुनिया में बकरी की लगभग 351 नस्लें हैं जिनमें से भारत में बकरी की 34 मान्यता प्राप्त नस्लें हैं जो पूरे 15 कृषि.जलवायु क्षेत्रों में पायी जाती हैं। कुछ नस्लों का उपयोग मांस और दूध के अलावाए फाइबर उत्पादन के लिए भी किया जाता है। मूल रूप से, चेगू, गद्दी जैसे समशीतोष्ण हिमालयी क्षेत्र की नस्लों के लंबे बाल होते हैं जिनका उपयोग फाइबर के लिए किया जाता है। उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों और मध्यप्रदेश जैसे राज्य शामिल हैं। इस क्षेत्र की सबसे प्रमुख नस्ल जमुनापारी नस्ल है। जमुनापारी दोहरे उद्देश्य वाली नस्ल है और इसका व्यापक रूप से उन्नयन कार्यक्रमों में उपयोग किया जाता है। इस क्षेत्र की अन्य नस्लों में मारवाड़ी और ज़ालवाड़ी मांस और बाल उत्पादन में प्रयुक्त, बीटल, कच्छी, सिरोही, बीटल आदि शामिल हैं जिनका उपयोग दूध और मांस के लिए किया जाता है। दक्षिणी क्षेत्रों में महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश राज्य शामिल हैं और इस क्षेत्र की नस्लें मुख्य रूप से मांस के प्रकार की हैं। इनमें बरारी, कोंकम कन्याल, अट्टापदी ब्लैक, कन्नी अडु शामिल हैं। इसके अलावा इस क्षेत्र की कुछ नस्लों जैसे संगमनेरी, उस्मानाबादी को मांस और बालों दोनों के लिए पाला जाता है। पूर्वी क्षेत्र में

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिशा राज्य शामिल हैं।

भारत में बकरी पालन-प्रणालियाँ और कार्यक्रम

भारत में बकरी उत्पादन प्रणाली अत्यधिक परिवर्तनशील है। प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी पालक 10 अथवा 15 से लेकर 50-60 तक पशु आसानी से संधारित कर लेते हैं। हालाँकि चूंकि अधिकांश बकरी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती हैए इसलिए कम संख्या में इकाइयाँ अधिक प्रचलित हैं। 5 पशुओं तक की बकरी की इकाइयाँ 15.9-, 5 से 21 तक 38%, 21 से 100 तक 43% और 100 से अधिक की इकाइयाँ केवल 2% हैं। इसलिए छोटे पैमाने की इकाइयाँ अधिक प्रचलित हैं। छोटी औसत भूमि होने के कारण ये छोटी बकरी इकाइयां मिश्रित कृषि प्रणाली के महत्वपूर्ण अंग हैं। सामान्य तौर परए बकरी उत्पादन प्रणाली को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

टेदरिंग

यह पालन-पोषण की गतिहीन प्रणाली है और इसके लिए न्यूनतम श्रम की आवश्यकता होती है। इसे टेदरिंग और चराई प्रणाली के रूप में जोड़ा जा सकता है और ऐसी परिस्थितियों में 5 से 10 जानवरों को आसानी से रखा जा सकता है।

व्यापक उत्पादन

ज्यादातर कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है जहां भरपूर चरागाह या ब्राउज़िंग पौधों की उपलब्धता होती है।

गहन प्रणाली

इस प्रणाली में बकरियों को गहन पशु घर में रखा जाता है और भूमि के एक सीमित क्षेत्र में ही चराया जाता है। इस प्रणाली में पशु के स्वस्थ्य एवं पोषण आहार पर सम्पूर्ण नियंत्रण रखा जा सकता है। लेकिन इस प्रणाली में अधिक निवेश और उच्च श्रम लागत की आवश्यकता होती है। इसे केवल उच्च आय वर्ग द्वारा ही किया जा सकता है।

अर्ध-गहन

यह बकरी पालन की सबसे प्रमुख और प्रचलित प्रणाली है। इससे चारा और चारे की उपलब्धता के अनुसार पालन में लचीलापन आता है। यह प्रणाली अधिक आर्थिक रिटर्न की अनुमति देती है। इस प्रणाली के तहत, जानवरों को रात में पशुघर रखा जाता है। आवास खुले पेन, आधे खुले या बंद शेड हो सकते हैं। छोटे पशुओं को आमतौर पर अलग-अलग पेन में या मौजूदा संरचना को विभाजित करके अलग रखा जाता है। दिन के समय पशुओं को खेतों में चराया जाता है।

बकरी नस्ल में सुधार की रणनीतियां व बाधाएं

ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए बकरी पालन एक महत्वपूर्ण पहलू है। हालांकि, राष्ट्रीय स्तर पर बकरी सुधार कार्यक्रमों के वांछित परिणाम नहीं मिले हैं। बकरी सुधार में कई तरह की बाधाएं हैंए खासकर ग्रामीण इलाकों में। प्रमुख कारक कुलीन जानवरों और प्रजनन झुंडों की कमी है। बकरी पालन मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित हैए वह भी अर्ध गहन या व्यापक प्रणाली के तहत, इसलिए, भले ही हमारे पास बकरी की नस्लों में समृद्ध आनुवंशिक विविधता है लेकिन कुलीन प्रजनन झुंडों की कमी है। इसके अलावाए ग्रामीण झुंड आकार में छोटे होते हैं और

एक बड़े क्षेत्र में बिखरे हुए होते हैं जिससे कुलीन जानवरों की पहचान करना मुश्किल हो जाता है। दूसरी बाधा चराई भूमि/क्षेत्र का लगातार सिकुड़ना है। इसी कारण प्रति परिवार पशु संख्या कम होती जा रही है । साथ हीए वैज्ञानिक पालन और आहार के बारे में किसानों में जागरूकता की कमी है जिससे लाभ का अंतर कम हो जाता है।

हालांकि इनमें से कुछ मुद्दों की निगरानी एनएडीसीपी परियोजना के क्रियान्वन द्वारा की जा रही है जिसके तहत हर जानवर को एक विशिष्ट 12.अंकीय पहचान संख्या दी गई। फिर इन्हें गांव/ब्लॉक और जिलों के अनुसार पंजीकृत किया जाता है और फिर एक केंद्रीय डेटाबेस में विलय कर दिया जाता है। यह बाद में कुलीन जानवरों, नस्लों और उनके वितरण की पहचान करने में मदद कर सकता है ताकि उनके आनुवंशिक सुधार के लिए उचित योजना बनाई जा सके। **सामान्य तौर परए बकरियों के लिए आनुवंशिक सुधार की रणनीति में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए** .

- क्षेत्रों के अनुसार नस्लों का मानचित्रण और उनकी उपयोगिता.वार सुधार। इसके बाद विशेष क्षेत्र और उत्पादन प्रणाली में उनके उत्पादन प्रदर्शन को सूचीबद्ध किया जाता है।
- **आनुवंशिक विविधता का संरक्षण:** यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि सुधार कार्यक्रमों के दौरान आनुवंशिक विविधता को बाधित नहीं किया जाना चाहिएए इसलिए अंधाधुंध क्रॉसब्रीडिंग से बचा जाना चाहिए। इसलिएए नस्ल के भीतर सुधार को या तो चयन करके या भारतीय नस्ल नर पशु का उपयोग करके क्रॉस ब्रीडिंग का उपयोग करके अपनाया जाना चाहिए।
- **संरचित प्रजनन प्रणाली:** जुगाली करने वालोंए मवेशियों और भैंसों की तरह बकरियों के लिए भी एक संरचित प्रजनन प्रणाली होनी चाहिए। एक बार विशिष्ट क्षेत्र या क्षेत्र के लिए कुलीन जानवरों की पहचान हो जाने के बादए उनका उपयोग किसी भी संरचित प्रजनन प्रणाली का उपयोग करके किया जा सकता है। मध्यम आय वाले ग्रामीण क्षेत्रों में ओपन न्यूक्लियस ब्रीडिंग योजना को अपनाया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में चारागाह की उपलब्धता हैए वहां प्रजनन केंद्र या प्रजनन फार्म स्थापित किए जा सकते हैं जो केवल अच्छे उत्पादन करने वाले जानवरों को छोटी इकाइयों के रूप में वितरित करते हैं बल्कि विस्तार और प्रशिक्षण सेवाएं भी प्रदान करें
- **चारे की उपलब्धता में सुधार:** यह बहुत महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि चरागाह भूमि कम होती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक फीडिंग और पालन तकनीक प्रदान करने की तत्काल आवश्यकता है। इससे स्थानीय चारे के उपयोग एवं खनिज तत्वों के सही मिश्रण की जानकारी पशुपालक को प्राप्त होगी ।

पशु स्वास्थ्य देखभाल और बाजार सुविधाएं

ग्रामीण किसानों के लिए पशु स्वास्थ्य देखभाल बहुत महत्वपूर्ण है। अक्सर पशु स्वास्थ्य सुविधाएं बिखरी रहती हैं और समय पर हस्तक्षेप संभव नहीं होता है। किसानों को पशु स्वास्थ्य देखभाल, आवास और टीकाकरण के महत्व के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए ताकि बीमारी की घटनाओं और मृत्यु दर को कम किया जा सके। उन्हें खरीद या बीमारी के दौरान संगरोध और जानवरों के अलगाव के सिद्धांतों और उपयोगिता से भी अवगत कराया जाना चाहिए। हालाँकि बकरी मीट का विपणन एक गंभीर मुद्दा नहीं हो सकता है। क्योंकि यह अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक रूप से स्वीकार्य हैए किन्तु ऐसी व्यवस्थाओं का निर्माण करना चाहिए जिसमें किसानों को बिचौलियों की आवश्यकता न पड़ेए एवं लाभदायक बाजार तक सुगम पहुँच हो।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

मुर्गियों में पुलोरम रोग के लक्षण, रोकथाम व नियंत्रण

डॉ. राजेश रंजन, डॉ. राजीव रंजन
डॉ. अमित कुमार झा
डॉ. शेख टी.जे., डॉ सुमन कुमार
डॉ रिनेश कुमार, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
नानाजी देशमुख वेटरनरी साइंस यूनिवर्सिटी जबलपुर

पुलोरमरोग एक जीवाणु जनित संक्रामक रोग है जो 2-3 सप्ताह की उम्र के चूजों मे अधिक घातक रूप से हो सकता है। इस रोग मे सफेद रंग के दस्त होने के कारण इस रोग को बेसिलरी व्हाईट डायिरिया भी कहते है।

रोगकारक

यह रोग एक सालमोनेला पुलोरम नामक जीवाणु के द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण

यह रोग 2-3 सप्ताह के चूजों में अधिक घातक रूप से होता है क्योकि इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत कम होती है तथा शरीर का तापमान भी कम होता है जिस कारण जीवाणु को अधिक तीव्रता से वृद्धि करने का मौका मिल जाता है। 3 सप्ताह से अधिक उम्र के पक्षियों में यह रोग का घातक रूप बहुत कम उत्पन्न होता है क्योंकि ये जीवाणु के प्रतिरोधी होते है तथा इनमें इस रोग के साधारण या नाममात्र के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

चूजों मे इस रोग के लक्षण निम्न प्रकार है-

- अण्डों मे मरे हुए चूजे का होना।
- 3 सप्ताह की उम्र तक के चूजों की मृत्यु दर अधिक होना। ■ रोगी चूजे का बहुत ही सुस्त रहना।
- चूजे का बहुत प्यास बढ़ना।
- चूजे का तनाव ग्रस्त होना।
- चूजे का चलने मे असमर्थ होना व चलने पर अन्धे की तरह चलते रहना।
- चूजे का किसी भी वस्तु से टकराकर गिर जाना।
- चूजे का समूह बनाकर एक साथ इकट्ठे हो जाना।
- कमजोरी, भूख में कमी और ऊंघना।
- सांस लेने में तकलीफ होना व हाँफना।
- पंख लटक जाना व परों का छितरा जाना।
- पेट का आकार बढ़ जाना।
- सफेद चॉक के रंग के दस्त जो कभी-कभी हल्के भूरे रंग के भी हो सकते है। इसके कारण रोगी पक्षी/चूजा सफेद रंग का हो जाता है। मल त्याग के समय चूजे दर्दयुक्त आवाज करते है।
- सही हो जाने वाले पक्षी भी रोग के वाहक का कार्य कर सकते हैं।

वयस्क पक्षी में लक्षण

इनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता होने के कारण इस रोग के होने की सम्भावना कम होती है। परन्तु कुछ पक्षी इससे संक्रमित होने पर निम्न लक्षण प्रदर्शित कर सकते है-

- सुस्ती व तनाव। ■ भूख कम हो जाना।
- पंखो का लटक जाना व परों का छितरा जाना।
- कलंगी का रंग हल्का हो जाना। ■ अण्डा उत्पादन मे कमी। ■ अण्डा की गुणवत्ता घट जाना
- अधिक निर्जलीकरण के कारण पक्षी की मृत्यु भी हो सकती है।

उपचार

इस रोग के उपचार के लिए ग्राम निगेटिव जीवाणु के विरूद्ध कार्य करने वाली एन्टीबायोटिक काम मे ली जा सकती है। इसके अलावा रोगी पक्षी का लक्षणात्मक उपचार भी किया जाना चाहिए।

रोकथाम व नियंत्रण

- इस रोग का कोई टीका उपलब्ध नहीं है अतः रोग का नियंत्रण ही इसका उपाय है।
- रोगी पक्षियों/चूजों को स्वस्थ पक्षियों के समूह से पृथक कर देना चाहिए।
- कुक्कुट शाला की साफ-सफाई व निःसंक्रमण का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

सीमांत एवं छोटे किसानों के लिए वरदान सामूहिक खेती

राहुल कुमार,राजेश धाकड़
(सहायक प्राध्यापक) L.N.C.T
यूनिवर्सिटी भोपाल (म.प्र.)

रवि सिंधे (पीएच.डी. छात्र)
कृषि प्रसार विभाग कृषि महाविद्यालय ग्वालियर

सामूहिक खेती भारत जैसे देश में बहुत आवश्यक है क्योंकि भारत में सबसे ज्यादा छोटे तथा सीमान्त किसान है जिनकी जनसंख्या कुल किसानो की 86ण्2 प्रतिशत जिनके पास हमेशा संसाधनों की कमी रहती है यदि ये किसान आपस में मिलकर सामूहिक खेती करते है तो इनकी आय में बृद्धि होती है। सबसे पहले जानते है कि सामूहिक खेती क्या होती है। सामूहिक खेती खेती वह खेती है जिसमें किसान अपने संसाधनों को एकीकृत करके खेती करते हैए इसे सामूहिक खेती और सयुक्त खेती भी कहा जाता है । क्योंकी इसमें किसान अपने संसाधनों को सामूहिक रूप से एकत्रित करके खेती करते है। आइये जानते है सामूहिक खेती करने के क्या क्या लाभ है तथा क्यों सामूहिक खेती करनी चाहिए .

- खेती की प्रति हेक्टेयर आने वाली लागत कम हो जाती है क्यों मिल.जुलकर कार्य करने से संसाधनों का उचित उपयोग हो जाता है।
- किसानो में आपसी सहयोग की भावना बढ़ जाती है क्योकि किसान अपने संसाधनों को सामूहिक रूप से उपयोग करते है।
- सामूहिक खेती में कोई भी निर्णय अकेले नहीं लिया जाता है बल्कि सामूहिक रूप से लिया जाता हैए जिससे किसी भी तरह की हानि होने की संभावना कम हो जाती है।
- सामूहिक खेती करने से किसान महंगी से महंगी उन्नत तकनीकों का उपयोग कर सकता है क्योकि इसमें कई लोग मिलकर खेती करते है जिसे तकनीक पर आने वाला खर्चा कम हो जाता है।
- छोटे एवं सीमान्त किसान किसानो की लिए सामूहिक खेती तो वरदान साबित हो रही है क्योकि सामूहिक खेती से उनकी प्रति हेक्टेयर खेती पर आने वाला खर्च कम हो जाता है जिससे आय में बृद्धि हो जाती है।
- समूहिक खेती करने से किसानो का जोखिम कम हो जाता है क्योकि इसमें सभी किसान मिलकर कार्य एवं देखरेख करते है और लाभांश को सभी किसानो के मध्य बाटते है जिससे किसी एक किसान को होने वाली हानि की संभावना कम हो जाती है।
- कृषि उत्पादों के स्थानांतरण पर होने वाला खर्चा कम हो जाता है।

सामूहिक खेती के स्वरुप

टोज

- सामूहिक खेती का ऐसा प्रकार जिसमे किसान बीज की बुबाई एकटाईए निराई एजैसे अन्य कृषि कार्य मिलजुलकर करते है एजोत अलग अलग रहती है और लाभ का बटवारा भूमि के अनुसार किया जाता है।

खौलखोज

- इसके अंतर्गत उत्पादन के सभी संसाधनों को सामूहिक रूप से एक कर लिया जात्ता है और जब खेती के लिए किसी संसाधन की आवश्यकता पड़ती है तो ये सदस्य स्वं संसाधन उपलब्ध कराते है।

कोम्यून

- इस प्रकार की खेती में संसाधनएउत्पादन के साथ साथ लाभ के वितरण का भी एकीकरण कर लिया जाता है लेकिन इसके अंतर्गत लाभ का वितरण सदस्यों की आवशयकता पर निर्भर करता है उनके काम पर नही।

पाले से फसलों का बचाव कैसे करें?

राहुल कुमार,राजेश धाकड़
(सहायक प्राध्यापक) L.N.C.T यूनिवर्सिटी भोपाल (म.प्र.)

रवि सिंधे (पीएच.डी. छात्र)
कृषि प्रसार विभाग कृषि महाविद्यालय ग्वालियर

कृषि एक मौसमी व्यवसाय है जिसके सफल होने के लिए फसल की पूरी अवधि के दौरान मौसम फसल के अनुरूप होना चाहिए अन्यथा फसल ख़राब हो सकती है, जैसे आप देखते है की जब सर्दी आती है तो फसल पर पाला पड़ने की संभावना ज्याद रहती है। सबसे पहले जानते है की पाला क्या होता है और क्यों पड़ता है जब वायु मंडल का तापमान शून्य डिग्री से नीचे चला जाता है और हवा बंद हो जाती है तो पौधों की पतियों व घासपूष की पतियों पर बर्फ की हलकी परत जमने लगती है जिसे पला कहते है यह हमेशा दिसम्बर एवं जनबरी के मध्य में पड़ता है।

पाले से फसलों पर पड़ने वाले प्रभाव

1. फसल की पतियों का रंग उड़ने लगता है तथा सब्जियों का रंग मटमैला हो जाता है।
2. फलो एवं सब्जियों में कीट एवं रोगो का प्रकोप बढ़ने लगता
3. फलो एवं सब्जियों का स्वाद फीका हो जाता है
4. पतिया एवं फूल झड़ने लगते है जिसे उत्पादन काम हो जाता है

पाले का सबसे ज्यादा प्रभाव निम्न फसलों पर पड़ता हैं पपीता, आम, अमरूद , टमाटर, मिर्च, बैंगन, पपीता, मटर, चना, अलसी, सरसों, जीरा, धनिया, सौंफ इसके अलावा अरहर, गन्ना, गेहूं और जौ पर पाले का असर कम दिखाई देता है।

पाले से फसलों का बचाव कैसे करे

1. खेत की सिचाई करे ऐसा करने से खेत का तापमान बढ़ जाता है और फसल पाले से बच जाती है
2. खेत के चारो तरफ धुआँ करे जिससे वह का तापमान बढ़ जाए ।
3. पौधों एवं सब्जी वाली फसलों को संभव हो तो लो कास्ट वाले पॉली टनल में उगाएं।
4. सल्फर का छिड़काव करे क्योकि सल्फर के छिड़काव से रासायनिक सक्रियता बढ़ जाती है और पाले से बचाव के अलावा पौधों को सल्फर तत्व भी मिल जाता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

डॉ. प्रवेश कुमार द्विवेदी
डॉ. गिर्राज शाक्य
डॉ.अपूर्वा मिश्रा, डॉ.अपरा शाही
पशु शल्य चिकित्सा एवं क्ष: रश्मि विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

दुधारु पशुओं में खुर के विकार एवं उनका निदान

खुर के विकार दुधारु पशुओं में एक विशिष्ट आर्थिक चिंता का विषय है। इसके प्रमुख दुष्प्रभाव दर्द, दुग्ध उत्पादन में कमी, प्रजनन प्रदर्शन में कमी एवं निष्कासन है। भारत में दुधारु पशुओं में पैरों से लंगड़ाकर चलने की समस्या के इंसीडेंस का प्रतिशत गायों एवं भैंसों में क्रमश: 9 एवं 2 प्रतिशत है। जिसमें से खुर के विकारों का प्रतिशत सबसे अधिक लगभग 24 प्रतिशत अंकित किया गया है।

खुरों में पाये जाने वाले विकार निम्नानुसार हैं

- हार्न हील इरोजन
- व्हाइट लाइन अलगाव
- खुर के तलवों में रक्त स्त्राव
- सोल अल्सर
- खुर अतिवृद्धि
- इंटर डिजिटल ऊतक अतिवृद्धि
- हार्डशिप ग्रूव
- पीले तले
- कार्क स्क्रू
- डबल सोल
- खुरपका एवं मुँहपका
- इंटर डिजिटल डर्मेटाइटिस
- लेमिनाइटिस

उपरोक्त विकार देशी नस्ल की गायों की अपेक्षा संकर वर्ण की गायों में (क्रॉस ब्रीड) अधिक पाये जाते है क्यों कि इनके खुर की दीवाल पतली होती है। खुरो में पाये जाने वाले समस्त विकारों में से खुर अतिवृद्धि एवं हार्न हील इरोजन सबसे ज्यादा एवं पीडल अस्थि भंग सबसे कम पाया जाता है। खुर के विकार मुख्यतः आगे के पैरों में अधिक पाये जाते है।

एक पुरानी कहावत है ''बिन पैरों के जानवर बेकार'' और यह सत्य है कि क्योंकि इन विकारों के कारण किसानों को आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ता है क्योंकि पैरों में समस्या के कारण पशुओं को खड़े होने एवं चरने में परेशानी का सामना करना पड़ता है। जिससे कि कुल भोजन अंतग्रहण एवं दुग्ध उत्पादन में कमी हो जाती है।

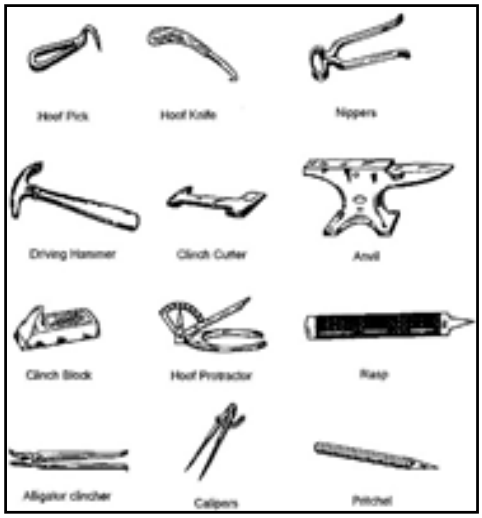

रोकथाम के उपाय

- **हूफ ट्रिमिंग:** प्रत्येक 6 माह में
- **हूफ डिपिंग:** 0.1 प्रतिशत पोटेशियम परमैग्नेट का घोल
- खुर के नीचे की जमीन खुरदरी एवं कोमल होनी चाहिये जिससे कि खुर स्वतः घिसते रहें ।

उपचार

- **खुर अतिवृद्धि:** खुर की सामान्य अवतला को बनाये रखने के लिये खुर के हॉर्न की पॉच मिली मीटर मोटाई को निकाला जाता है। फिर दोनों पंजों की वजन सहने वाली सतह को पुनः सही करने के लिये खुर के तले को व्हाइट लाइन दिखाई देने तक घिसा जाता है। खुरों की उपचारीय कटाई हमेशा काटने वाले के शरीर से दूर दिशा में होनी चाहिये । खुर की उपचारी कटाई के बाद चोट को 1:10,000 पोटेशियम परमैग्नेट तथा हाइड्रोजन परऑक्साइड के द्वारा साफ करते है तत्पश्चात एक पटटी को 7 प्रतिशत कॉपर सल्फेट में डुबाकर घाव पर एक दिन के लिये बॉधते है। अंततः 5 प्रतिशत पोवीडॉन आयोडीन ऑइंटमेंट द्वारा प्रत्येक एक दिन के अंतराल पर सफाई करते है।

इंटर डिजिटल ऊतक अतिवृद्धि

इस स्थिति शल्य चिकित्सक के द्वारा बढ़े हुये ऊतक को (V) आकार में काटकर, टॉके लगाने के बाद वहॉ पर एंटीसेप्टिक औषधि से उपचारित करें।

लेमिनाइटिस

इस स्थिति पंजों से रक्त के बहाव एवं सूजन को कम करने के लिये ठंडे पानी या बर्फ से सिकाई करना चाहिये तत्पश्चात दर्दनिवारक दवा जैसे कि इंजेक्शन मैलोक्सीकैम, पाइरोक्सीकैम एवं निमूसिलाइड पशु के वजन अनुसार लगाना चाहिये ।

खुरपका एवं मुँहपका बीमारी

इस स्थिति में पशुओं में निचले पैरों की सफाई के पश्चात कार्बोलिक एसिड पाउडर से ड्रेसिंग करना चाहिये फिर बोरिक एसिड एवं गिलसरीन का पेस्ट बनाकर घाव पर लगाना चाहिये । सेकेन्ड्री बैक्टीरियल संक्रमण को रोकने के लिये ब्रॉड स्पेक्ट्रम एंटीबायोटिक का उपयोग करना चाहिये ।

इंटर डिजिटल डर्मेटाइटिस

इस स्थिति में ऐसी एंटीबायोटिक का उपयोग करें जिसका रिसाव खुरों में होता हो जैसे कि ऑक्सी टेट्रासाइक्लिन एवं स्ट्रेप्टोपेनिसिलीन उक्त एंटीबायोटिक को पशु के वजन अनुसार लगाना चाहिये।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

किसान भाई जैविक विधि से गेहूँ उत्पादन कैसे लें

द्वारका (पी.एच.डी.शोधार्थी)
कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

अंगद पटेल प्रोग्राम ऑफिसर, वाग्धारा फाउंडेशन, बांसवाडा, राजस्थान 327001

भारत में चावल के बाद सबसे ज्यादा खाया जाने वाला अनाज गेंहूँ है इसके अलावा गेंहूँ से बहुत सारे उत्पाद व व्यंजन भी बनते है इसलिए इस फसल का अपना अलग ही महत्व है जैसे सूजी एवं अल्कोहल आदि।

गेंहूँ की उन्नत किस्मे व उनकी विशेषताएं

पी बी डब्लू 342 व 373: यह किस्म 130 दिन में पक कर तैयार हो जाती है साथ ही इसकी औसत उपज 30 क्विंटल तक है यह किस्म करनाल बंट तथा रस्ट के प्रति रोगरोधी है।

मालवाशक्ति: यह किस्म 130 व 140 दिन में पक कर तैयार हो जाती है साथ ही इसकी औसत उपज 35 क्विंटल तक है यह किस्म रस्ट के प्रति रोगरोधी है

अन्य किस्में: मालवा रत्न, सी - 306, शरबती, सोनारा, सोनालिका, प्रताप, पुसा बोल्ड, पुसा सुकेती, पुसा मंगल, पुसा बेकर आदि।

जलवायु: गेंहूँ की फसल के लिए सूखी व ठंडी जलवायु की आवश्कता होती है इसके लिए 20-25ए सेल्सिअस तापमान की आवश्यकता होती है। साथ ही इसके लिए कटाई के समय गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है।

मिट्टी: गेंहूँ की फसल के लिए उचित जल निकास वाली दोमट व मध्यम काली मिट्टी जिसकी जल धारण क्षमता अच्छी हो सर्वोत्तम मानी जाती है परन्तु इसकी खेती रेतीली दोमट व काली मिट्टी में भी की जा सकती है इसके लिए भारी मृदा व जलभराव वाली मृदा उपयुक्त नहीं मानी जाती है क्योकि गेंहूँ जलभराव वाली मृदा में नहीं हो सकता है।

खेत की तैयारी व खाद की मात्रा: गेंहूँ के खेत की तैयारी के लिए सर्वप्रथम 1 जुताई मिट्टी पलट हल से करने के बाद 2 जुताई देशी हल से कर के मिट्टी को भुरभुरी बना लेते है साथ ही इसी समय पर 10-12 टन/हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद मिला देते है।

बुवाई का समय व बीज की मात्रा: गेंहूँ की बुवाई के लिए नवम्बर का महीना सर्वोत्तम माना जाता है क्योकि इस समय पर उचित तापमान होता है जो गेंहूँ की फसल के लिए सबसे अच्छा माना जाता है और अगर बिना सिचाई के गेंहूँ बोना हो तो अक्टूबर का दूसरा पखवाडा व नवम्बर का प्रथम पखवाडा अच्छा माना जाता है। बीज की मात्रा सिचाई पर निर्भर करती है अगर पर्याप्त पानी उपलब्ध है तो 100-125 किग्रा./हेक्टेयर की दर से बुवाई की जाती है साथ ही अगर सिचाई के लिए पानी उपलब्ध नहीं है तो 60-90 किग्रा./हेक्टेयर बीज पर्याप्त होता है। गेंहूँ की फसल में लाइन से लाइन की दुरी 22-23 सेमी.रखी जाती है और इसकी बुवाई 5 सेमी. गहराई पर करनी चाहिए।

सिंचाई: गेंहूँ की फसल के लिए सिचाई अत्यंत आवश्यक होती है इसके लिए सामान्यतया 6 सिचाई की आवश्कता होती है जो की हर 20-25 दिन में की जानी चाहिए। फिर भी अगर 2 या 3 सिचाई के लिए पानी उपलब्ध है तब भी इसका उत्पादन अच्छा लिया जा सकता है।

निम्न समय पर गेहूँ की फसल को पानी देना चाहिए

फसल की अवस्था	बुवाई के बाद के दिन	उत्पादन में कमी (प्रति.)
मुकुट जड़ बनते समय	18-21	35
टिलरिंग	35-40	20
गांठ बनते समय	50-55	20
बूट बनते समय	65-70	25
दूधिया अवस्था	80-85	17
दाना पकने की अवस्था	90-95	10

अगर तीन सिचाई उपलब्ध है तो पहली सिचाई मुकुट जड़ बनते समय (18-21 दिन) दूसरी सिचाई गांठ बनते समय (50-55 दिन) अवस्था में व तीसरी सिचाई दूधिया अवस्था (80-85 दिन) करनी चाहिए। और अगर दो ही सिचाई उपलब्ध है तो पहली सिचाई मुकुट जड़ बनते समय (18-21 दिन) दूसरी सिचाई गांठ बनते समय (60-65 दिन) करनी चाहिए। यदि एक ही सिचाई उपलब्ध है तो वह सिचाई मुकुट जड़ बनते समय (18-21 दिन) करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण: गेंहूँ की फसल में गेंहूँ का मामा नामक खरपतवार सबसे अधिक नुकसान पहुचता है इसे नियंत्रित करने के लिए बुवाई के 30-35 दिन बाद हाथ से निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। साथ ही दूसरी निराई-गुडाई बुवाई के 70-75 दिन बाद करनी चाहिए। इससे खरपतवार को पूरी तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है ।

गेंहूँ की फसल के प्रमुख रोग निम्न है

रस्ट- यह रोग फसल के तनों व पत्तियो पर होता है यह मुख्यतः तीन प्रकार का होता है इसके कारण फसलो पर जंग (लोहे पर लगने वाले) के रंग के निशान पड़ जाते ळें

रोकथाम: इस रोग की रोकथाम के लिए रोग प्रतिरोधी किस्मो को लगाना चाहिए साथ फसल चक्रण अपनाना अत्यंत आवश्यक है इसके अलावा मिश्रित खेती भी एक अच्छा उपाय है। इन सब के अलावा 5 लीटर छाछ (बटरमिल्क)/200 लीटर पानी में मिला के प्रति हक्टेयर छिडकाव अत्यंत लाभ दायक है ।

लूज स्मट- इस रोग के प्रकोप के कारण गेहू की बाली में दाने पूरी तरह से राख जैसे हो जाते है।

रोकथाम: इस रोग की रोकथाम के लिए बीजोपचार अत्यंत आवश्यक होता है इसके लिए बुवाई से पहले बीज को लगभग 8 घंटे तक अच्छी धूप मै सुखा लेना चाहिए फिर बीज की बुवाई करनी चाहिए ।

भभूतिया रोग: इस रोग के प्रकोप के कारण पोधे के सभी भागो पर सफेद रंग का पाउडर सा लग जाता है।

रोकथाम: इस रोग की रोकथाम के लिए गाय के मूत्र का छिडकाव अत्यंत लाभ दायक है ।

करनाल बंट: इस रोग के कारण दाने काले पड़ जाते है जिस से उत्पादन में भारी कमी देखी गई है।

रोकथाम: इस रोग की रोकथाम के लिए रोग प्रतिरोधी किस्मो को लगाना चाहिए। साथ ही खेत में जरुरत से ज्यादा पानी नहीं भरना चाहिए।

गेंहूँ की फसल के प्रमुख कीट निम्न है -

दीमक: यह फसलो की जड़ो पर आक्रमण करके फसलो को बहुत अधिक नुकसान पहुचाते है। दीमक जहा भी होता है पूरी की पूरी कालोनी होती है और यह बहुत अधिक संख्या में होते है।

रोकथाम: इसकी रोकथाम के लिए गर्मी मे खेत की गहरी जुताई कर के छोड़ देना चाहिए साथ ही गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद का ही प्रयोग करना चाहिए क्योकि यदि गोबर की खाद सड़ी न हो तो दीमक का प्रकोप बढ जाता है इसके अलावा नीम की पत्तियों की खाद 5 क्विंटल/हक्टेयर व नीम के बीज की खाद 1 क्विंटल/हक्टेयर डालनी चाहिए। इसके अलावा नीम की खली का भी प्रयोग किसान भाई कर सकते है।

माहू: इसके प्रौढ़ तथा निम्फ दोनों ही इसकी स्पैक्लेट व कोमल पत्तियो का रस चूसते है।

रोकथाम: इसकी रोकथाम के लिए अदरक-मिर्ची का घोल, गाय का मूत्र, दशपर्नी या छाछ का प्रयोग भी कर सकते है। तथा नीम के तेल का प्रयोग भी किसान भाई 1 एम. एल. प्रति लीटर पानी के हिसाब से कर सकते है।

कटाई व उपज: नवम्बर में बोई गई फसल मार्च के अंत में कटाई के लिए तैयार हो जाती है जब दाने का रंग सुनहरे रंग का हो जाता तब गेंहूँ कटाई के लिए तैयार हो जाता है।

गेंहूँ की उपज: लगभग 25-30 क्विंटल/हक्टेयर तक उपज किसान भाइयों को मिल सकती है।

घर पर दवाई कैसे बनाये-

अदरक-मिर्ची का घोल: इसे बनाने के लिए 1 किग्रा. बेसरम (आइपोमिया कारनिया) की पत्तिया, 500 ग्रा. मिर्ची, 500 ग्रा.अदरक, 5 किग्रा. नीम की पत्तिया व 10 लीटर गाय के मूत्र को लेकर इसे इतना उबलते है ताकि यह घोल आधा बचे इस घोल का 2 से 3 लीटर 100 लीटर पानी में मिला कर एक एकड़ में छिडकाव करना चाहिए ।

गाय का मूत्र: गाय का मूत्र व पानी का अनुपात 1रू20 में मिला कर छिडकाव करना चाहिए इससे रोग व कीट तो नियंत्रित होते ही है साथ ही फसल की बढवार भी अच्छी होती है ।

छाछ: इसका प्रयोग चूसने वाले कीटो के लिए सर्वोत्तम माना जाता है छाछ को कुछ दिन रखने के बाद जब उसमे से सड़ी गंध आने लगे तो 1 लीटर/15 लीटर पानी में मिला कर छिडकाव करे।

दशपर्नी: दशपर्नी बनाने के लिए नीम की 5 किग्रा. पत्तिया गिलोय की 2 किग्रा. पत्तिया अरंडी की 2 किग्रा. पत्तिया करंज की 2 किग्रा. पत्तिया हरी मिर्ची का पेस्ट 2 किग्रा. 250 ग्राम अदरक का पेस्ट 5 किग्रा. गाय का गोबर 5 लीटर गाय का मूत्र 200 लीटर पानी इसके लिए एक महीने तक सबको मिश्रित करके सड़ने के लिए रख देते है फिर इसे अच्छी तरह हिला के उपयोग करना चाहिए। यह 500 लीटर/हक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। इसके प्रयोग करने से कीट व रोगों को नियंत्रित किया जा सकता है।

स्त्रोत-

1. नेटवर्क प्रोजेक्ट ओं आर्गेनिक फार्मिंग - आई. सी. ए. आर.
2. एग्रोनोमी ऑफ फील्ड क्रॉप एस. आर. रेड्डी

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

दुधारू पशुओं में थनेला/ स्तनशोथ (Mastitis) रोग: कारण एवं घरेलू उपचार एवं सावधानियां

डॉ. ज्ञानसागर कुशवाह
(स्नातकोत्तर छात्र)
डॉ. क्षेमंकर श्रमण (सहप्रध्यापक)
डॉ. नितिन कुमार बजाज
(सहप्रध्यापक) पशु चिकित्सा पशुपालन महाविद्यालय जबलपुर, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)
डॉ. अनिल गिरि सहायक प्रध्यापक, कृषि महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

थनैला या स्तनशोथ दुधारू पशुओं में होने वाला एक घातक संक्रामक रोग है। यह रोग संसार के सभी देशों में पाया जाता है। थनैला रोग स्तनपान कराने वाले पशुओं को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण बीमारिओं में से एक है। प्राचीन काल से यह बीमारी दूध देने वाले पशुओं एवं पशुपालकों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। पशु धन विकास के साथ साथ श्वेत क्रांति की पूर्ण सफलता में अकेले यह बीमारी सबसे बड़ी बाधक है। दुग्ध उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है, और भारत में डेयरी उद्योग किसानों के लिए कृषि के बाद, आय का एक प्रमुख स्रोत है। इस श्वेत क्रान्ति के कारण 1950-51 में जहाँ दुग्ध उत्पादन 17 मिलियन टन था और प्रति व्यक्ति उपलब्धता 124 ग्राम प्रति दिन थी, वो 2001 -02 तक 84.6 मिलियन टन तक पहुँच गया और प्रति व्यक्ति उपलब्धता 220 ग्राम प्रति दिन हो गयी थी। वर्ष 2018-19 में दुग्ध उत्पादन बढ़ कर 187.8 मिलियन टन हो गया और प्रति व्यक्ति उपलब्धता बढ़ कर 394 ग्राम प्रति दिन हो गयी थी। हालाँकि, वर्ष 2030 तक दूध की कुल अनुमानित मांग लगभग 266.5 मिलियन मेट्रिक टन होगी। दुग्ध उत्पादन की मौजूदा दर पर दुग्ध आपूर्ति अगले दस वर्षों में मांग से कम होने की संभावना है। दुग्ध उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त करने में कई बाधाएं है। उनमे से एक प्रमुख बाधा स्तनशोथ है। ऐसा माना जा रहा है कि स्तनशोध से गाय का उत्पादन लगभग 15 प्रतिशत कम हो सकता है। खुरपका और मुहंपका रोग के बाद स्तनशोथ, अत्यधिक मात्रा में आर्थिक नुकसान करने वाली बीमारी है। यह नुकसान दुग्ध उद्पादन में कमी, दुग्ध गुणवत्ता में कमी, चिकित्सकीय व्यय, एवं अतिरिक्त श्रम व्यय के रूप में होता है। कभी-कभी इसकी वजह से दुधारू पशु को फार्म से समय पूर्व हटाना भी पड़ता है, इसकी वजह से आर्थिक हानि होती है। सबसे ज्यादा हानि दुग्ध उत्पादन में कमी की वजह से होती है यह लगभग 70:, थनैला रोग के उपचार के बाद दूध का अनुपयोगी होना, इसकी वजह से 9%, पशुचिकित्सकीय व्यय 7% एवं असमय पशु को फार्म से हटाने से 4% तक हानि होती है ।

यह बीमारी सामान्यतः गाय, भैंस, बकरी एवं घोड़ी समेत सभी पशुओं में पायी जाती है, जो स्तन पान कराते है। थनैला बीमारी पशुओं में कई प्रकार के जीवाणु, विषाणु, कवक, फफूंद के संक्रमण से होती है। अतःहम कह सकते है, की स्तनशोध एक बहुकारकों से होने वाली जटिल बीमारी है। स्तनशोध करने वाले, 250 से अधिक संक्रामक कारक आज तक ज्ञात हैं और बड़े जानवरों में सबसे अधिक रोगजनक कारक स्टैफिलोकोकस ऑरियस, स्ट्रेप्टोकोकस एग्लैक्टिया, अन्य स्ट्रेप्टोकोकस, ई-कोलाई आदि हैं। इसके अलावा चोट, मौसमी प्रतिकूलतायें, पोषण में कमी एवं पशु रख रखाव में कमी की वजह से भी स्तनशोध होती है। दुग्ध निकालने का गलत तरीका भी स्तनशोथ का महत्वपूर्ण कारण है। आहार जैसे-कॉपर, कोबाल्ट, जिंक, सेलेनियम और विटामिन ई की कमी अदि करक भी थनैला रोग के लिए जिम्मेदार है। थनैला रोग में स्तन ग्रंथि में सूजन हो जाती है, थन गर्म हो जाता है एवं उसमें दर्द होता है। थनैला रोग होने पर पशु बुखार से भी पीड़ित हो सकता है। लक्षण प्रकट होने पर दुग्ध की गुणवत्ता प्रभावित होती है। थनैला रोग सामान्यतः एक थन से प्रारम्भ होकर अन्य थनों में भी फैल सकता है। कुछ पशुओं में दुग्ध का स्वाद नमकीन हो जाता है। गंभीरता बढ़ने पर दूध में छिछड़े, खून, मवाद भी आ सकती है, पशु खाना पीना छोड़ कर अवसाद से ग्रसित हो जाता है। सही समय पर उपचार न मिलेन पर रोग की अवस्था अपरिवर्तनशील हो जाती है, जिससे थन कड़ा हो जाता है, एवं थन से दूध आना स्थायी रूप से बंद हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है, कि थनैला रोग करक जीवाणु, दुग्ध स्रावित ऊतकों को संयोजी ऊतक में परिवर्तित कर देते है, और यह ऊतक बहुत कठोर होता जाता है जिससे थन भी कठोर होने लगता है, और धीरे-धीरे उसमे से दूध आना बंद होने लगता है। थनैला रोग अलाक्षणिक प्रकार का भी होता है, जिसमें थन एवं दूध में कोई लक्षण प्रतीत नहीं होते है, लेकिन प्रयोगशाला में दूध की जाँच कराने पर इस रोग के बारे में पता चलता है।

बचाव: आमतौर पर यह देखा गया है, की ग्रामीण इलाकों में किसान अपने पशु को कीचड़ भरी और गन्दी जगहों पर रखते है, ऐसी जगहों से संक्रमण फैलने की संभावना बहुत ज्यादा रहती है । अतः पशु को साफ सुधरी जगह पर रखना चाहिए, और उसके आस पास नियमित साफ सफाई करना चाहिए। दूध निकालने से पहले किसान गाय या भैंस के बछड़े को दूध पीने और दुग्ध उद्दीपन की प्रक्रिया को प्रारंभ करने के लिए माँ के पास छोड़ते है, कभी-कभी बछड़ा दूध पीने के समय थनों को क्षतिग्रस्त कर देता है, और जिससे स्तन ग्रंथियों में सूजन आ जाती है और धीरे- धीरे इसमें संक्रमण बढ़ता रहता है । इससे बचाव के लिए, बछड़े को दुग्ध उद्दीपन के लिए नहीं छोड़ना चाहिए और दुग्ध उद्दीपन की प्रक्रिया को ग्वाले द्वारा हाथ से ही प्रारंभ करना चाहिए। यह भी देखा गया है, की दूध निकलने से पहले और बाद में, थनों को अच्छी तरह से साफ नहीं किया जाता है। यह भी स्तन ग्रंथियों में संक्रमण फैलने का एक प्रमुख कारण है। जब भी थनों से दूध को निकालते है, तो स्तन ग्रंथियों की नली खुल जाती है और कभी-कभी दूध निकालने के तुरंत बाद ये बंद नहीं होती है, जिससे रोगकारक जीव आसानी से स्तनग्रंथियों मे प्रवेश कर जाते है, और संक्रमण फैलाना प्रारंभ कर देते है। इसके बचाव के लिए दूध निकालने से पहले थनों को अच्छी तरह से गुनगुने पानी से धो कर, साफ कपडे से अच्छी तरह पोंछना चाहिए, और दूध निकालने के पश्चात् भी गुनगुने पानी से साफ करना चाहिए और पशु को दूध निकालने के तुरंत बाद बैठने से रोकना चाहिए। जिससे की पशु के थनों की खुली हुई नलियों को बंद होने के लिए पर्याप्त समय मिल सके व खुली हुई स्तन नलिकाएं गन्दी जमीन के संपर्क में न आने पाए। अक्सर यह भी देखा गया है, जो व्यक्ति दूध निकालता है। वह अपने हाथों को अच्छी तरह से साफ नहीं करता है, और बिना हाथ साफ किये दूध निकालना प्रारंभ कर देता है। ऐसा करने से, उस व्यक्ति के हाथों से रोगकारक जीवाणु थनों में प्रवेश कर सकते है और थनों को संक्रमित कर सकते है, और यह भी थनैला रोग का एक कारण हो सकता है। इससे बचने के लिए, ग्वालों को दूध निकालने से पहले अपने हाथों को साबुन से अच्छी तरह साफ करना चाहिए।

उपचार के कुछ उपाय: थनैला रोग का सफल उपचार प्रारंभिक अवस्थाओं में ही संभव है अन्यथा रोग के बढ़ जाने पर थन को बचा पाना कठिन हो जाता है। इससे बचने के लिए दुधारु पशु एवं दूध की समय पर जाँच करवा कर जीवाणुनाशक औषधियों द्वारा उपचार संभव है। आमतौर पर गांवों में देशी औषधियों से थनैला का उपचार किया जाता है। औषधीय पौधे ग्रामीण इलाकों में आसानी से उपलब्ध हो जाते है। ये सामान्यतः पशुओं के लिए हानिरहित होते है, इनमें अवशेषी विषाक्तता की भी सम्भावना नहीं होती है एवं ग्रामीण जन इन पर भरोसा करते है। थनैला रोग के उपचार में आमतौर पर प्रयोग होने वाले कुछ मिश्रण निम्न प्रकार है। 200 ग्राम एलोवेरा की पत्ती, 50 ग्राम हल्दी, पांच ग्राम चूना मिलाकर एक मिश्रण तैयार करते है। इसके लेप को गाय और भैंस के थन पर दिन में आठ बार, पांच दिनों तक लगाने से लाभ प्राप्त होता है। 200 ग्राम प्याज को दो से चार लौंग के साथ मिश्रित कर साथ में थोड़ा सा सरसो का तेल मिलाकर खिलाने से थनैला रोग को कम किया जाता है। इसी प्रकार केले के फल में 20-30 ग्राम कपूर मिलाकर दिन में दो से तीन बार पांच दिनों तक खिलाने से दूध में खून आने की स्थिति में बहुत फायदा होता है।

थनैला रोग की गंभीर स्थिति में स्पंज गार्ड (तोरई) की 100 ग्राम पत्तियों को 250 मिली लीटर पानी में पीसकर थन के प्रभावित हिस्से पर लगाकर सूती कपड़े से बांध देने से भी लाभ प्राप्त होता है।प्रतिदिन 600 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम वजन की दर से तुलसी के पत्तों के पाउडर को 7 दिनों तक खिलाने से थनैला संक्रमण में महत्वपूर्ण कमी पाई गयी है। इससे थनैला रोग में बढ़ने वाली दैहिक कोशिकों की गणना में भी कमी पायी गयी है। थनैला के उपचार में बहुत अधिक मात्रा में एंटीबायोटिक का इस्तेमाल किया जाता है यह एंटीबायोटिक दूध के माध्यम से मनुष्यों में पहुंच जाती है, और यह बुजुर्गों और बच्चों में समस्याएं पैदा करती हैं। अतः थनैला रोग उपचार में एंटीबायोटिक उपयोग पशुचिकत्सक की सलाह के बगैर नहीं करना करना चहिये। कभी -कभी ग्रामीण जन खुद ही अपने पशु का उपचार बिना पशुचिकित्सक सलाह से करने लगते है, उनको ऐसा नहीं करना चाहिए क्यों कि ऐसा करना पशु के साथ साथ उनके लिए भी हानिकारक हो सकता है। थनैला दुधारू पशुओं में पाए जाने वाला आर्थिक रूप से अत्यंत हानिकारक रोग है। जिससे उत्पादकता में कमी, दुग्ध गुणवत्ता में कमी होती है। इस रोग के हानिकारक प्रभाव, महंगे एवं अनिश्चत उपचार विधि को देखते हुए इस रोग से बचाव ही सर्वोत्तम विकल्प है। अतः पशुपालकों को अपने पशुओं का एवं उनके आस -पास के वातावरण जैसे साफ सफाई, थनों का रख-रखाव एवं पशुपोषण पर विशेष ध्यान द्वारा इस समस्या से बचा जा सकता है। लक्षण प्रकट होने पर पशुचिकित्सक द्वारा शीघ्र उपचार द्वारा ही इस रोग के हानिकारक प्रभाव से बचाव संभव है। अतः पशुपालक एवं पशुचिकित्सक के सामूहिक प्रयास द्वारा इस रोग का बचाव एवं उपचार उचित निति होगी।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

दुधारू पशुओं में लंगड़ा बुखार/ जहरवाद (ब्लैक क्वार्टर) रोग के लक्षण

रोकथाम बचाव, उपचार एवं टीकाकरण

डॉ. जयवीर सिंह राजपूत
डॉ. गयाप्रसाद जाटव
डॉ. सुप्रिया शुक्ला
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, पैथोलॉजी विभाग महू (म.प्र.)
डॉ. ब्रह्मप्रकाश शुक्ला
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, सर्जरी विभाग महू, (म.प्र.)

यह रोग ज्यादातर बरसात के मौसम में फैलता है। इसकी विशेषता यह है कि यह खास कर 6 महीने से 24 महीने के स्वस्थ पशुओं को शिकार बनाता है। इसको (Blackleg या 'ब्लैक क्वार्टर' या BQ) साधारण भाषा में जहरबाद, फडसूजन, लंगड़िया, एकटंगा आदि नामों से भी जाना जाता है। यह रोग प्रायः सभी स्थानों पर पाया जाता है लेकिन नमी वाले क्षेत्रों में व्यापक रूप से फैलता है।

यह रोग मिट्टी द्वारा फैलता है. इस रोग के जीवाणु मिट्टी में संक्रमित पशुओं के मल द्वारा या उसकी मृत्यु होने पर उसके शव द्वारा पहुँचते हैं. जीवाणु दूषित चारागाह में चरने से आहार के साथ स्वस्थ पशु के शरीर में प्रवेश कर जाता है. इसके अलावा शरीर पर मौजूद घाव के ज़रिये भी इसका संक्रमण होता है. भेड़ों में ऊन कतरने, बधिया करने तथा अन्य शल्य चिकित्सा के कार्यों के दौरान भी संक्रमण हो सकता है मुख्य रूप से इस रोग से गाय, भैंस एवं भेंड़ प्रभावित होती है

लक्षण

यह रोग गो-पशुओं में अधिक होता है। यह रोग प्रायः पिछले पैरों को अधिक प्रभावित करता है इस रोग से आक्रांत पशु का पिछला पुट्ठा सूज जाता है। पशु लंगड़ाने लगता है / पशु चलने में असमर्थ होता है। किसी किसी पशु का अगला पैर भी सूज जाता है। सूजन धीरे-धीरे शरीर के दूसरे भाग पैरों के अतिरिक्त सूजन पीठ, कंधे तथा अन्य मांसपेशियों वाले हिस्से में भी फ़ैल सकती है। सूजन के ऊपर वाली चमडी सूखकर कडी होती जाती है.सूजन में काफी पीड़ा होती है तथा उसे दबाने पर कूड़कूडाहट की आवाज होती है। यदि सूजन की जगह पर चीरा लगाया जाये तो काले रंग का झागदार रक्त निकलता है. शरीर का तापमान 104 से 106 डिग्री रहता है। बाद में सूजन सड़ जाती है। तथा उस स्थान पर सड़ा हुआ घाव हो जाता है। मृत्यु दरः 80-100 प्रतिशत।

रोकथाम एवं बचाव

- वर्षा ऋतु से पूर्व इस रोग का टीका लगवा लेना चाहिए। यह टीका पशु को 6 माह की आयु पर भी लगाया जाता है।
- रोगग्रस्त पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।
- भेडों में ऊन कतरने से तीन माह पूर्व टीकाकरण करवा लेना चाहिये क्योंकि ऊन कतरने के समय घाव होने पर जीवाणु घाव से शरीर में प्रवेश कर जाता है जिससे रोग की संभावना बढ जाती है।
- सूजन को चीरा मारकर खोल देना चाहिये जिससे जीवाणु हवा के सम्पर्क में आने पर अप्रभावित हो जाता है।
- जीवाणु के स्पोर्स को खत्म करने के लिए संक्रमित स्थानों पर पुआल के साथ मिट्टी की ऊपरी परत को जलाने से संक्रमण रोकने में मदद मिल सकती है. मरे हुए पशुओं को जमीन में कम से कम 5 से 6 फुट गहरा गड्ढा खोदकर तथा चूना एवं नमक छिड़क कर गाड़ देना चाहिए.

उपचार

- पशु चिकित्सा के परामर्श से पशु का उपचार शीघ्र करवाना चाहिए क्योंकि इस बीमारी के जीवाणुओं द्वारा हुआ ज़हर शरीर में पूरी तरह फ़ैल जाने से पशु की मृत्यु हो जाती है। इस बीमारी में प्रोकेन पेनिसिलीन काफी प्रभावशाली है।
- बरसात के पहले सभी स्वस्थ पशुओं को इस रोग का निरोधक टिका लगवा देना चाहिए।
- सूजन वाले भाग में चीरा लगाकर 2 प्रतिशत हाइड्रोजन पेरोक्साइड तथा पोटाशियम परमैंगनेट से ड्रेसिंग किया जाना लाभकारी है

टीकाकरण

6 महीने और उससे अधिक उम्र के सभी पशुओं को वर्ष में एक बार वर्षा ऋतु शुरू होने से पहले (मई-जून महीने में) लंगड़ा बुखार का टीकाकरण करवाना चाहिए.

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

उड़द की उन्नत खेती

लोकेन्द्र सिंह गुर्जर
एम.एस.सी. एग्रोनॉमी
आई.टी.एम. यूनिवर्सिटी, ग्वालियर (म.प्र.)

उड़द खरीफ एवं ग्रीष्म मौसम में उगाई जाने वाली लाभकारी दलहनी फसल है। दलहनी फसल होने के कारण इसकी जड़ो में बनने वाली गांठो मे उपस्थित जीवाणु वायुमण्डलीय नत्रजन को भूमि में 40-50 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से स्थिर करके भूमि की उर्वराषक्ति एवं जीवाष्म पदार्थ बढ़ाने में मदद करती है ।

उड़द के दानो में 25 प्रतिषत प्रोटीन व प्रचुर मात्रा में फास्फोरिक अम्ल पाया जाता है जो पौष्टिक अनाज की श्रेणी में आता है उड़द का सबसे ज्यादा उपयोग दाल के रूप में किया जाता है इसके अलावा, पापड़, इडली, डोसा के रूप में वर्तमान समय में काफी उपयोग किया जाता है । फसल की गहाई के बाद भूसा पशुओं के लिये पौष्टिक पषु आहार के काम आता है।

भूमि का चुनाव एवं उसकी तैयारी - उड़द के लिये बलुई दोमट भूमि जिसका पी.एच. मान 7-8 के बीच हो उपयुक्त होती है । जिसमे जल निकास की उचित व्यवस्था हो। रबी फसल कटने के बाद एक जुताई कल्टीवेटर से करके खुला छोड़ देना चाहिये। उसके बाद मानसून आने पर डिस्क हैरो या कल्टीवेटर से आड़ी-खड़ी जुताई कर पाटा चलाकर खेत को समतल एवं भुरभुरा तैयार कर लेना चाहिये ।

उड़द की उन्नत किस्में

किस्म	पकने की अवधि (दिनों में)	पैदावार क्विं/हे.
आई.पी.यू. 2-43	70 से 75	12 से 14
प्रताप उर्द - 1	70 से 75	13 से 15
शेखर -2	75 से 80	12 से 15
शेखर - 3	75 से 80	12 से 15
आई.पी.यू. 94-1	80 से 85	11 से 13
इंदिरा उर्द प्रथम	70 से 75	12 से 15
के.यू. 96-3	70 से 72	12 से 15
पी.यू. 31	75 से 80	12 से 15
जवाहर उड़द-2	65 से 70	12 से 15
पी.डी.यू.-1	70 से 80	13 से 15

बीज दर: उड़द का बीज 20 से 25 कि.ग्रा. प्रति हे. पर्याप्त होता है। जिसमे 3 से 3.5 लाख पौधे प्रति हे. मिलते है।

बुवाई कि विधि: उड़द के विपुल उत्पादन हेतु सीड ड्रिल से कतारों से कतार की दूरी 30 से.मी. व पौधे से पौधो की दूरी 10 से.मी. तथा 4 से.मी. गहराई पर बोना चाहिये।

बुवाई का समय: उड़द की बोनी जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के द्वितीय सप्ताह तक बुवाई करना चाहिये।

बीजों उपचार: फसल को बीज जनित फफूंदनाषक बीमारियों से बचाने हेतु कार्बोक्सीन 37.5 प्रतिषत . थायरम 37.5 प्रतिषत दवा 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिये । उड़द की फसल में पीलामोजेक रोग फैलाने वाली सफेद मक्खी से बचाव के लिये कीटनाषक दवा थायोमिथाक्जाम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दरसे उपचारित करें और अन्त में बीज को राइजोवियम कल्चर एवं पी.एस.बी. कल्चर 10-10 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से छाया में उपचारित कर षीघ्र बुवाई कर देना चाहिये ।

खाद एवं उर्वरक: भूमि की गुणवत्ता एवं उर्वरा शक्ति को सुरक्षित रखने के लिये 10-12 टन प्रति हे. गोबर खाद का प्रयोग तीन वर्ष में एक बार अवष्य करना चाहिये। उर्वरक में नत्रजन 20 किलो, स्फुर 50 कि.ग्रा. एवं पोटाष 20 कि.ग्रा. प्रति हे. उपयोग करें । जिसकी पूर्ति हेतु यूरिया 43 कि.ग्रा., सिंगल सुपर फास्फेट 312 कि.ग्रा. और म्यूरेट ऑफ पोटाष 33 कि.ग्रा. प्रति हे. या फिर डी.ए.पी. 100 कि.ग्रा. और म्यूरेट ऑफ पोटाष 33 कि.ग्रा. प्रति हे. बुवाई के पहले भूमि में मिला देना चाहिये।

सिंचाई: खरीफ की फसल में सिंचाई की आवष्यकता नहीं पड़ती है लेकिन फूल-फली में दाना बनने के समय खेत में नमी न रहने की स्थिति में एक हल्की सिंचाई करना चाहिये।

खरपतवार नियंत्रण: फसल एवं खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा आपस में बुवाई के 15-30 दिनों तक रहती है इस बीच नीदांओ का नियंत्रण करना अति आवष्यक है। नीदां श्रमिको के द्वारा निदाई गुड़ाई या डोरा चलाकर कर सकते है । खड़ी फसल में चैडी पत्ती वाले खरपतरवारों के नियंत्रण हेतु इमाजाथाइपर 10 प्रतिषत 750 मिली. या सकरी एवं चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु इमाजाथाईपर 3.5 प्रतिषत. प्रापाक्विजाफॉप 2.75 प्रतिषत 2 ली. बुवाई के 15-20 दिन बाद 500 ली. पानी में घोल बनाकर फ्लेटफेन नोजल युक्त स्प्रेयरपम्प से छिड़काव करें ।

कीट नियंत्रण

सफेद मक्खी: यह कीट पौधे की पत्तियों, कोमल टहनियों, फूलो, कलियों से रस चूसकर पौधो को कमजोर करता है जिससे फलियां कम बनती है। इसके नियंत्रण के हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिषत, एस.एल. 200-250 मिली या ऐसिटामिप्रिड 150 ग्राम प्रति हे. 500 ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फली वीटिल: इस कीट की इलिल्यां बीज पत्र तक छोटे पौधो की पत्तियों में छेद करते हुये हानि पंहुचाते है जिससे पत्तियों पर छेद ही छेद दिखाई पडते है। इसके नियंत्रण हेतु मिथाइल पैराथिमान या क्लोरपायरीफॉस चूर्ण 20 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से भुरकाव करें ।

रोग नियंत्रण

पीला मोजेक रोग: यह एक वायरस जनित बीमारी है । इस बीमारी को सफेद मक्खी नामक कीट ग्रसित पौधे से रस चूसकर दूसरे स्वस्थ पौधो को ग्रसित कर देता है । इस रोग के प्रभाव से पौधो की पत्तियॉ धीरे-धीरे पीला पड़ना शुरू हो जाती है। फलियों का आकार छोटा और दाना अपरिक्व व सिकुड़ जाते है, इसके नियंत्रण हेतु इमिडॉक्लोप्रिड 600 एफ.एस. या थायोमेथोक्सेम 70 डब्ल्यू. सी. को 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार कर बुवाई करें और खड़ी फसल में इमिडाक्लोप्रिड (200-250 मि.ली.) अथवा ऐसिटामिप्रिड (150 ग्रा.) प्रति हे. की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें ।

सरकोस्पोरा पर्ण दाग रोग: इस रोग से पत्तियों पर भूरे धब्बे बनते है इसके नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम दवा 500 ग्राम प्रति हे. की दर से घोल बनाकर छिड़काव करे।

एथ्रेक्नोंज

इस रोग के कारण भूमि के ऊपर पौधे के सभी भागो पर दिखाई पड़ते है। इस रोग से प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों एवं फलियों पर हल्के भूरे रंग से गहरे भूरे काले रंग के वृत्ताकार धब्बे बनते है रोग के अत्याधिक प्रकोप की दषा में पौधे मुरझाकर मर जाते है। नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम अथवा थियोफिनेट मिथाइल की 500 ग्राम प्रति हे. की दर से 500 ली. पानी में धोल बनाकर छिड़काव करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

स्ट्रॉबेरी की खेती कैसे और किस माह में की जाती है

माया बिसेन (सहायक प्रोफ़ेसर)
उद्यानिकी विभाग डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम विश्वविद्यालय इंदौर (म.प्र.)

प्रियांश राहंगडाले
(सहायक प्रोफ़ेसर), सेज यूनिवर्सिटी इंदौर

प्रशांत श्रीवास्तव
(सहायक प्रोफ़ेसर), सेज यूनिवर्सिटी इंदौर

भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती करने का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है क्योकि अन्य परम्परागत फसलों के मुक़ाबले इस फसल को अधिक मुनाफे वाली खेतियों में शामिल किया गया है. स्ट्रॉबेरी की खेती पॉलीहाउस, हाइड्रोपॉनिक्स और सामन्य तरीके से विभिन्न प्रकार की भूमि तथा जलवायु में की जा सकती है. आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस संसार में स्ट्रॉबेरी की 600 किस्में मौजूद है. ये सभी अपने स्वाद रंग रूप में एक दूसरे से भिन्न होती है. लेकिन भारत में कुछ ही प्रजाति की स्ट्रॉबेरी उगाई जाती है.

स्ट्रॉबेरी बहुत ही नरम फल होता है जोकि स्वाद में हल्का खट्टा और हल्का मीठा होता है. रंग चटक लाल होने के साथ इसका आकर हार्ट के समान होता है. स्ट्रॉबेरी मात्र एक ऐसा फल है जिसके बीज बाहर की और होते है. स्ट्रॉबेरी में अपनी एक अलग तरह की खुशबू के लिए पहचानी जाती है. स्ट्रॉबेरी एंटीऑक्सिडेंट, विटामिन ष्ट एवं विटामिन, और च, प्रोटीन और खनिजों का एक अच्छा प्राकृतिक स्रोतों है. जो रूप निखारने और चेहरे में कील मुँहासे, आँखो की रौशनी चमक के साथ दाँतों की चमक बढ़ाने का काम आते है. इनके आलवा इसमें केल्सियम, मैग्नीशियम, फोलिक, एसिड, फास्फोरस,पोटेशियम पाया जाता है. स्ट्रॉबेरी की खेती कैसे करें, इसके करने में कितनी लागत आ सकती है, इससे कितना मुनाफा कमाया जा सकता है. यानि स्ट्रॉबेरी की खेती से जुड़ी सभी जानकारियां इस आर्टिकल के द्वारा देंगे. ताकि आपको इसकी खेती से करते समय कोई कन्फ्यूजन ना हो. तो आइये पढ़ते हैं स्ट्रॉबेरी क्या है और इसकी खेती कैसे करें

स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए ज़रूरी जलवायु: स्ट्रॉबेरी ठंडी जलवायु वाली फसल है. इसकी खेती मैदानी क्षेत्र में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है. इसके लिए 20 से 30 डिग्री तापमान उपयुक्त रहता है. तापमान बढ़ने पर स्ट्रॉबेरी पौधों में नुकसान होता है और उपज प्रभावित होती है.

स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए उपयोगी मिट्टी: स्ट्रॉबेरी की खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है. लेकिन, बलुई दोमट मिट्टी में स्ट्रॉबेरी का उत्पादन अधिक होता है. इसकी खेती के लिए 5.5 से 6.5 पीएच मान की मिटटी होनी चाहिए. मिट्टी की जांच आप अपने नज़दीकी कृषि विज्ञान केंद्र अथवा कृषि विभाग से ज़रूर करा लें.

कैसे करें स्ट्रॉबेरी के खेत की तैयारी

- खेती का सही समय और तैयारी स्ट्रॉबेरी की रोपाई सितंबर से नवंबर के मध्य की जाती है.

- सितंबर के पहले सप्ताह में खेत की तीन बार अच्छी जुताई कर लें ■ गोबर की खाद अच्छे से बिखेर कर मिट्टी में मिला दें ■ पोटाश और फास्फोरस भी मिट्टी परीक्षण के आधार पर खेत तैयार करते समय मिला दें.

बेड तैयार करना

- बेड की चौड़ाई 2 फिट रखे और बेड से बेड की दूरी डेढ़ फिट रखे ■ ड्रेप एरिगेशन की पाइपलाइन बिछा दे.
- पौधे लगाने के लिए प्लास्टिक मल्चिंग में 20 से 30 सेमी की दूरी पर छेद करें ■ स्ट्रॉबेरी के पौधे लगाने का सही समय 10 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक लगा देना आवश्यक है ■ यदि तापमान ज्यादा हो तो पौधे सितम्बर लास्ट तक लगा ले.

स्ट्रॉबेरी की प्रजातियां: कृषि विशेज्ञों के अनुसार पूरी दुनिया में स्ट्रॉबेरी की अलग-अलग 600 प्रजातियाँ पाई जाती है लेकिन भारत में व्यावसायिक दृष्टि से इसकी खेती करने वाले किसान मुख्य रूप से विंटर डाउन, विंटर स्टार, ओफ्रा, कमारोसा, चांडलर, स्वीट चार्ली, ब्लैक मोर, एलिस्ता, सिसकेफ़, फेयर फाक्स आदि किस्मों की खेती की करते है.

स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए खाद् और उर्वरक: स्ट्रॉबेरी का पौधा काफी नाजुक होता है इसलिए इसको समय समय खाद् और उर्वरक देना जरूरी होता है. लेकिन खाद् और उर्वरक उपयोग मिट्टी की जाँच के अनुसार देना चाहिए. सामन्य मिटटी के लिए 10 से 15 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति एकड़ की दर से भूमि तैयारी के समय बिखेर कर मिट्टी में मिला देनी चाहिए. खेत तैयार करते समय 100 कि.ग्रा. फास्फोरस (पी2ओ5) व 60 कि.ग्रा. पोटाश (के2ओ) प्रति एकड़ डालना चाहिए. रोपाई के उपरांत टपका सिंचाई विधि द्वारा निम्नलिखित घुलनशील उर्वरकों को दिया जाना चाहिए

घुलनशील उर्वरकों की मात्रा ग्राम/एकड़/दिन

समय	नाइट्रोजन	फास्फोरस (पी2ओ5)	पोटाश (के2ओ)
10 अक्टूबर से 20 नवम्बर	250	200	400
21 नवंबर से 20 दिसम्बर	600	200	600
21 दिसंबर से 20 जनवरी	250	160	600
21 जनवरी से 28 फरवरी	700	200	900

स्ट्रॉबेरी की सिंचाई

- पौधे लगाने के तुरंत बाद ड्रिप या स्प्रिकलर से सिंचाई करें ■ समय समय पर नमी को ध्यान में रखकर सिंचाई करते रहना चाहिए ■ स्ट्रॉबेरी में फल आने से पहले सूक्ष्म फव्वारे से सिंचाई कर सकते. ■ फल आने के बाद टपक विधि से ही सिंचाई करे ताकि फल खराब न हो.

स्ट्रॉबेरी के पौधों को सर्दी से बचाएं

स्ट्रॉबेरी की खेती दोनों तरीके पोली हाउस और बिना पोली हाउस के भी की जा सकती है. अगर पोली हाउस पहले से बना हुआ है तो स्ट्रॉबेरी पौधों को सर्दी यानि पाला लगने का संयोग बहुत कम है. अगर आपके पास पोली हाउस नहीं है तो चिंता की कोई बात नहीं है. स्ट्रॉबेरी फसल को पाले से बचाने के लिए प्लास्टिक लो टनल का उपयोग करें. यह प्लास्टिक पारदर्शी होनी चाहिए और 100 से 200 माइक्रोन वाली होनी चाहिए.

स्ट्रॉबेरी में लगने वाले कीट और रोग: कीटों में पतंगे, मक्खियाँ चेफर, स्ट्राबेरी जड़ विविल्स झरबेरी एक प्रकार का कीड़ा, रस भृग, स्ट्रॉबेरी मुकट कीट कण जैसे कीट इसको नुकसान पंहुचा सकते है.

बचाव-इसके लिए नीम की खल पौधों की जड़ों में डालें: इसके अलावा पत्तों पर पत्ती स्पाट, ख़स्ता फफूंदी, पत्ता ब्लाइट का प्रकोप हो सकता है. इसके लिए समय समय पर पोधों के रोगों की पहचान कर वैज्ञानिकों की सलाह में कीटनाशक दवाइयों का स्प्रे करे.

स्ट्रॉबेरी की तुड़वाई

- जब स्ट्रॉबेरी का रंग सतर प्रतिशत असली हो जाये तो तोड़ लेना चाहिए ■ फल को मार्किट दूरी के अनुसार तोडना चाहिए ■ स्ट्रॉबेरी की तुड़वाई अलग अलग दिनों मैं करनी चाहिए ■ स्ट्रॉबेरी के फल को नहीं पकड़ना चाहिए ■ स्ट्रॉबेरी के फल की दण्डी कर तोडना चाहिए

स्ट्रॉबेरी की पैकिंग

- स्ट्रॉबेरी की पैकिंग प्लास्टिक की प्लेटों में करनी चाहिए
- हवादार जगह पर रखना चाहिए ■ जहां तापमान पांच डिग्री हो ■ एक दिन के बाद तापमान जीरो डिग्री होना चाहिए.

स्ट्रॉबेरी की फसल में पैदावार

स्ट्रॉबेरी की फसल से अच्छी पैदावार कई बातों पर निर्भर करती है. जैसे उगाई जाने वाली किस्म, जलवायु, मृदा का स्तर, पौधों की संख्या, फसल प्रबंधन इत्यादि. यदि फसल का सही तरीके से प्रबंधन और देखभाल की जाये तो एक एकड़ क्षेत्रफल में 80 से 100 क्विं. फलों का उत्पादन लिया जा सकता है. स्ट्रॉबेरी के एक पौधे से 800-900 ग्राम फल प्राप्त कर सकते हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

किलनियों का पशुओं पर प्रभाव एवं नियंत्रण

डॉ. मुकेश शाक्य
डॉ. ममता सिंह
डॉ. विवेक अग्रवाल
डॉ. ए.के. जयराव
डॉ. गया प्रसाद जाटव

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय महू (म.प्र.)

- किलनियों के पशुओं को काटने से उनकी त्वचा और खाल खराब हो जाती है जिससे किसान को आर्थिक नुकसान होता है।
- किलनी के पशुओं को काटने के समय लार के स्राव के कारण जलन होती है जोकि आगे चलकर डर्मेटोसिस का कारण बनते हैं।
- ज्यादा मात्रा मे संक्रमन होने से पशुओं मेन झुंझलाहट होती है जिसे किलनी चिन्ता कहते हैं जिसके कारण पशु ठीक से भोजन नहीं करते और उत्पादन कम हो जाता है।
- किलनियाँ बहुत अधिक मात्रा मे खून चूसती हैं जिससे पशुओं मे रक्ताल्पताः हो जाती है एक मादा किलनी 0.5-2.0 मिली खून तक चूस सकती है
- किलनियों के काटने से पशुओं मे घाव हो जाते हैं जिससे ये मक्खियों को आकर्षित करते हैं और त्वचीय मायियासिस और माध्यमिक जीवाणु संक्रमण के लिए भी पूर्वसूचक होते है।
- मादा किलनी खून चूसते समय लार के माध्यम से एक न्यूरोटॉक्सिन को पशुओं मे इंजेक्ट करती है जिससे कि किलनी पक्षाघात नामक बीमारी होने का खतरा हो जाता है यदि किलनियों को नहीं हटाया जाता है तो श्वसन पक्षाघात के कारण मृत्यु हो सकती है लगभग 40 या ऐसी प्रजातियां हैं जो टिक पक्षाघात का कारण बन सकती हैं, जिनमें से प्रत्येक में एक अद्वितीय विष हो सकता है उदाहरण के लिए, डर्मासेंटर एंडर्सोनी और रिपिसेफालस इवर्ट्स आदि।

टिक टॉक्सिकोसिस

- कुछ किलनी की प्रजातियां हाइलोमा ट्रंकैटम, ऑर्निथोडोरोस लाहोरेंसिस, ओ. सविग्नी और अर्गास पर्सिकस जैसे विषाक्त पदार्थों का उत्पादन करती हैं। प्रभावित पशुओं में नम एक्जिमा और श्लेष्मा झिल्ली के हाइपरमिया विकसित होते हैं।
- किलनियाँ कई रोग पैदा करने वाले एजेंटों को प्रसारित करते हैं- जैसे कि जीवाणु- तुलारेमिया, ब्रुसेलोसिस और एंथ्रेक्स, वायरल- इक्वाइन इंसेफेलाइटिस, रिफ्ट वैली फीवर, नैरोबी डिजीज, क्यासानूर फॉरेस्ट डिजीज, लूपिंग इल वायरस, समर इंसेफेलाइटिस वायरस, अफ्रीकन स्वाइन फीवर, स्पाइरोचैट्स- लाइम रोग, बोरेलियोसिस, रिकेट्सियल-एनाप्लाज्मा, एर्लिचिया, बोरेलिया एसपीपी। रॉकी माउंटेन स्पॉटेड फीवर, क्यू-फीवर, इजिपियानेला, टिक टाइफस जीव, प्रोटोजोअलः बेबेसिया, थिलेरिया, हेपेटोजून कैनिस, ट्रिपैनोसोमा इत्यादि ।
- किलनियों के काटने से जो घाव होते हैं उनमें बैक्टीरिया के प्रवेश होने कि संभावना बढ़ जाती है, विशेष रूप से स्टेफिलोकोसी, परिसंचरण में, जिससे बैक्टीरिया और सेप्टीसीमिया का खतरा होता है।

छायाचित्र- किलनी

किलनियों का नियंत्रण कैसे करें

- टिक्स मुख्य रूप से शरीर के नीचे, पैर, पूंछ, कान, पेरिनियल क्षेत्र आदि शरीर के विभिन्न हिस्सों को संक्रमित करते हैं।
- किलनियों के नियंत्रण का सामान्य और व्यावहारिक तरीका है कीटनाशकों झकुटकीनाशक का सही से उपयोग करना। इस विधि से किलनियों का नियंत्रण आसान है क्योंकि किलनी के सभी चरण एक मेजबान पर पाए जाते हैं।
- दो या तीन होस्ट किलनियों मे नियंत्रण के लिए, पिंजरों, कलमों, भवनों और परिसर में कीटनाशक का छिड़काव करना चाहिए जिससे किलनी कि समस्त अवस्थाएँ नष्ट हो जाएँ।
- किलनियों के नियंत्रण के अन्य तरीकों में, चरागाहों को जला सकते हैं किलनी ग्रसित चरवाहों एवं घासो को चराने से बचना चाहिए।

किलनियों का टीका

बूफिलस माइक्रोप्लस के खिलाफ तीन टीकों का उत्पादन किया गया है टिकगार्ड-ऑस्ट्रेलिया, गावाक-क्यूबा, टिकगार्ड प्लस-ऑस्ट्रेलिया पर यह टीका हमारे देश मे पाये जाने वाली किलनियों पर प्रभावी नहीं है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

पशुओं की देशी नस्लों का चयनात्मक प्रजनन द्वारा सरंक्षण एवं विकास

डॉ. असद खान, डॉ. मोहन सिंह
पशु आनुवंशिकी एवं अभिजनन विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारत विश्व के 12 विशाल जैव विविधता वाले देशों में से एक है और पशुओं की विभिन्न नस्लों के विशाल एवं विविध आनुवंशिक संसाधनों का एक निवास स्थान है। भारत में दुग्ध उत्पादक, भार वाहक और दोहरे उद्देश्य वाली पशु नस्लों को मुख्यतः उनके दुग्ध उत्पादन अथवा कृषि कार्य में उनकी उपयोगिता के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। भारत की अलग-अलग कृषि-जलवायु परिस्थितियों और उत्पादन प्रणालियों में पाले जाने वाले पशु आबादी के बाह्य शारीरिक लक्षणों, उपयोगिता के तरीकों और अनुकूलन क्षमता में एक विशाल विविधता है। पशुओं की यह विभिन्न प्रजातियां एवं नस्लें, भारत की विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल हैं।

पशुओं की विभिन्न देशी नस्लें, दीर्घकालिक विकासवादी प्रक्रियाओं का परिणाम हैं, उन्होंने स्वयं को अपने भौगोलिक आवास में उपलब्ध खाद्य, चारा और वातावरणीय तापमान के के साथ कठोर जलवायु परिस्थितियों हेतु अनुकूलित किया है, वे कम गुणवत्ता वाले खाद्य और चारे को उच्च गुणवत्ता वाले पशु उत्पादों में कुशलता से परिवर्तित करने में सक्षम होने के अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय रोगों का सामना करने के लिए पूर्णतः अनुकूलित हैं। वे कृषि का अभिन्न अंग हैं। यह नस्लें अब अनियोजित प्रजनन और विदेशी जननद्रव्य से संकरण के कारण तेजी से आनुवंशिक गिरावट एवं विलुप्त होने के अधीन हैं। परिणामस्वरूप, कुछ देशी नस्लें लुप्तप्राय हो रही हैं और अच्छे देशी जननद्रव्य का क्षय हो रहा है, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता और अधिक तापमान सहन करने का अद्वितीय गुण रखता हैं। दिन प्रतिदिन बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किसी भी प्रजाति के दीर्घकालिक अस्तित्व के लिए आनुवंशिक विविधता का संरक्षण आवश्यक है। किसी नस्ल को संरक्षण की आवश्यकता तब होती है जब उसकी आबादी विलुप्त होने की आबादी के स्तर के निकट तक पहुंच जाती है। परिरक्षण, आनुवंशिक परिवर्तनशीलता को निरंतर रखता है, जबकि संरक्षण में परिरक्षण के साथ साथ आनुवंशिक क्षमता के उन्नयन (सुधार) एवं भविष्य के उपयोग के लिए नस्ल के समुचित प्रबंधन पर भी जोर दिया जाता है।

देशी नस्लों का महत्व: पशुओं की देशी नस्लों में विभिन्न अनूठी विशेषताएं होती हैं, जो उन्हें उष्णकटिबंधीय जलवायु के अनुकूल बनाती हैं। गौ एवं भैंस वंशीय पशुओं में अद्वितीय आनुवंशिक भिन्नता की उपस्थिति के कारण विदेशी गाय की तुलना में देशी गाय अधिक तापसहिष्णु हैं, भारत के केरल राज्य में पाए जाने वाली बौनी गाय जैसे वेचुर और कासरगोड अपने जीन प्ररूप में एक 'थर्मामीटर जीन' रखते हैं जो उन्हें उच्च तापमान को बेहतर ढंग से सहन करने की अनुमति देता है एवं इन बौनी नस्लों को थनैला रोग होने की आशंका कम होती है। उत्तर प्रदेश के बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में खेरीगढ़ नस्ल की उपयुक्तता ने पशुपालकों को खैरीगढ़ पशुओं की कम दूध उत्पादकता के बावजूद इस नस्ल के पशुओं के पालन हेतु बाध्य किया।

A1-कैसीन जीन विदेशी नस्लों के गौ वंशीय पशुओं में अधिक पाया जाता है, जबकि भारतीय ज़ेबु पशुओं की नस्लों में A2 एलील उच्चतम आवृत्ति के साथ पाया जाता है और इससे हृदय संवहन तंत्र संबंधी रोग व टाइप 1 मधुमेह जैसे रोगों से ग्रस्त होने की सम्भावना भी कम रहती है। भारतीय मूल के पशुओं में से अधिक के पास वांछनीय जीनोटाइप A2A2 हैं एवं इन्हें A2 एलील के लिए वाहक

माना जाता है। इसके विपरीत, विदेशी पशुओं में विश्व भर में A2 एलील कम आवृत्ति में है। उपरोक्त सभी स्थूल एवं सूक्ष्म उदाहरणों से भारतीय जलवायवीय परिस्थितियों में देशी नस्लों का महत्व स्पष्ट समझा जा सकता है।

पशु आनुवंशिक संसाधनों के लिए खतरा: देश की बढ़ती हुई दूध की मांग को पूरा करने के उद्देश्य से बेहतर आनुवंशिक योग्यता के विदेशी जननद्रव्य से देशी पशुओं के संकरण द्वारा पशुओं की नस्लों की उत्पादकता में सुधार करने की दिशा में प्रयास किए गए। इस तकनीक के अंधाधुंध उपयोग ने समय के साथ बहुत से नकारात्मक प्रभाव दिए। संकरण के द्वारा दुग्ध उत्पादन में वृद्धि कर अधिक आर्थिक लाभ पाने के उद्देश्य से पशुओं की वह देशी नस्लें जिन्हें हमारे पूर्वजों द्वारा सदियों की घरेलूकरण द्वारा विकसित किया था, उनका अस्तित्व एक अकल्पनीय संकट में आ गया है। पशुओं की भारतीय सुपरिभाषित एवं सुवर्णित नस्लों पर विदेशी जननद्रव्य का गैर-व्यवस्थित और अवैध उपयोग देशी नस्लों के पशुओं की आबादी में गिरावट का कारण बना है। अब, स्थानीय स्तर पर वर्तमान प्रजनन नीति के साथ पशुओं के विदेशी वंशानुक्रम का पुनर्मूल्यांकन करना अत्यंत कठिन हो गया है। कम संसाधनों के साथ छोटे किसान द्वारा नस्ल सुधार के लिए एक सांड रखना संभव नहीं है और इसलिए वह गाँव के अंदर अथवा गाँव के आसपास उपलब्ध सांड पर निर्भर रहने के लिए विवश होते है, जो कि एक अच्छी नस्ल अथवा आनुवंशिक दृष्टि से योग्य हो यह आवश्यक नहीं। परिणामस्वरूप आनुवंशिक योग्यता और पशुओं की भावी संतति के प्रदर्शन में गिरावट आई। पशुओं की विभिन्न नस्लों ने स्वामियों के विभिन्न उद्देश्यों जैसे दूध और पशुओं से कृषि सम्बन्धी कार्य की पूर्ति की किन्तु जिन नस्लों से उनका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, उनकी उपेक्षा की गयी। वेचुर और पुंगनूर जैसी पशुओं की नस्लें गंभीर स्थिति में हैं क्योंकि उन्हें उचित समय पर मान्यता नहीं मिली। आर्थिक रूप से उपयोगी नस्ल स्वचालित रूप से संरक्षित है। खराब प्रदर्शन और किसानों के आर्थिक लाभ में गिरावट के कारण मेवाती, केनकथा, खेरीगढ़ और बाकुर नस्लों ने अपनी उपयोगिता खो दी है। भौगौलिक परिस्थितियों में बदलाव के पश्चात् कुछ देशी नस्लों जैसे साहीवाल, लाल सिंधी और थारपारकर ने अपने प्राकृतिक आवास को खो दिया है क्योंकि उनके प्रजनन पथ और प्राकृतिक आवास पाकिस्तान में स्थानांरित हो गए। अंत में अपर्याप्त खाद्य एवं चारा तथा स्वास्थ्य देखभाल के आभाव के बावजूद बढ़ती हुई पशु आबादी भी आनुवंशिक गिरावट का एक मुख्य कारण है

चयनात्मक प्रजनन: असंबंधित व्यष्टियों के संसर्ग अथवा संगम को बहिः प्रजनन या आनुवांशिक अनपव्यूही संगम कहा जाता है जो अन्तः प्रजनन के विपरीत या पूरक होता है। बहिः प्रजनन कई तरीकों से किया जा सकता है जैसे कि एक ही नस्ल के असंबंधित व्यष्टियों का संगम या अलग-अलग स्थापित नस्लों के व्यष्टियों का संगम। यह प्रजनकों द्वारा प्रचलित सबसे आम अभिजनन प्रणाली है और पशुधन नस्लों के अधिकांश परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी है। किसी वंश के अंतर्गत चयनित नरों के माध्यम से बहिः संकरण को ही चयनात्मक प्रजनन कहते हैं। एक ही वंश की मादाओं पर नरों के चयन के पश्चात् अभिजनन के लिए उनके उपयोग के परिणामस्वरुप निकट सम्बन्धियों के एक वंश की स्थापना होती है एवं इन नरों के प्रतिस्थापक भी एक ही वंश से आते हैं। चयन के साथ किया गया बहिः संकरण अर्थात चयनित प्रजनन पशुधन नस्लों आनुवंशिक परिवर्तन और सुधार के लिए सक्षम होता है।

दुधारू नस्लों और दोहरे उद्देश्य वाली नस्लों जैसे हरियाना, ओंगोल, कंकरेज को आनुवंशिक रूप से संतति परीक्षण कार्यक्रम के माध्यम से चयनित प्रजनन द्वारा सुधारने की आवश्यकता है। चयनात्मक प्रजनन से संगठित प्रक्षेत्र के वंशों में प्रति वर्ष लगभग 1त्न आनुवंशिक लाभ प्राप्त होने की सम्भावना है जबकि किसानों के पास उपलब्ध असंगठित प्रक्षेत्र के वंशों में आनुवंशिक सुधार लगभग 10% होने की उम्मीद है। मवेशियों की देशी नस्लों को उनके प्रजनन पथ में चयनित प्रजनन द्वारा सुधारने की आवश्यकता है। यह कार्यक्रम प्रत्येक पशु नस्लों के संगठित प्रक्षेत्र के वंशों के 2-3 वंशों, गौशालाओं के साथ-साथ क्षेत्रीय परिस्थितियों में किसानों के पास उपलब्ध असंगठित प्रक्षेत्र के वंशों को संबद्ध करके वंशों के संतति परीक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत और अधिक प्रभावी ढंग से क्रियान्वन किया जा सकता है।

निस्संदेह, भारत की कृषि संबंधी परिस्थितियों के अनुसार, स्वदेशी नस्लें अपनी उत्पादन प्रणाली हेतु सबसे उपयुक्त हैं। इन देशी नस्लों के समग्र आर्थिक महत्व को उजागर किया जाना बाकी है। गौशालाओं, गैर सरकारी संगठनों, समुदायों और पशु प्रजनकों और संरक्षण कार्यक्रमों में अन्य संबंधित हितधारकों को प्रत्याशित कर, उन स्वदेशी पशु नस्लों की अद्यतन सूची का निर्माण किया जाना चाहिए जो संकटग्रस्त अथवा विलुप्तप्राय हैं एवं जिन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। विशेष रूप से चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से भागीदारी दृष्टिकोण अपनाकर उन नस्लों को उनके प्राकृतिक आवासों में संरक्षित किया जाना चाहिए। भविष्य में, चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से उत्पादकता में वृद्धि से देशी नस्लों की आबादी के घटते प्रक्रम और उनके वित्तीय मूल्य को बढ़ाने में अवश्य ही अपार सहायता मिलेगी।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

पशुओं में घाव भरने की प्रक्रिया एवं इसे प्रभावित करने वाले कारक

डॉ. अक्षय कुमार साहू
डॉ. यामिनी वर्मा
डॉ. मधु स्वामी, डॉ. अमिता दुबे
व्याधि विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा व पशुपालन महाविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

त्वचा, बलगम झिल्ली या ऊतक की सतह की निरंतरता में टूट-फूट होना घाव या चोट कहलाता है। घाव के भी विभिन्न प्रकार हो सकते है जैसे छिद्रण घाव **(Perforated wound)**, छिन्न घाव **(Incised wound)**, चिराफटा हुआ घाव **(Lacerated wound)** जलने से बना घाव **(Burn wound)**, छिद्रित घाव **Puncture wound)**, भीतरी चोट **(Contusion)** खरोंच **(Abrasion)**, बंदूक की गोली लगने से बना घाव **(Gun Shot wound)** आदि। अलग-अलग प्रकार के घावों का कारण भी भिन्न-भिन्न हो सकता है परंतु पशुओं का झगड़ना, सींग मारना, दॉत गढ़ना, श्वान या अन्य पशु का काटना, वाहन से दुर्घटना होना, कॅटीले तार का गढ़ना, आंतरिक सतह का घर्षण, लाठी की चोट, चाकू से हमला आदि प्रमुख कारण होते है। घाव के भरने की प्रक्रिया एक जटिल परंतु व्यवस्थित प्रक्रिया होती है। यह प्रक्रिया घाव के आधार पर दो प्रकार की होती है।

पहले इरादे से घाव का भरना/प्राथमिक संघ

घाव के भरने की यह प्रक्रिया मुख्यतः उन बंद असंक्रमित घावों में होती है जो कि चिकित्सक द्वारा शल्य क्रिया के दौरान बनाये जाते है, जो कि संक्रमण रहित होते है एवं जिन घावों में अल्प मात्रा में रक्त का स्त्राव व ऊतकों का नुकसान भी बहुत ही कम मात्रा में होता है। घाव बनने के तुरंत बाद रक्त का स्त्राव होना व रक्त के थक्का बनने की प्रक्रिया होती है तत्पश्चात 24 घंटे के दौरान सर्वप्रथम न्यूट्रोफिल का घाव की सतह पर प्रसार होता है। 24-48 घंटे के दौरान घाव पर बेसल कोशिका का प्रसार एवं उपकला के बंद होने क्रियाऐं होती हैं। घाव की सतह की पपड़ी के नीचे मध्य रेखा में निरंतर कोशिकाऐं जमा होने लगती है व एक पतली लेकिन निरंतर उपकला परत का निर्माण होने लगता है। 72 घंटे के दौरान मैक्रोफेज कोशिका, न्यूट्रोफिल की जगह ले लेती है, व सतह पर दानेदार ऊतक दिखाई देने लगते है। 5 दिन के दौरान दानेदार ऊतक की अधिकता एवं नई वाहिकाजनन शुरू होने लगता है। साथ ही साथ कोलेजन फाईबर का भी जमाव शुरू हो जाता है। दूसरे सप्ताह के दौरान उपकला प्रसार अधिकतम व फाइब्रोब्लास्ट का निरंतर प्रसार, कोलेजन संचय के साथ एक निशान पैदा करता है। जिसे बाद में वयस्क प्रकार के कोलेजन द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है जो कि घाव की ताकत के लिए जिम्मेदार होता है। इसी के साथ नई रक्त

वाहिकाऐं अदृश्य हो जाती है। 1 से 2 माह के अंत तक घाव पर सामान्य इपीडर्मिस सतह का निर्माण हो जाता है।

दूसरे इरादे से घाव का भरना/द्वितीयक संघ

घाव भरने की यह प्रक्रिया सामान्यतः उन घावों में होती है जो कि आकार में बड़े होते है एवं जिसने कोशिकाओं व ऊतकों की हानि अधिक व्यापक होती है जैसे छालों वाले घाव, फोड़े आदि। बड़े घावों में रक्त का थक्का एवं निर्जीव परिगलित मलबा व रिसाव अधिक मात्रा में होता है जिसे तीव्र प्रक्रिया द्वारा हटाया जाता है। तत्पश्चात बहुत अधिक मात्रा में दानेदान ऊतकों का निर्माण होता है व इनका घाव की सतह पर जमाव होता है जिससे घाव का रिक्त स्थान दानेदान ऊतकों द्वारा भरा जाता है। घाव की सतह पर उपकला का भी पुनः निर्माण व जमाव हो जाता है। अधिक मात्रा में दानेदान ऊतकों के घाव पर जमाव के कारण घाव पर बड़ा निशान बन जाता है। घाव में संकुचन की क्रिया विशेष रूप से इस प्रक्रिया में होती है जो कि इस प्रक्रिया को प्राथमिक संघ प्रक्रिया से भिन्न बनाती है। संकुचन के कारण घाव के स्थान का आकार अपने पूर्व सामान्य आकार से 5 से 10 प्रतिशत तक छोटा व संकुचित हो जाता है जो कि मुख्यतः मायोफाइब्रोब्लास्ट की उपस्थिति के कारण होता है।

घाव भरने की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

सामान्यतः छोटे घाव के भरने में 2 से 3 सप्ताह का समय लगता है एवं बड़े घाव के भरने में इससे भी अधिक समय लग सकता है। इस दौरान पशुओं के घाव की विशेष देखभाल की जरूरत होती है। घाव को संक्रमण, लगड़, धूल, मिट्टी, मच्छर, मक्खियों व कीटों से बचाने की जरूरत होती है। द्वितीयक संक्रमण होने पर घाव से अधिक बदबू, मवाद व खून आने लगता है। खुले घाव पर मक्खियों के बैठने एवं अंडे देने से, घाव पर मैगट पड़ जाते है जो घाव को ओर अधिक खराब कर देते है व घाव के भरने की प्रक्रिया को बुरी तरह प्रभावित करते है। पशु द्वारा स्वंय के घाव को चॉटने, काटने, एवं खरोचनें से भी घाव भरने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। घाव के भरने में पोषण का विशेष महत्व है। पशु के चारे के प्रोटीन की उचित मात्रा होना आवश्यक होता है जिससे सही तरह से घाव भर सके व घाव को ताकत मिल सके। सल्फर सहित वाले अमीनो अम्ल जैसे सीसटीन व मीथोनिन की विशेष भूमिका है। विटामिन की भी प्रचुर मात्रा घाव भरने में सहायक है जैसे विटामिन-सी की अल्पता से कोलेजन का निर्माण अवरूद्ध होता है जिसके फलस्वरूप घाव भरने में देरी होती है। खनिज लवण जैसे जिंक की विशेष भूमिका भी घाव के भरने में होती है। अतः पशु के चारे में उचित मात्रा में प्रोटीन, विटामिन, खनिज-लवण, व अन्य पोषक तत्वों का होना आवश्यक होता है जिससे घाव भरने की प्रक्रिया सुचारू दंग से हो सके। अधिक उम्र में पशुओं में घाव भरने की प्रक्रिया देरी से होती है क्योंकि इनमें रक्त का संचार प्रभावित होता है। घावों का आकार, संख्या एवं घावों की शरीर पर स्थिति भी घाव भरने की प्रक्रियॉ को प्रभावित करते है।

घाव होने पर प्राथमिक चिकित्सा

घाव होने पर सर्वप्रथम रक्त के स्त्राव को रोकना महत्वपूर्ण होता है इस हेतु फिटकरी का पीसा हुआ पाउडर या टिन्चर बेन्जोइन का प्रयोग घाव पर किया जा सकता है। इसके अलावा घाव पर साफ पट्टी कसकर बॉध देनी चाहिए जिससे रक्त का स्त्राव रूक सकें। घाव को संक्रमण से बचाने के लिए प्रतिदिन घाव को पोविडिन आयोडिन या लाल दवा का गुनगुने पानी के बने घोल से धोना चाहिए व घाव पर एंटीसेप्टिक क्रीम या पोविडिन आयोडिन क्रीम या लोरेक्जिन क्रीम लगाई जानी चाहिए। श्वान अथवा अन्य पशुओं के कॉटने से होने वाले घावों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, ऐसे घाव को तत्काल हाथों में दस्ताने पहनकर साबुन से लगड़-लगड़ कर धोना चाहिए, और नजदीकी पशुचिकित्सालय या पशुचिकित्सक को सूचित करना चाहिए। ऐसे घावों के माध्यम से ही रेबीज जैसी लाईलाज बीमारी पशुओं में हो जाती है। संक्रमित कीलें, कॉटे, जंग लगी लोहे की रॉड लगने से पशुओं में टिटनेस जैसे बीमारी भी हो सकती है। अतः पशुओं में घाव होने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए एवं उसका उचित ईलाज पशुचिकित्सक द्वारा कराया जाना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

बलिया में विश्वविद्यालय की पहल को राज्यपाल ने सराहा, दी नई जिम्मेदारी

रबीन्द्रनाथ चौबे, बलिया

बलिया। जननायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय का तीसरा दीक्षांत समारोह कलेक्ट्रेट परिसर स्थित बहुद्देश्यीय सभागार में आयोजित हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता कुलाधिपति एवं राज्यपाल आनंदी बेन पटेल वर्चुअल माध्यम से जुड़कर की। समारोह का शुभारंभ डॉ.राजेन्द्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय पूसा, समस्तीपुर के कुलपति प्रो. रमेश चंद श्रीवास्तव व चंद्रशेखर विवि. की कुलपति प्रो. कल्पलता पाण्डेय ने संयुक्त रूप से दीप प्रज्ज्वलित कर किया। इस दौरान 33 मेधावियों को गोल्डमेडल तथा 320 छात्र-छात्राओं को उपाधि वितरित की गई। प्रदेश की राज्यपाल व विश्वविद्यालय की कुलाधिपति आनंदीबेन पटेल ने जनपद के सेनानियों व साहित्यकारों को याद कर किया। उन्होंने चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय द्वारा 125 से ज्यादा गांव को गोद लिए जाने की सराहना करते हुए कहा कि हम लोगों ने कई नए कार्यक्रम यूनिवर्सिटी के माध्यम से शुरू किए हैं। इसमें टीबी के बच्चों को गोद लेना भी शामिल है। इसलिए यह लक्ष्य बनाएं कि इन 125 गावों में प्रसव अस्पताल हो तथा एक भी शिशु की मौत नहीं होने पाए। आंगनबाड़ी में अगर कोई भी कुपोषित बच्चा हो तो ग्राम प्रधान को सूचित करते हुए गोद लेने के लिए प्रेरित किया जाए, ताकि बच्चे को स्वस्थ बनाया जा सके। केंद्र व राज्य सरकार की योजनाओं का लाभ इन 125 गांव में सभी पात्रों को मिल रहा है या नहीं, यह भी देखें। लाभ दिलाने का प्रयास भी करें। कुलाधिपति ने कहा कि बच्चों की पढ़ाई से लेकर कई अन्य बहुपयोगी कार्यों में प्रकाश का महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें सोलर पैनल के प्रयोग को भी बढ़ावा देने का प्रयास किया जाए। साथ ही उन्होंने आगामी गणतंत्र दिवस की बधाई दी। अंत में उन्होंने सभी मेधावी छात्रों को बधाई देते हुए उज्जवल भविष्य की कामना की। कुलाधिपति ने छात्र-छात्राओं को अपना संदेश देते हुए कहा कि जीवन में शिक्षा का कभी अंत नहीं होता। यहीं से जीवन की असली परीक्षा शुरू होती है। निरंतर परिश्रम ही आप सबको सफलता की ओर ले जाएगा। राष्ट्र के निर्माण में उच्च शिक्षा संस्थान की अहम भूमिका है। उन्होंने कहा कि नई शिक्षा नीति के प्रावधानों के अनुरूप विश्वविद्यालय स्थानीय लघु उद्योग एवं रोजगार परक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए भी प्रतिबद्ध है।

कृषक भाई फसल की सूचना फसल बीमा क्राप लास ऐप के माध्यम से उपलब्ध कराएं

रबीन्द्रनाथ चौबे, बलिया

जनपद के समस्त कृषकों को अवगत कराते हुए उप कृषि निदेशक एवं जिला कृषि अधिकारी ने बताया है कि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के अंतर्गत रबी की फसल सन 2021 एवं 22 में नुकसान हुए फसल की सूचना फसल बीमा क्राप लास ऐप के माध्यम से उपलब्ध कराएं, जिससे विमित कृषक को योजना का लाभ प्राप्त हो सके, भारत सरकार के फसल बीमा पोर्टल पर फसल बीमा क्राप लास ऐप के माध्यम से कृषक द्वारा क्रप लास इंटीमेशन की सूचना वह शिकायत दर्ज करने के व्यवस्था है। इस ऐप पर फसल की नुकसान की जानकारी दर्ज कराने हेतु के उपयोग के ऐप के उपयोग के संबंध में प्रक्रिया संबंध में प्रक्रिया निम्न है जिसमें प्ले स्टोर पर जाएं, फसल बीमा ऐप खोजें अथवा निम्न लिंक से डाउनलोड करें, इंस्टॉल करें आवेदन शुरू करने के लिए यदि कृषक ने अपने बीमा ऐप के माध्यम से कराया है तो अपना मोबाइल नंबर और पासवर्ड डालकर इस पर क्लिक करें, अथवा आवेदन शुरू करने के लिए क्लिक करें आवेदन करने के लिए शुरु करने के लिए क्लिक करें अपना नाम और वैध मोबाइल नंबर डालें और ओ,टि पी डालकर सत्यापित करें, कृषक ने कहां से इनरोलमेंट कराया है इसे दर्ज करें यदिष कृषक के पास एप्लीकेशन पॉलिसी नंबर नहीं है तो उसके स्थान पर 123 आदि कोई भी अंक दर्ज करके उस पर क्लिक करें और अपना खाता संख्या दर्ज करके उस पर क्लिक करें फसल नुकसान संबंधित विवरण जैसे फसल का नाम नुकसान की तिथि नुकसान का कारण आदि भरकर संबंधित फोटो अथवा वीडियो अपलोड करके जानकारी दर्ज कर कराएं।

गेहूँ में गेहूँ के मामा का आतंक

आशुतोष सिंह (स्नातक) श्री परमहंस शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय अयोध्या (उ.प्र.)

अमन सिंह (परास्नातक) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि. कुमारगंज अयोध्या

जूही पांडे (परास्नातक) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

भारत मे गेहूँ की रबी फसल की सबसे खतरनाक खरपतवार मंडूसी हैं जिसे गेहूँ का मामा या गुली डंडा के नाम से जाना जाता है इसका प्रकोप गेहूँ की प्रथम चरण से ही दिखने लगता है और इसका प्रकोप गेंहू के अंतिम चरण तक रहता हैं यह गेहूँ में पड़ने वाले सारे खनिजों को चूस लेता है जिससे गेहूँ की उपज को प्रभावित करता है।

रोकथाम

इस खरपतवार से निजात पाने के दो तरीके हैं

निकाई और गोड़ाई: इस प्रकिया में गेहूं की समय समय पर निराई कर के कुछ हद तक इस पर अंकुश लगया सकता है पर इस पर ज्यादा अंकुश रासायन से किया जाता हैं

रासायनिक पदार्थ से: इस प्रकिया में जब गेंहू बुआई से 20 से 25 दिनके बाद पहली सिंचाई करें। उसके एक सप्ताह बाद अपने खेत में यूरिया की प्रथम टापड्रेसिंग कराएं। वहीं पर खरपतवार नाशक दवाओं का भी प्रयोग कर सकते हैं। मगर किसी भी दशा में न तो सल्फोसल्फूरान के साथ टू-फोर-डी का प्रयोग करें और न ही सल्फोसल्फूरान मिट्टी अथवा राख के साथ खेत में डालें।

प्रयोग: गेहूं के मामा के लिए दवा का प्रयोग - सल्फोसल्फूरान 75 जी या आइसोप्रोटयूरान 75 प्रतिशत डब्लू टी का प्रयोग करें। -सल्फोसल्फूरान 75 प्रतिशत 13.500 ग्राम दवा 6 लीटर पानी में घोलकर तथा 500 मिलीलीटर साल्वेन्ट मिलाकर 3 से 4 सौ लीटर पानी में प्रति एकड़ छिड़काव करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

चिया बीजों के स्वास्थ्य लाभ

प्रियंका गुप्ता (शोध छात्रा) खाद्य पोषण एंव सार्वजनिक स्वास्थय, एथेलिण्ड कॉलेज ऑफ़ होम साइंस, 'सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय' प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. अलका गुप्ता (सहायक प्रोफेसर), खाद्य पोषण एंव सार्वजनिक स्वास्थय, एथेलिण्ड कॉलेज ऑफ़ होम साइंस, 'सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय' प्रयागराज (उ.प्र.)

चिया बीज साल्विया हिस्पैनिका **(Salvia hispanica)** पौधे के छोटे काले बीज होते हैं। अपने छोटे आकार के बावजूद, चिया सीड्स सबसे अधिक पौष्टिक खाद्य पदार्थों में से एक हैं। ये फाइबर, प्रोटीन, ओमेगा -3 फैटी एसिड और विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरे हुए होते हैं। चिया सीड्स में एंटीऑक्सिडेंट, खनिज, फाइबर और ओमेगा-3 फैटी एसिड हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा दे सकते हैं, मजबूत हड्डियों का समर्थन कर सकते हैं और रक्त शर्करा प्रबंधन में सुधार कर सकते हैं।

चिया सीड्स के स्वास्थ्य लाभ

फ्री रेडिकल्स को कम करना

चिया सीड्स में पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट आपके शरीर में फ्री रेडिकल्स से लड़ने में मदद कर सकते हैं। मुक्त कण ऑक्सीडेटिव तनाव और कोशिका क्षति का कारण बनते हैं। एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर खाद्य पदार्थ खाने से हृदय रोग, संज्ञानात्मक गिरावट और कुछ प्रकार के कैंसर सहित मुक्त कणों से जुड़ी कई स्वास्थ्य समस्याओं के विकास के आपके जोखिम को कम करने में मदद मिल सकती है।

हृदय स्वास्थ्य को बेहतर करना

चिया के बीज में क्वेरसेटिन होता है, एक एंटीऑक्सिडेंट जो हृदय रोग सहित कई स्वास्थ्य स्थितियों के विकास के आपके जोखिम को कम कर सकता है। बीज फाइबर में भी उच्च होते हैं, जो उच्च रक्तचाप को कम करने में मदद कर सकते हैं और बदले में, हृदय रोग के विकास के जोखिम को कम कर सकते हैं।

रक्त शर्करा के स्तर में सुधार

चिया सीड्स में फाइबर की मात्रा अधिक होती है। अध्ययनों से पता चलता है कि फाइबर इंसुलिन प्रतिरोध को कम करने और रक्त शर्करा के स्तर में सुधार करने में मदद कर सकता है, जिससे आपके चयापचय सिंड्रोम और टाइप 2 मधुमेह के जोखिम को कम किया जा सकता है। शोध में यह भी पाया गया है कि चिया सीड्स वाली ब्रेड पारंपरिक ब्रेड की तुलना में कम रक्त शर्करा प्रतिक्रिया को ट्रिगर करती है, जो उच्च रक्त शर्करा के स्तर को रोकने में मदद करती है।

सूजन कम करना

पुरानी सूजन से हृदय रोग और कैंसर जैसी स्वास्थ्य स्थितियां हो सकती हैं। चिया सीड्स में पाया जाने वाला एंटीऑक्सीडेंट कैफिक एसिड शरीर में सूजन से लड़ने में मदद कर सकता है। नियमित रूप से चिया बीज खाने से सूजन के निशान को कम करने में मदद मिल सकती है, जो अक्सर सूजन संबंधी बीमारी की उपस्थिति का संकेत देते हैं।

वजन प्रबंधन करना

बीजों में घुलनशील फाइबर पानी को अवशोषित करते हैं, जिससे वे आपके पेट में फैल जाते हैं और जब आप इन्हें खाते हैं तो आपके पेट भरे होने की भावना बढ़ जाती है। कम खाने के बावजूद आपको पेट भरा हुआ महसूस कराकर, चिया के बीज आपको स्वस्थ वजन बनाए रखने में मदद कर सकते हैं।

बेहतर हड्डी स्वास्थ्य

चिया के बीज में कई पोषक तत्व होते हैं जो हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, जिनमें मैग्नीशियम और फास्फोरस शामिल हैं। बीज के एक औंस में कैल्शियम के आपके अनुशंसित दैनिक भत्ते का 18% भी होता है, जो स्वस्थ हड्डी, मांसपेशियों और तंत्रिका कामकाज के लिए महत्वपूर्ण है। जब चने के लिए चने की तुलना की जाती है, तो चिया के बीज में डेयरी उत्पादों की तुलना में अधिक कैल्शियम होता है।

चिया बीज पौधे आधारित प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत हैं

प्रोटीन अमीनो एसिड से बना होता है और शरीर के लिए आवश्यक होता है। दो बड़े चम्मच चिया सीड्स में 4 ग्राम प्रोटीन होता है। एक 140 पौंड व्यक्ति को एक दिन में लगभग 50 ग्राम प्रोटीन और 200 पौंड व्यक्ति को 70 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। लीन मीट, पोल्ट्री और फुल-फैट डेयरी के साथ-साथ अपने प्रोटीन सेवन को बढ़ाने के लिए चिया सीड्स का उपयोग करें।

चिया सीड्स में एंटीऑक्सीडेंट्स की मात्रा अधिक होती है

भोजन में एंटीऑक्सिडेंट प्रमुख कैंसर से लड़ने वाले घटक हैं। वे मुक्त कणों से लड़ते हैं, जो कोशिकाओं, प्रोटीन और डीएनए को नुकसान पहुंचाते हैं। चिया सीड्स में एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा अधिक होने के कारण, जितना हो सके उन्हें खाद्य पदार्थों में शामिल करना समझ में आता है। एक साइड नोट के रूप में, मुक्त कणों में उच्च खाद्य पदार्थ एंटीऑक्सिडेंट में कमी वाले होते हैं-संसाधित मांस और अत्यधिक संसाधित या चीनी से भरे खाद्य पदार्थ उदाहरण हैं। इसलिए, उनसे दूर रहें और इसके बजाय स्वच्छ खाने वाले खाद्य पदार्थों से अपनी लालसा को संतुष्ट करें।

चिया बीज एक पोषण शक्ति है

चिया बीज के सभी लाभों के बारे में हमने उल्लेख किया है, जब पोषक तत्वों की बात आती है तो ये छोटे बीज एक पंच पैक करते हैं। और सबसे अच्छी बात यह है कि आपको बहुत कम मात्रा में अच्छाई मिल जाती है। उदाहरण के लिए, एक औंस चिया सीड्स में 11 ग्राम फाइबर होता है। अगर आप रात भर के लिए दालचीनी किशमिश को परोसते हैं, तो आपको उस एक सर्विंग में 5.5 ग्राम फाइबर मिलेगा। मैंगनीज, कैल्शियम और प्रोटीन जैसे अन्य अच्छे पोषक तत्वों का उल्लेख नहीं करना चाहिए। वे लस मुक्त और आसानी से पचने योग्य हैं। चिया सीड्स के साथ यह सब फायदे का सौदा है।

पोषण तत्व

चिया बीज कई आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं, जिनमें शामिल हैं-कैल्शियम, मैंगनीज, मैगनीशियम, सेलेनियम, तांबा, लोहा, फास्फोरस चिया बीज अल्फा-लिनोलेइक एसिड (एएलए) का एक अविश्वसनीय स्रोत हैं, एक ओमेगा-3 फैटी एसिड जो कम ओमेगा -6 से ओमेगा-3 फैटी एसिड अनुपात को बढ़ावा देने में मदद करता है-एक कम अनुपात पुरानी स्थितियों के कम जोखिम से जुड़ा हुआ है जैसे हृदय रोग, कैंसर और सूजन की स्थिति।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

फरवरी माह में फसलोत्पादन संबंधित मुख्य खेती-बाड़ी कार्य

हिमांशु तिवारी, प्रभात रंजन पाण्डेय
विवेक पाण्डेय सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)
आलोक कुमार पाण्डेय
भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उ.प्र.)

गेहूँ

- बोआई के समय के अनुसार गेहूँ की दूसरी सिंचाई 40 -50 दिन पर तथा तीसरी सिंचाई 60-65 दिन की अवस्था में कर दें। चौथी सिंचाई बोआई के 80-85 दिन बाद पुष्पावस्था पर करें।
- गेहूँ के खेत में चूहों का प्रकोप होने पर एल्युमीनियम फास्फाइड की टिकिया अथवा जिंक फास्फाइड से बने चारे का प्रयोग करें।
- अनावृत कण्डुआ के रोग से ग्रसित बाल जो खेत में जल्दी निकल आती है, वह दिखाई देते ही उसे निकाल कर जला दें।
- रतुआ रोग का लक्षण दिखाई देने पर 500 मिली प्रति हे. प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. 500-600 ली. पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें।

मक्का

- बुआई के अनुसार, रबी मक्का की तीसरी सिंचाई 75- 80 दिन पर तथा चौथी सिंचाई 105-110 दिन बाद कर दें।
- बसन्तकालीन मक्का की बुआई पूरे माह की जा सकती है।
- बुआई के लिए संकुल प्रजातियों का बीज 22-25 किग्रा प्रति हेक्टेयर और संकर प्रजातियों के लिए 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर बीज पर्याप्त होगा।
- 120 किग्रा प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा व फास्फेट एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय प्रयोग करना चाहिए।
- 60×20 सेमी की दूरी पर उपचारित बीज की बुआई करें।

गन्ना

- बसन्तकालीन गन्ने की बुआई देरी से खाली हुए धान के खेत में और मटर / तोरिया / आलू की फसल से खाली हुए खेत में की जा सकती है।
- 70-80 क्विं. बीज एक हेक्टेयर बुआई के लिए पर्याप्त होता है और ट्रेन्च या नाली विधि का प्रयोग करके बुआई करना चाहिए।
- 70-90 सेंमी. की दूरी पर कतारों में 10 सेंमी. की गहराई में उपचारित बीज की बुआई करें।
- शरदकालीन गन्ने में बुआई के 110-120 दिन बाद नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा (60-75 किग्रा प्रति हे.) प्रयोग करें।
- गन्ने की फसल में दीमक व अंकुर बेधक कीट के रोकथाम के लिए कूंड ढंकने से पहले 5 लीटर क्लोरपायिरीफास 20 ई.सी. कों 1250 लीटर पानी में घोलकर बोये हुए गन्ने के टुकड़ों के ऊपर छिडकाव करें।
- गन्ने की पेड़ी से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए खेत से खरपतवार निकाल दें और सिंचाई करें तथा मिट्टी में ओट आने पर 90 किग्रा नाइट्रोजन (195 किग्रा यूरिया) की पहली टॉप ड्रेसिंग करे और कल्टीवेटर से गुड़ाई करके उर्वरक कों मिट्टी में मिला दें।

चना

- चने की फसल कों फली छेदक कीट से बचाने के लिए फली बनना शुरू होते ही इन्डोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. 500 मिली मात्रा 700-800 ली. पानी में मिलाकर प्रति हे. की दर से 15 दिन के अन्तराल पर 2 बार छिडकाव करें।

जौ

- जौ फसल में निराई-गुडाई से अच्छा प्रभाव होता है।
- खेत में यदि कण्डुआ रोग से ग्रसित बाल दिखाई देते ही उसे निकाल कर जला दें।
- बुआई के अनुसार, जौ की दूसरी सिंचाई 55-60 दिन बाद गांठ बनने की अवस्था पर तथा तीसरी सिंचाई 95-100 दिन बाद दुग्धावस्था पर कर दें।

राई

- राई की फसल में माहू कीट के रोकथाम के लिए थाईमेथोकजाम 25 डब्लू.डी.जी. 125 ग्राम या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 250 मिली का प्रति हे. प्रयोग करना चाहिए।

मटर

- मटर की फसल में (पाउडरी मिल्ड्यू) बुकनी रोग के बचाव के लिए पेन्कोनाजोल 10 ई.सी. घुलनशील गन्धक 3.0 किग्रा प्रति हे. की दर से 12-14 दिन के अन्तराल पर 2 बार छिड़काव करें।

हरा चारा

- गर्मी में चारे के लिए लोबिया और मक्का की बुआई माह के दूसरे पखवाडे से प्रारम्भ की जा सकती है।
- 20-25 दिन के अन्तराल पर बरसीम व जई में सिंचाई करें।
- बरसीम की कटाई 20-25 दिन के अन्तराल पर करें और जई की पहली कटाई, बुआई के 55 दिन बाद करें।
- जई में कटाई के बाद सिंचाई करके 20 किग्रा प्रति हे0 नाइट्रोजन की दूसरी टॉप ड्रेसिंग कर दें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

वर्मी कम्पोस्ट से युवकों, गृहणियों एवं भावी पीढ़ी में रोजगार के अवसर

प्रज्जवल अग्निहोत्री (परास्नातक छात्र)
सस्य विज्ञान विभाग चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर (उ.प्र.)

हरित क्रांति के लिए फसलों की उन्नतशील प्रजातियों के प्रयोग के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों का उपयोग भी बढ़ा। परंतु, जैविक खादों का प्रयोग संकुचित होता गया। चूंकि, एक रासायनिक उर्वरक जैविक खाद की तरह समस्त आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति नहीं कर सकता है, इसलिए, मृदा की उर्वरता घटती गई। यदि आज भी हम नही सजग हुए तो हमारी मिट्टी बिल्कुल बेकार हो जाएगी। अतः शीघ्र ही हमें जैविक खाद के प्रयोग को व्यापक बनाना होगा।

जैविक खादों में केंचुआ खाद एक महत्वपूर्ण आदान है जिसकी सार्थकता को राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर सभी ने स्वीकारा है। अनेक विकसित व विकासशील देशों में वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है किन्तु भारत में अभी तक न तो इसके महत्व से किसानों को पूर्णतः अवगत कराया जा सका है और न आवश्यकतानुसार व्यापारिक उत्पादन आरम्भ हो पाया है। इसका मुख्य कारण केंचुआखाद बनाने, भूमि व पौधों पर इसके सार्थक प्रभाव, उपयोग और रख रखाव आदि की सही जानकारी का सर्वथा उपलब्ध न होना है। वर्मी कम्पोस्ट को **vermi-culture** या केंचुआ पालन भी कहा जाता है। केंचुओ द्वारा प्राप्त मल से तैयार खाद ही वर्मी कम्पोस्ट या वर्मी कल्चर कहलाती है। यह हर प्रकार के पेड पौधों, फल वृक्षों, सब्जियों, फसलों के लिए पूर्ण रूप से प्राकृतिक, सम्पूर्ण व संतुलित आहार (पोषण खाद) है। इसमें बेरोजगार युवकों, गृहणियों, एवं भावी पीढ़ी में रोजगार के अवसर प्रदान किये जा सकते हैं तथा पर्यावरण प्रदूशण की समस्या भी कुछ हद तक सुलझ सकती है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की सामान्य विधि

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए इस विधि में क्षेत्र का आकार आवश्यकतानुसार रखा जाता है किन्तु मध्यम वर्ग के किसानों के लिए 100 वर्गमीटर क्षेत्र पर्याप्त रहता है। अच्छी गुणवत्ता की केंचुआ खाद बनाने के लिए सीमेन्ट तथा ईटों से पक्की क्यारियां बनाई जाती हैं। प्रत्येक क्यारी की लंबाई 3 मीटर, चौड़ाई 1 मीटर एवं ऊँचाई 30 से 50 सेमी. रखते हैं। 100 वर्गमीटर क्षेत्र में इस प्रकार की लगभग 90 क्यारियां बनाई जा सकती है। क्यारियों को तेज धूप व वर्षा से बचाने और केंचुओं के तीव्र प्रजनन के लिए अंधेरा रखने हेतु छप्पर और चारों ओर टट्टियों से हरे नेट से ढकना अत्यन्त आवश्यक है। क्यारियों को भरने के लिए पेड़-पौधों की पत्तियाँ, घास, सब्जी व फलों के छिलके, गोबर आदि अपघटनशील कार्बनिक पदार्थों का चुनाव करते हैं। इन पदार्थों को क्यारियों में भरने से पहले ढ़ेर बनाकर 15 से 20 दिन तक सड़ने के लिए रखा जाना आवश्यक है। सड़ने के लिए रखे गये कार्बनिक पदार्थों के मिश्रण में पानी छिड़क कर ढ़ेर को छोड़ दिया जाता है। 15 से 20 दिन बाद कचरा अधगले रूप में आ जाता है। ऐसा कचरा केंचुओं के लिए बहुत ही अच्छा भोजन माना गया है। अधगले कचरे को क्यारियों में 50 सेंमी. ऊँचाई तक भर दिया जाता है। कचरा भरने के 3-4 दिन बाद प्रत्येक क्यारी में केंचुऐ छोड़ दिए जाते हैं और पानी छिड़क कर प्रत्येक क्यारी को गीली बोरियो से ढंक देते है। एक टन कचरे से 0.6 से 0.7 टन केंचुआ खाद प्राप्त हो जाती है।भारतीय उपमहाद्वीप में कंचुआ खाद

बनाने हेतु केचुए की कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियां निम्नवत् हैं: आइसीनिया फोटिडा, आइसीनिया एन्ड्रेई,आइसीनिया फोटिडा प्रजाति के केंचुओं का केंचुआ खाद बनाने में वृहद रुप से प्रयोग हो रहा है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाते समय ध्यान रखने योग्य बाते वर्मी बेडों में केंचुआ छोड़ने से पूर्व कच्चे माल (गोबर व आवष्यक कचरा) का आंशिक विच्छेदन जिसमें 15 से 20 दिन का समय लगता है करना अति आवश्यक है। आंशिक विच्छेदन की पहचान के लिए ढ़ेर में गहराई तक हाथ डालने पर गर्मी महसूस नहीं होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में कचरे की नमीं की अवस्था में पलटाई करने से आंशिक विच्छेदन हो जाता है। वर्मीबेडों में भरे गये कचरे में कम्पोस्ट तैयार होने तक 30 से 40 प्रतिशत नमी बनाये रखें। कचरे में नमीं कम या अधिक होने पर केंचुए ठीक तरह से कार्य नही करतें। वर्मीबेडों में कचरे का तापमान 20 से 27 डिग्री सेल्सियस रहना अत्यन्त आवश्यक है। वर्मीबेडों पर तेज धूप न पड़ने दें। तेज धूप पड़ने से कचरे का तापमान अधिक हो जाता है परिणामस्वरूप केंचुए तली में चले जाते हैं अथवा अक्रियाशील रह कर अन्ततः मर जाते हैं। वर्मीबेड में ताजे गोबर का उपयोग कदापि न करें। ताजे गोबर में गर्मी अधिक होने के कारण केंचुए मर जाते हैं अतः उपयोग से पहले ताजे गोबर को 4-5 दिन तक ठण्डा अवश्य होने दें। केंचुआ खाद तैयार करने हेतु कार्बनिक कचरे में गोबर की मात्रा कम से कम 20 प्रतिशत अवश्य होनी चाहिए। कचरे का पी. एच. उदासीन (7.0 के आसपास) रहने पर केंचुए तेजी से कार्य करते हैं अतः वर्मीकम्पोस्टिंग के दौरान कचरे का पी. एच. उदासीन बनाये रखे। इसके लिए कचरा भरते समय उसमें राख अवश्य मिलायें। केंचुआ खाद बनाने के दौरान किसी भी तरह के कीटनाशकों का उपयोग न करें। खाद की पलटाई या तैयार कम्पोस्ट को एकत्र करते समय खुरपी या फावड़े का प्रयोग कदापि न करें। इन यंत्रों के प्रयोग से केंचुओं के कटकर मर जाने की सम्भावना बनी रहती है। कचरे में से काँच के टुकड़े, कील, पत्थर, प्लास्टिक, पोलीथीन आदि को छाँट कर अलग कर दें। केंचुओं को चिड़ियों, दीमक, चींटियों आदि के सीधे प्रकोप से बचाने के लिए क्यारियों के कचरे को बोरियो से अवश्य ढकें। केंचुए को अंधेरा अति पसंद है अतः वर्मी बैड को हमेशा टाट बोरा/सूखी घास-फूस इत्यादि से ढंक कर रखना चाहिए। केंचुओं के अधिक उत्पादन हेतु बेड़ में नमीं 30 से 35 प्रतिशत तथा केंचुआ खाद के अधिक उत्पादन के लिए नमीं 20 से 30 प्रतिशत के बीच रखनी चाहिए। वर्मीबेड में नमीं की मात्रा 35 प्रतिशत से अधिक होने से वायु संचार में कमीं हो जाती है जिसके कारण केंचुए बेड की ऊपरी सतह पर आ जाते हैं। अच्छी वायु संचार के लिए वर्मी बेड में प्रत्येक सप्ताह कम से कम एक बार पंजा चलाना चाहिए जिससे केंचुओं को वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु उपयुक्त वातावरण मिल सके। केंचुओं के अधिक उत्पादन हेतु बेड पर केंचुआ छोंड़ने के समय 500 मि.ली. मट्ठा/500 मिली शीरे को 5 से 10 लीटर पानी में घोलकर प्रति बैड पर छिड़काव करने से केंचुओं का प्रजनन तथा कम्पोस्टिंग तेजी के साथ होता है। बोकाशी का मिश्रण जिसमें गेहूँ की भूसी, चने का छिलका/पाउडर एवं नीम/सरसों की खली के समान मिश्रण की 500 ग्राम मात्रा 5 से 10 लीटर पानी में घोलकर प्रति बैड पर छिड़कने से केंचुओं की प्रजनन बढ़ाई जा सकती है। केंचुओं की अच्छी बढ़वार एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए वर्मी शैडों में अंधेरा, नमी, वायु संचार, आंशिक रूप से विच्छेदित कचरा, नियमित देखभाल तथा अच्छा प्रबंधन होना अति आवश्यक है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

टमाटर की उन्नतशील खेती

रामलला पटेल एम.एस.सी. (कृषि) शोध छात्र
(आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन) बुंदेलखंड वि.वि. झांसी (उ.प्र.)

टमाटर फल एवं सब्जी दोनो श्रेणी में आता है। टमाटर का विशेष महत्व है टमाटर का वानस्पतिक नाम लाइकोपर्सिकम एसकुलैन्टम है। यह सोलेनेसी कुल के अन्तर्गत आता है। इसका उत्पत्ति स्थान पेरू को माना जाता है। इसमें गुणसूत्र संख्या 24 पाई जाती है। टमाटर को हम लाल क्रान्ति के अन्तर्गत अध्ययन करते है। और साथ ही साथ हम गरीबों का सन्तरा भी कहते है। टमाटर में विटामिन सी लाइकोपीन पौटेशियम पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। भारत का विश्व में टमाटर उत्पादन में प्रथम स्थान है और देश में प्रथम स्थान अन्ध्रा प्रदेश राज्य का है। टमाटर का विशेष आहार मूल्य होने के कारण यह बहुत ही महत्वपूर्ण संरक्षित खाद्य है, तथा साथ ही इसकी खेती सभी जगहो पर की जाती है। पूरे संसार के अन्दर आलू और शकरकंद के बाद टमाटर ही सबसे अधिक पैदा की जाने वाली सब्जी है। और डिब्बों में भरने वाली सब्जियों में टमाटर का सबसे प्रथम स्थान है।

टमाटर: पौष्टिक सब्जियों में टमाटर का महत्वपूर्ण स्थान है। टमाटर का प्रयोग सूप, सलाद, अचार, टमाटर का कैचप, पुरी तथा चटनी आदि पदार्थो के बनाने में किया जाता है।

आहार मूल्य

प्रति 100 ग्राम

नमी	91.3 ग्राम	विटामिन सी	21.0 मि.ग्रा.
प्रोटीन	1.9 ग्राम	कैलोरीज	23.0 मि.ग्रा.
चर्बी	0.1 ग्राम	कैल्सियम	20.0 मि.ग्रा.
खनिज पदार्थ	0.6 ग्राम	मैगनीसियम	15.0 मि.ग्रा.
रेसा	0.7 ग्राम	आकजैलिक एसिड	02.0 मि.ग्रा.
अन्य कार्बोहाइड्रेट्स	3.6 ग्राम	फास्फोरस	35.0 मि.ग्रा.
सोडियम	45.8 मि.ग्रा.		
पोटैशियम	114.0 मि.ग्रा.		
बिटामिन ।	192.0 आई.यू.		

टमाटर खाने के फायदे: एनीमिया, कैन्सर, हृदयरोग, पाचन के रोगी को खाने में लाभदायक होते है।

भूमि की तैयार: टमाटर की खेती लगभग सभी प्रकार के मिट्टी में की जाती है। भूमि को कम से कम 4-5 बार जुताई करनी चाहिए तथा मिट्टी को भुरभुरी कर लेना चाहिए ।

जलवायु: यह ग्रीष्म ऋतु की फसल है। टमाटर की फसल उन स्थानों पर अच्छी होती है। जहॉ पर गरमाहट अधिक होता है, वहॉ पर अच्छी विकास होती है, ठण्डा अधिक होने पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलो की अपेक्षा पत्तियां अधिक ठण्डा सहन कर लेती है।

भूमि: टमाटर की खेती सभी प्रकार के भूमि पर की जा सकती है। अगेती फसल के लिए हल्की भूमि अच्छी मानी जाती है। जबकि अधिक उपज के लिए दोमट सिल्ट दोमट अच्छी होती है। यह अधिक अम्लीय सहन नही कर सकती इसलिए इसका च्भ् मान 6-7 सबसे अच्छी होती है।

बोने का समय: मैदानी भागों में टमाटर जून के अन्त से लेकर नवम्बर तक बोया जाता है। जिस क्षेत्र में मौसम जल्दी से ठण्डा पड़ने लगे वहॉ पर सबसे अगेती फसल जून से जुलाई के मध्य में बोया जाता है। जिस क्षेत्र में ठण्डी देर से पड़े वहॉ पर जून से जुलाई तक बोई जाती है। तथा पहाड़ी क्षेत्रों में यह मार्च से मई में बोया जाता है।

बरसात की फसल: जून से जुलाई में पौधा तैयार करके जुलाई से अगस्त तक रोपाई कर देते है। तथा अक्टूबर से नबम्बर तक फल देने लगता है।

सर्दी की फसल: अक्टूबर में पौध तैयार करके नवम्बर में रोपाई करा देते है। तथा इसमें फल जनवरी से लेकर अप्रैल तक मिलता है।

पहाड़ी क्षेत्रों में: मार्च में बीज 300 से 400 ग्राम बीज एक हेक्टेयर के लिए होता है। तथा जून जुलाई तक फल आने लगते है।

खाद एवं उर्वरक: खेत की तैयारी करते समय गोबर की सड़ी हुई खाद 200 कुन्टल प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में अच्छे तरह मिला देना चाहिए इसके अलावा रोपाई के समय

खाद्य	प्रति हेक्टयर
नाइट्रोजन	150 किग्रा.
फास्फोरस	60 किग्रा.
पोटाश	60 किग्रा.

की दर से प्रयोग करना चाहिए और नाइट्रोजन की आधी मात्रा रोपाई के समय और शेष मात्रा रोपाई के बाद दो बार देना चाहिए तथा दूसरी मात्रा 60 दिन बाद देनी है।

बीज दर: टमाटर का बीज 400 ग्राम से 500 ग्राम बीज एक हेक्टेयर के लिए होता है। तथा संकर किस्म का बीज 100 से 150 ग्राम एक हेक्टेयर की दर से लगता है। एक ग्राम में लगभग 300 बीज होते है। टमाटर की बीज का अंकुरण क्षमता 4 वर्ष तक होती है। तथा टमाटर की अच्छी बीज 85 से 90 प्रतिशत तक जम जाता है। इसका बीज सभी सब्जियों के बीज से हल्का होता है।

प्रजातियां

शंकर किस्म: पन्त बहार, पूसा गौरव, हिसार अनमोल, पूसा शीतल। **देशी किस्म:** एस-22, सर्वोदय। **सर्दी की प्रजातियाँ:** कल्याणपुर, अंगूरलता। **बौने किस्म:** पूसा रूबी, फयर बाल, पूसा अर्ली डवार्फ।

पौधा तैयार करना: बीज को बोने के लिए सीड बेड बनाते है तथा भूमि की चारो तरफ की मिट्टी को खोदकर 15 सेमी. ऊची बेड बना लेते है। तथा बीज को बालू तथा राख के साथ मिला कर बोना चाहिए बीज को 1-5 से 2 सेमी गहराई पर बोते है तथा बोने के तुरन्त बाद हजारे से फब्वारे के रूप में पानी देते है। तथा बीज को उपचारित करके बो देते है, जब पौधे एक सप्ताह के हो जाये तो उन पर वावस्टीन 2 ग्राम एक लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए 4 से 6 सप्ताह में पौधा तैयार हो जाता है।

पौधे की रोपाई: जब पौधे 5 से 6 पत्तियों का हो जाये तब पौधे की रोपाई की जाती है। पौधे को खेत में हमेशा शाम के समय ही रोपाई करनी चाहिए टमाटर को हमेशा क्यारी विधि से ही लगाना चाहिए तथा क्यारी की चौड़ाई 60 सेमी. तथा जमीन के सतह से 20 सेमी ऊॅची क्यारी बनानी चाहिए। बनायी गयी क्यारी में पौधों की रोपाई की जाती है। पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी होनी चाहिए तथा बरसात के समय में बेड बना कर पौधे की रोपायी बहुत अच्छी मानी जाती है क्योकि पौधे नुकसान नही होगे तथा जल्दी वृद्धि करेंगे और फल सड़ेंगे नहीं

सिचाई: पहली सिचाई तुरन्त बाद की जाती है, तथा पौधा लगने के 10 से 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण: टमाटर की फसल के अच्छे उत्पादन के लिए समय-समय पर निकाई - गुड़ाई करके खरपतवार को नष्ट कर देते है।

निकाई गुड़ाई: रोपाई के बाद पहली निकाई गुडाई 20 से 25 दिन बाद दूसरी 40 से 50 दिन बाद तथा तीसरी 60 से 65 दिन बाद निकाई गुडाई कर देनी चाहिए और निकाई गुडाई के बाद पौधे के चारो तरफ से मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

कीट: इसमें बहुत प्रकार के कीट का प्रकोप होता है

फल भेधक सुडी: प्रौढ़ कीट मध्यम आकार का पीले भूरा रंग का होता है इसके पृष्ठ भाव व दोनों किनारों पर एक-एक हल्की पिली धारी होती है इसके पृष्ठ भाग के दोनो किनारे हरे या काले रंग के होते है। या अप्रैल से आधे सितम्बर तक हानि पहुचाते है। इसकी सूडी कच्चे टमाटर के अन्दर छेद करके अन्दर गूदा खा जाती है।

रोगथाम: मैलाथियान 50% ईसी 01 लीटर थायोडीन 35% ईसी 1-5 किग्रा. प्रति एक हेक्टेयर की दर से पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

चूर्णी बेग: इनका प्रकोप नवम्बर तक अधिक रहता है। ये प्रौढ़ कीट पत्ती का रस चूस जाते है।

रोगथाम: एन्डोसल्फान 0.04 प्रतिशत का घोल बना कर छिड़काव कर देना चाहिए।

पौधे की सधाई: टमाटर की अधिकत्तर प्रजातियॉ फैलने वाली होती है जिससे शाखायें भूमि के ऊपर गिर जाती है इस कारण हवा और प्रकाश न मिलने के कारण तथा फलों का सिचाई के पानी में पड़े रहने के कारण फल रोगग्रस्त हो जाते है, इसके आलावा फलो में आकर्षक रंग भी नही आता है, इसके लिये पौधो को कम से कम 3-4 सेंमी. मोटी लकड़ी का सहारा देना चाहिए जिससे पौधे पूर्ण रूप से प्रकाश पाकर फल आकार में बड़े और आकर्षक होते है।

फल लगना: बसन्त ऋतु के आरम्भ में कम तापमान और शरद ऋतु से पहले अधिक तापमान रहने से फल कम लगते है। जिन दिनो में रात्रि का तापमान 13 डिग्री फे0 से कम और 38 डिग्री फे. से अधिक होने लगता है तब फूल तथा फल नही बन पाते इसलिए अगेती फसल में हर्मोस का उपयोग करके उपज ले सकते है। जिब्रेलिक एसिड, 50 पी0 पी0 एम0 डाइक्लोरोफीनोक्सी एसीटिक एसिड 1 से 5 पी0 पी0 एम।

फलों की तुड़ाई: टमाटर का फल लगभग 1 माह में पकने लगते है। और तुडाई तब करनी चाहिए जब फल लाल हो गया है तथा दूर भेजने के लिए तब तोडाई करते है जब फल हल्का लाली लिया होता है। ताकि फल फटे न और आसानी से पहुच जाए।

उपज: इसकी पैदावार 160 से 250 क्विंटल (16000 किग्रा. से 25000 किग्रा.) एक हेक्टेयर में पैदावार होता है।

ग्रेडिंग: अच्छे टमाटर को छॉट कर अलग कर लेते है और उसके बाद उससे हल्का रंग वाला फल लेते है और उसी अनुसार उसका कीमत निर्धारित करते है। इस लिए टमाटर का मूल्य एक ही बाजार में अलग-अलग होता है। सुपर ए, सुपर, फैसी, कामर्सियल

भण्डारण: टमाटर के लिए संग्रह घर का तापमान 12 से 15 डिग्री °C तक होना चाहिए परिपक्व हरे टमाटर संग्रह घर में 10 से 15 डिग्री °Cपर लगभग एक माह तक रखे जा सकते है पके हुए टमाटर लगभग 10 दिन तक 4.5 डिग्री °C से तापमान पर रखे जा सकते है। समीप वाले बाजारों में टमाटर शाम को तोड़कर सुबह को भेज दिया जाता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

वैज्ञानिक तरीके से करें चुकंदर की खेती

खुर्शीद आलम, मुजीब अहमद
(शोध छात्र, सब्जी विज्ञान विभाग)
आस्था विश्वराज
(परास्नातक छात्र, सब्जी विज्ञान विभाग)
राहुल कुमार (परास्नातक छात्र, सब्जी विज्ञान विभाग) सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

चुकंदर एक ऐसा फल है, जिसका सेवन सब्जी के रूप में पकाकर या बिना पकाये भी किया जाता है। चुकंदर को मीठी सब्जी भी कह सकते है, क्योंकि इसका स्वाद खाने में हल्का मीठा होता है। इसके फल जमीन के अंदर पाए जाते है, तथा चुकंदर के पत्तों को भी सब्जी के रूप में इस्तेमाल करते है। चुकंदर में अनेक प्रकार के पोषक तत्व मौजूद होते है, जो मानव शरीर के लिए काफी लाभदायक होते है। जैसे-खून की कमी, अपच, कब्ज, एनीमिया, कैंसर, हृदय रोग, पित्ताशय विकारों, बवासीर और गुर्दे के विकारों को दूर करने इत्यादि। चुकंदर को सलाद, जूस और सब्जी के रूप में उपयोग करते है। बाजार में चुकंदर की बहुत अधिक मांग रहती है।

मिट्टी: चुकंदर एक जड़ वाली फसल है इसकी खेती करने के लिए बलुई दोमट मिट्टी बहुत ही उपयुक्त मानी जाती है। इसकी खेती को जलभराव वाली भूमि में नहीं करना चाहिए। जलभराव की स्थिति में फल सड़न जैसी समस्या उत्पन्न हो जाती है। चुकंदर की खेती के लिए भूमि का पीएच मानी 6 से 7 के मध्य होना चाहिए।

जलवायु: चुकंदर की खेती ठंडे प्रदेशो के लिए उपयुक्त मानी जाती है सर्दियों का मौसम इसके पौधों की वृद्धि के लिए काफी अच्छा माना जाता है। चुकंदर की फसल को अधिक बारिश की आवश्यकता नहीं होती है, जिससे अधिक वर्षा इसकी पैदावार को प्रभावित कर सकती है। चुकंदर के पौधों को अंकुरित होने के लिए सामान्य तापमान की जरूरत होती है इसके विकास के लिए 20 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान उपयुक्त माना जाता है।

खेत की तैयारी: जुते हुए खेत में 15 गाड़ी पुरानी गोबर की खाद को डालकर कल्टीवेटर के माध्यम से दो से तीन तिरछी जुताई कर खाद को मिट्टी में अच्छे से मिला दें। इसके बाद खेत को कुछ समय के लिए ऐसे ही खुला छोड़ देना चाहिए, जिससे खेत की मिट्टी में अच्छी तरह से धूप लग जाए। चूंकि चुकंदर के पौधे भूमि की सतह पर रहकर विकास करते है, जिस वजह से उसकी जड़े अधिक गहराई में खनिज प्रदार्थो को ग्रहण नहीं कर पाती है, इसलिए चुकंदर के खेत को तैयार करते वक्त अच्छे से उर्वरक की मात्रा को देना चाहिए।

उन्नत किस्में

एम. एस. एच.-102: इस किस्म के पौधों को तैयार होने में लगभग तीन महीने का समय लगता है। यह चुकंदर की अधिक पैदावार देने वाली किस्म है, जो प्रति हेक्टेयर लगभग 250 क्विंटल का उत्पादन देती है।

क्रिमसन ग्लोब: यह किस्म कम समय में अधिक पैदावार देने के लिए जानी जाती है। इसके फलो को तैयार होने में लगभग 70 से 80 दिन का समय लगता है। इस किस्म के पौधों के फलो का रंग बाहर और अंदर हल्का लाला होता है। यह प्रति हेक्टेयर लगभग 300 क्विंटल की पैदावार देती है। इसके अतिरिक्त भी चुकंदर की कई किस्मे पाई जाती है जिसमे अर्ली वंडर, रोमनस्काया, डेट्रॉइट डार्क रेड, मिश्र की क्रॉस्बी किस्मे शामिल है।

बीजों की रोपाई का सही समय और तरीका: चुकंदर के बीजो की रोपाई समतल और मेड दोनों ही तरह की भूमि में की जा सकती है। समतल भूमि में रोपाई के लिए खेत में उचित दूरी रखते हुए क्यारियों को

तैयार कर लेना चाहिए, इस क्यारियों में एक फ़ीट की दूरी रखते हुए पंक्तियो में बीजो की रोपाई की जाती है। इसमें प्रत्येक पंक्ति के बीच में एक फ़ीट की दूरी तथा प्रत्येक बीज को 20 से 25 सेंटीमीटर की दूरी में लगाना चाहिए। यदि आप इसके बीजो की रोपाई मेडो पर करना चाहते है तो प्रत्येक मेड के बीज में एक फुट की दूरी तथा प्रत्येक बीज के बीच में 15 सेंटीमीटर दूरी अवश्य रखें। इसके लिए इसके बीजो की रोपाई को अक्टूबर और नवम्बर के माह में करना चाहिए। बीजो की रोपाई में चुकंदर के उन्नत किस्म के बीजो को खरीदना चाहिए तथा बीजो की रोपाई से पहले उन्हें उपचारित कर ले, जिससे पौधों में लगने वाले रोगो का खतरा कम हो जाता है। एक हे. के खेत में तक़रीबन 8 किलो बीजो की आवश्यकता होती है।

रासायनिक उर्वरक: रासायनिक उर्वरक के लिए नाइट्रोजन 40 किलोग्राम, फास्फोरस 60 किलोग्राम और 80 किलोग्राम पोटाश की मात्रा को प्रति हेक्टेयर के हिसाब से आखरी जुताई के वक्त छिड़काव कर देना चाहिए।

सिंचाई: चुकंदर के पौधों को अच्छे से अंकुरित होने के लिए नमी की आवश्यकता होती है। इसलिए बीजो की रोपाई के तुरन्त बाद इसकी पहली सिंचाई कर देनी चाहिए, तथा बीज अंकुरण के बाद पानी की मात्रा को कम कर देना चाहिए। चुकंदर के पौधों को जलभराव की स्थिति से बचाने के लिए 10 दिनों के अंतराल में सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण: चुकंदर के पौधों पर खरपतवार नियंत्रण करने के लिए रासायनिक और प्राकृतिक दोनों विधि का इस्तेमाल किया जाता है। यदि आप रासायनिक तरीके से खरपतवार पर नियंत्रण करना चाहते है, तो उसके लिए आपको पेंडीमेथिलीन की उचित मात्रा का छिड़काव बीज रोपाई के तुरंत बाद करना चाहिए। इसके बाद खेत में खरपतवार कम मात्रा में दिखाई देते है। यदि आप खेत में खरपतवार नियंत्रण प्राकृतिक तरीके से करना चाहते है, तो उसके लिए आपको बीज रोपण के 15 से 20 दिन बाद निराई-गुड़ाई कर देनी चाहिए। इसके बाद समय- समय पर खेत में खरपतवार दिखाई देने पर निराई-गुड़ाई कर देनी चाहिए।

रोग और उनकी रोकथाम: चुकंदर के पौधों में बहुत ही कम रोग देखने को मिलते है। किन्तु कुछ रोग ऐसे है, जो इसके पौधों को प्रभावित करते जिससे बचाव के लिए बताये गए उपायों का इस्तेमाल करना चाहिए।

लीफ स्पॉट रोग: इस रोग का प्रभाव पौधों की पत्तियों पर देखने को मिलता है। इस रोग के लग जाने से आरम्भ में पत्तियों पर भूरे कोणीय धब्बे दिखाई देने लगते है। इस रोग का प्रभाव बढ़ जाने पर पत्तिया सूख कर गिरने लगती है जिससे फलो की वृद्धि प्रभावित होती है, जिससे पत्तिया सूखकर गिरने लगती है। चुकंदर के पौधों पर एग्रीमाइसीन की उचित मात्रा का छिड़काव कर इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

कीट आक्रमण रोग: यह कीट चुकंदर के पौधों पर अधिक आक्रमण करता है। इस कीट का लार्वा पौधों की पत्तियों को खाकर उन्हें नष्ट कर देता है, तथा रोग का आक्रमण बढ़ जाने पर पैदावार कम हो जाती है। मैलाथियान या एंडोसल्फान का उचित मात्रा में छिड़काव कर इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

खुदाई का तरीका: चुकंदर के पौधे तीन से चार महीने में पैदावार देने के लिए तैयार हो जाते है। इसके फल पक जाने पर पौधों की पत्तिया पीले रंग की दिखाई देती है। उस समय इसके फलो की खुदाई कर लेनी चाहिए, फलो की खुदाई से पहले खेत में थोड़ा पानी लगा देना चाहिए, जिससे फलो को जमीन से निकालते समय आसानी हो। फलो की खुदाई कर उन्हें अच्छे से धोकर मिट्टी साफ कर लेनी चाहिए। इसके बाद उन्हें छायादार जगह पर अच्छे से सुखा कर बाजार में बेचने के लिए तैयार कर लेना चाहिए।

पैदावार: चुकंदर के पौधे अलग-अलग किस्मो के आधार पर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 150 से 300 क्विंटल की पैदावार देते हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

शाकों में श्रेष्ठ बथुआ

हर्षित मिश्रा एम.एस.सी. (कृषि) कृषि अर्थशास्त्र
नीरज वर्मा एम.एस.सी. (कृषि) कृषि अर्थशास्त्र
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

सर्दियों के समय सब्जी मंडियों में पत्तेदार साग की किस्मों की भरमार हो जाती है। इन सब्जियों में से एक अब तक अवांछित खरपतवार है, जिसे गेहूं के खेतों से निकाला जाता है। आमतौर पर हिंदी में बथुआ के रूप में जाना जाता है, गुजराती में चील भाजी, तमिल में परुप्पु कीरई, बंगाली में चंदनबेथु और मलयालम में वास्तुविरा आदि नामों से जाना जाता है।

बथुआ भारत के इतिहास में काफी महत्व रखता है। इसके प्राचीन मौसमी हरे रंग को ध्यान में रखते हुए, बथुए को अन्य साग की तरह ही तैयार किया जाता है। इसके समृद्ध स्वाद और स्वास्थ्य गुणों को देखते हुए व्यापक रूप से इसका सेवन किया जाता है। बथुए के साग की सबसे ज्यादा खेती राजस्थान और हिमाचल के क्षेत्रों में होती है इसके अलावा इसकी कुछ खेती मैदानी क्षेत्रों में भी किया जाता है जहाँ काफी लोकप्रिय है, जहां से देश भर में साग पहुँचाया जाता है। बथुआ के पत्ते सर्दियों के महीनों में 4,700 मीटर तक की ऊंचाई पर विशेष रूप से पाए जाते हैं। यह खरपतवार 15-20 सेंटीमीटर लंबा होता है और इसमें हंस के पैर की तरह चौड़ी पत्तियां होती हैं। पत्तियों के आकार के कारण, इस पौधे को वैज्ञानिक शब्दावली में **white goose-foot** या चेनोपोडियम एल्बम भी कहा जाता है, जो कि एक ग्रीक शब्द है जिसमें चेन का अर्थ है हंस और पोडियन का अर्थ पैर।

इसके ताजे पत्ते, जिनका स्वाद थोड़ा नमकीन होता है, का उपयोग विभिन्न पारंपरिक व्यंजन बनाने के लिए किया जाता है। गरमा गरम बथुआ-भरवां पराठे, भाजी और बथुआ रायता उत्तर भारत के अधिकांश हिस्सों में खाए जाने वाले कुछ लोकप्रिय व्यंजन हैं। बथुआ अपने भरपूर फाइबर सामग्री और औषधीय गुणों के लिए जाना जाता है। आयुर्वेद में यह खांसी, दस्त, बुखार और भूख न लगने जैसी स्थितियों के लिए लाभदायक माना जाता है। इसका प्रतिदिन सेवन करने पर हार्ट अटेक, कैंसर और सास सम्बन्धित बीमारियों के साथ-साथ खून की कमी को दूर करने में भी मदद करता है।

बथुए में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्व

- विटामिन ए और डी
- फॉस्फोरस
- कैल्शियम
- पोटैशियम
- नाइट्रोजन
- कार्बोहायड्रेट
- लौह तत्व
- कैरोटिन
- खनिज लवण
- थायेमिन

जर्नल ऑफ फार्माकोग्नॉसी एंड फाइटोकेमिस्ट्री में प्रकाशित 2014 के एक अध्ययन से पता चलता है कि पौधे के मेथनॉल अर्क में एंटी-बैक्टीरियल गुण होते हैं और यह स्टैफिलोकोकस एपिडर्मिडिस, बैसिलस सबटिलिस, स्टैफिलोकोकस ऑरियस और एस्चेरिचिया कोलाई के विकास को रोक सकता है। कुछ लोग तो पत्तियों को सुखा भी लेते हैं और उन्हें साल भर अपने आहार में शामिल करने के लिए स्टोर करके रखते हैं और अब सलाद में भी बथुआ का उपयोग कर रहे हैं। बथुआ भारत में पाई जाने वाली चेनोपोडियम की 21 प्रजातियों में से एक है। इसके मूल देश की अभी तक पहचान नहीं की गई है, लेकिन यह पेरू और बोलीविया में उगने वाले क्विनोआ से संबंधित है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आई ए आर आई), दिल्ली के प्रमुख वैज्ञानिक रमेश कुमार यादव कहते हैं, लोग इसे अक्सर खाते हैं, लेकिन यह इतनी आसानी से उपलब्ध है कि वे इसे महत्व नहीं देते हैं। हालांकि यह सब्जी मंडियों में लगभग 40 रुपये से 100 रुपये प्रति किलोग्राम के बीच बिकता है और यह कम पानी और कम खर्च में अच्छा लाभ देने वाली फसल है। बथुआ को मिट्टी के पोषक तत्वों को समाप्त करने, बड़ी संख्या में बीज पैदा करके तेजी से फैलाने, सभी प्रकार की परिस्थितियों में खुद को स्थापित करने और फसल कीटों के वैकल्पिक पनाह के रूप में कार्य करते हुए अन्य पौधों के अंकुरण और विकास को दबाने की क्षमता के कारण एक खरपतवार माना जाता है। अनुमानित है कि बथुआ से फसल की पैदावार में 90 फीसदी से ज्यादा का नुकसान हो सकता है लेकिन अब खाद्य फसल के रूप में इसकी मांग और इसके पौष्टिक गुणों को देखते हुए इस खरपतवार को अपने दम पर फसल के रूप में उगाकर उपयोगी वस्तु में बदला जा सकता है। इसे सुगम बनाने के लिए, शोधकर्ताओं ने पिछले एक दशक में बथुआ की चार किस्में विकसित की हैं, जो उच्च उपज और पोषण लाभ देती हैं। 2016 में, **IARI** के सब्जी विज्ञान विभाग ने बथुआ की 'पूसा ग्रीन' किस्म विकसित की जो कि जंगली किस्म के विपरीत, मजबूत और लंबी है। इसकी पत्तियाँ गहरे रंग की और बड़ी होती हैं जो 18 सेमी लंबी एवं 9 सेमी चौड़ी और इसमे कुल कैरोटीनॉयड (91.31 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम पत्ते में), आयरन (7.6 मिलीग्राम) और एस्कॉर्बिक एसिड (50 मिलीग्राम) पाया जाता हैं और इसका स्वाद भी लगभग 95 प्रतिशत जंगली बथुआ जैसा होता है। इस किस्म की संभावित उपज 36.8 टन प्रति हेक्टेयर है, जिसे बढ़ते मौसम में कई बार काटा जा सकता है। यह किस्म देर से पकती है और बीमारियों और कीड़ों द्वारा कम प्रभावित होती है। पूसा ग्रीन किस्म को 2018 में दिल्ली में खेती के लिए अधिसूचित किया गया था और सरकारी एजेंसियां बीज विकसित करने की प्रक्रिया में लगी हैं। **IARI** ने एक और किस्म 'पूसा बथुआ-1' विकसित की है, जिसमें बैंगनी रंग के पत्तो के साथ 30 टन प्रति हेक्टेयर की संभावित उपज है। लेकिन अभी तक इसकी खेती के लिए कोई सूचना नहीं आयी है। भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी ने दो किस्में विकसित की हैं-

- हरी पत्तियों वाली 'काशी बथुआ-2' जो प्रति हेक्टेयर 36.7 टन की संभावित उपज और
- बैंगनी-हरी पत्तियों वाली 'काशी बथुआ-4' जो प्रति हेक्टेयर 40.7 टन की संभावित उपज देगी। इन दोनों किस्मों को उत्तर प्रदेश में बुवाई के लिए अधिसूचित किया गया है।

शायद अगले कुछ वर्षों के भीतर, सर्दियों के सब्जी बाजारों में खेती किये गये बथुए की पत्तियाँ दिखायी देगी। वैज्ञानिक तकनीक से बथुआ की उन्नत खेती नीचे दी गयी है-

जलवायु

यह ठंडे मौसम की फसल है और पाले के प्रति काफी सहनशील है। इसमें उच्च तापमान पर जल्दी फूल आने लगते हैं।

बथुआ की खेती के लिए उपयोगी मिट्टी

अधिक्तर क्षेत्र में काले बीज वाला बथुआ खरपतवार के रूप में गेहूं, चना, मेथी आदि के साथ उपजता है। सफ़ेद बीज वाले बथुआ की खेती की जाती है। काले बीज वाला बथुआ, खरपतवार के रूप में हर प्रकार की मिट्टी में पनपता है। अतः आप किसी भी मिट्टी में बथुए की खेती कर सकते है।

कैसे करें खेत की तैयारी

खेत की तैयारी के लिए खेत को अच्छी तरह से 2 और 3 बार जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए अंतिम जुताई से पहले खेत में 5-6 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद मिला देना चाहिए फिर उचित जल निकासी की व्यवस्था करनी चाहिए।

कब करें बथुए की बुआई

इसकी बुआई अक्टूबर, फरवरी, मार्च और कई जगह जून-जुलाई में भी की जाती है। इसका बीज बहुत ही छोटा होता है इसलिए प्रति बीघे में 400 से 600 ग्राम पर्याप्त होता है इसकी बुआई कतारों में और सीधे बिखेर कर भी कर सकते है। बीज को थीरम @ 3 ग्राम/किलोग्राम से उपचारित करें। इसका बीज खेत की मिट्टी में 1.5 सेमी से 2 सेमी तक गहरा लगाना चाहिए जब इसके पौधे 5-6 इंच के हो जाये तब पौधे से पौधे के बीच की दूरी 10 से 14 इंच बना लेनी चाहिए। अन्य पौधे को हटा देना चाहिए।

सिचाई और खरपतवार

बुआई के तुरंत बाद सिचाई कर देना चाहिए इसके पौधे को बहुत ही कम पानी की आवश्यकता होती है फसल लगाने से काटने तक 3 से 4 बार पानी देना पर्याप्त रहता है। फसल को खरपतवार मुक्त रखने के लिए दो से तीन निराई-गुड़ाई करनी पड़ती है अर्थात बुवाई/रोपाई के 30, 45 और 60 दिन बाद जब पौधे छोटे रहे तब खरपतवार को निकलवा देना चाहिए।

कीट और रोग प्रबंधन

बथुए के पौधे में कीटों और रोगों से लड़ने की बहुत ज्यादा क्षमता रहती है साथ ही पाले और सूखे को भी सहन कर सकते हैं। अभी तक इस पर किसी भी प्रकार के रोगों की जानकारी नही मिली है। हालांकि, माहू कभी-कभी नुकसान पहुंचा सकते हैं और मैलाथियान @ 2 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करके नियंत्रित किया जा सकता है। कीड़ों को फसल से दूर रखने के लिए काटने के बाद 5% नीम के बीज की गिरी के अर्क का छिड़काव करें।

फसल की कटाई और कढाई

पहली फसल बीज बोने या रोपाई के 40-45 दिन बाद मिलती है। बाद की कटाई लगभग 20 दिनों के अंतराल पर की जा सकती है और 4-6 कटाई तब तक की जा सकती है जब तक कि फसल फूलने न लगे और पत्तियां उपभोग के लिए अनुपयुक्त हो जाएं। अच्छी विकसित फसल में आसानी से बीज को निकालने के कुछ दिनों की धूप आवश्यक होती है।

उपज: औसतन 35 टन प्रति हेक्टेयर हरी पत्तियाँ प्राप्त होती है।

ISSN-2582-5976

प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थ

पूजा, साधना सिंह एवं ए.के. सिंह

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,

कुमारगंज जिला- अयोध्या-224229 (उ.प्र.)

प्रतिरोधक क्षमता हमारे शरीर को विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचाती है। यह रोग पैदा करने वाले वायरस, वैक्टीरिया आदि से शरीर को लड़ने की क्षमता प्रदान करती है। प्रतिरोधक क्षमता दो प्रकार की होती हैं एक जन्मजात प्रतिरक्षा प्रणाली जो जन्म के साथ होती है और दूसरी अनुकूली प्रतिरक्षा प्रणाली जिसे आप तब विकसित करते हैं जब आपका शरीर रोगाणुओं या रोगाणुओं द्वारा जारी रसायनों के सम्पर्क में आता है।

विभिन्न अध्यनों से यह पता चलता है कि जिन लोगों की रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है उन पर वैक्टीरिया एवं वायरस का हमला घातक नही होता है। मजबूत रोग प्रतिरोधर्क क्षमता हमे वर्तमान समय में फैली कोराना जैसी भयानक बीमारी से भी बचा सकती है। प्रतिरोधक क्षमता के कमजोर होने की सबसे बड़ी वजह है आहार में पोषण की कमी। इसलिए हमें अपने आहार में ऐसे भोज्य पदार्थों को शामिल करना चाहिए जो हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करें। एक मजबूत रोग प्रतिरोधक क्षमता हमें किसी भी वायरस के संक्रमण से बचा सकती है तो आज हम बात करते हैं कुछ ऐसे खद्य पदार्थो के बारे में जिन्हे आहार में षामिल करने को हमारी प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है।

खट्टे फल

खट्टे फलों जैसे नीबू, सन्तरा, ऑवला, करौंदा, अमरूद आदि में बिटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिये विटामिन सी बहुत जरूरी है। क्योंकि यह हमारी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती हैं जिससे हानिकारक वैक्टीरिया, वायरस से लड़ने में मद्द मिलती है। विटामिन सी एन्टी ऑक्सीडेन्ट का कार्य करती है और कोषिकाओं को क्षतिग्रस्त होने से बचाता है।

मसाले

मसाले हमारे भेजन का स्वाद बढ़ाने के साथ ही हमारी प्रतिरोधक क्षमता को भी मजबूत करते हैं। क्योकि मसालों में एंटीवैक्टीरियल, एंटीइन्फ्लामेटरी एवं एंटी ऑकसीडेन्ट के गुण पाये जाते हैं। मसाले जैसे हल्दी, काली मिर्च, जीरा, अजवाइन, मुलेठी, लौंग, अदरक में मौजूद एंटीवायरल गुण सर्दी जुकाम एवं फ्लू से बचाने में मद्द करते हैं। हम मसालें को भोजन के अलावा कई तरह से उपयोग कर सकते हैं जैसे काढ़ा, मसाले वाली चाय एवं चटनी आदि मसाले वाली चाय के लिये दालचीनी, लौंग, काली मिर्च, इलायची को सुखाकर कूट लें और एक डिब्बे में बंद कर के रख लें। जब बिना दूध वाली चाय बनाये तब इस पाउडर को उसमें एक चम्मच डाल दें। इसके अलावा हल्दी को गर्म दूध में मिलाकर इसका इस्तेमाल कर सकते हैं।

हल्दी

हल्दी में एन्टीआक्सीडेंट के गुण पाए जाए हैं हल्दी का उपयोग रक्त को शुद्ध करने, चोट, मोच आदि में किया जाता हैं हल्दी में मौजूद एंटीआक्सीडेंट, एंटीइफ्लामेटरी गुण हमारी पाचन सम्बन्धी समस्याओं को भी दूर करते हैं। हल्दी को गर्म दूध में मिलाकर इसका इस्तेमाल कर सकते हैं।

दालचीनी

कई तरह मेडिकल रिसर्च में यह साबित हुआ है कि दालचीनी के रोजाना इस्तेमाल से हम अपनी प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत कर सकते हैं। दालचीनी में एंटी आक्सीडेंट एवं एन्टीइन्फ्लामेटरी गुण पाए जाते है। इसका उपयोग हम काढ़े मसालें, चाय आदि में कर सकते हैं जिससे हम विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बच सकते है। जुकाम में दालचीनी के पाउडर को षहद के साथ लेने से लाभ मिलता है।

लहसुन

लहसुन एलिसिन नामक यौगिक से भरपूर होती है। जिसका नियमित रूप से सेवन करने पर संक्रमण से दूर रहने की क्षमता बढ़ जाती है। आप लहसुन को दैनिक आहार में अंकुरित अनाज के साथ शामिल कर सकते हैं।

अलसी

अलसी में अल्फालिनोलेनिक एसिड और ओमेगा 3 फैटी एसिड होता है जो हमारी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। ओमेगा 3 गट वैक्टीरिया को प्रभावशाली बनाते है। इस तरह हमारा पाचन तंत्र ठीक रहता है और प्रतिरक्षा तन्त्र मजबूत होता है।

दूध एवं दूध से बने उत्पाद

प्रोबायोटिक्स मतलब गट वैक्टीरिया जो हमारे पाचन तंत्र को स्वस्थ रखता हैं यह हमारे प्रतिरक्षा तंत्र को भी मजबूत बनाता है। इसलिए हमें अधिक से अधिक दूध, दही, छाछ पनीर आदि को अपने भोजन में शामिल करना चाहिए।

हरी पत्तेदार सब्जियां

हरी पत्तेदार सब्जियों में विटामिन सी, विटामिन 'ए' फोलिक एसिड, फाइबर और आयरन अधिक मात्रा में पाये जाते है। जो हमारे भोजन को अधिक पोषण युक्त बनाते हैं। ये हमारे शरीर में पोषण की कमी से होने वाले रोगों से बचाते हैं और शरीर को स्वस्थ रखने के साथ हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को भी मजबूत बनाते हैं।

तुलसी

तुलसी की पत्तियों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का गुण पाया जाता है इसलिए हम तुलसी की पत्तियों को कई तरह से इस्तेमाल कर सकते हैं। जैसे चाय में, काढ़े में आदि। तुलसी की पत्तियां हमें कई तरह की संक्रामक बीमारियो से बचाती हैं।

संतुलित आहार

इन सभी भोज्य पदार्थो के अलावा हमे संतुलित आहार भी लेना चाहिए क्योकि स्वस्थ शरीर के लिए संतुलित आहार बहुत जरूरी है। संतुलित आहार का सेवन हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि प्रतिरक्षा प्रणाली के कुशल कार्य के लिए आवश्यक विटामिन खनिज व अन्य पोशक तत्व पर्याप्त मात्रा में शरीर को मिल रहे हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

नैनो यूरिया लिक्विड

अंकित गुप्ता परास्नातक (कृषि) शस्य विज्ञान विभाग

शुभेन्दु सिंह वाईपी-1,एआईसीआरपी एम निक्रा

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज ,अयोध्या (उ.प्र.)

हाल ही में दुनिया भर के किसानों के लिये भारतीय किसान उर्वरक सहकारी लिमिटेड **(IFFCO)** ने विश्व का पहला नैनो यूरिया लिक्विड उर्वरक तैयार किया है।

भारतीय किसान उर्वरक सहकारी लिमिटेड : यह भारत की सबसे बड़ी सहकारी समितियों में से एक है जिसका पूर्ण स्वामित्व भारतीय सहकारी समितियों के पास है। वर्ष 1967 में केवल 57 सहकारी समितियों के साथ इसकी स्थापना की गई थी, वर्तमान में यह 36,000 से अधिक भारतीय सहकारी समितियों का एक सम्मेलन है, जिसमें उर्वरकों के निर्माण और बिक्री के मुख्य व्यवसाय के अतिरिक्त सामान्य बीमा से लेकर ग्रामीण दूरसंचार तक विविध व्यावसायिक हित निहित हैं। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतीय किसानों को पर्यावरणीय दृष्टिकोण से टिकाऊ विधि से विश्वसनीय, उच्च गुणवत्ता वाले कृषि इनपुट और सेवाओं की समय पर आपूर्ति के माध्यम से समृद्ध होने और उनके कल्याण में सुधार के लिये अन्य गतिविधियों को शुरू करने में सक्षम बनाना।

नैनो तरल यूरिया

- यह यूरिया के परंपरागत विकल्प के रूप में पौधों को नाइट्रोजन प्रदान करने वाला एक पोषक तत्त्व (तरल) है।
- नैनो यूरिया को पारंपरिक यूरिया के स्थान पर विकसित किया गया है और यह पारंपरिक यूरिया की आवश्यकता को न्यूनतम 50 प्रतिशत तक कम कर सकता है।
- इसकी प्रभावशीलता का परीक्षण चावल और गेहूँ जैसी 94 फसलों के लिये 11,000 से अधिक किसानों के खेतों में किया गया है।
- इसके उपयोग से उपज में औसतन 8% की वृद्धि पाई गई है।
- 500 मिली की शीशी एक एकड़ खेत के लिए पर्याप्त होगी। इसकी 500 मिली. की एक बोतल में 40,000 मिलीग्राम/लीटर नाइट्रोजन होता है, जो सामान्य यूरिया के एक बैग/बोरी के बराबर नाइट्रोजन पोषक तत्व प्रदान करेगा।
- परंपरागत यूरिया पौधों को नाइट्रोजन पहुँचाने में 30-40% प्रभावी है, जबकि नैनो यूरिया लिक्विड की प्रभावशीलता 80% से अधिक है।

निर्माण

- इसे स्वदेशी रूप से नैनो बायोटेक्नोलॉजी रिसर्च सेंटर (कलोल, गुजरात) में आत्मनिर्भर भारत

अभियान और आत्मनिर्भर कृषि के अनुरूप विकसित किया गया है।
- भारत अपनी यूरिया की ज़रूरतों को पूरा करने के लिये आयात पर निर्भर है।

महत्व

पौधों के पोषण में सुधार

- नैनो यूरिया लिक्विड को पौधों के पोषण के लिये प्रभावी और कुशल पाया गया है। यह बेहतर पोषण गुणवत्ता के साथ उत्पादन बढ़ाने में भी सक्षम है।
- यह मिट्टी में यूरिया के अत्यधिक उपयोग को कम करके संतुलित पोषण कार्यक्रम को बढ़ावा देगा और फसलों को मजबूत, स्वस्थ और उन्हें कमज़ोर होकर टूटने **(Lodging)** आदि प्रभावों से बचाएगा।
- लॉजिंग **(Lodging)** प्रभाव का अभिप्राय फसलों के ज़मीनी स्तर के पास तनों का झुकना है, जिससे उनकी कटाई करना बहुत मुश्किल हो जाता है तथा उपज की गुणवत्ता में कमी आ सकती है।

पर्यावरण में सुधार

- इफको के अनुसार, भूमिगत जल की गुणवत्ता पर भी इस नैनो यूरिया लिक्विड का सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा जो जलवायु परिवर्तन और सतत् विकास पर प्रभाव के साथ ग्लोबल वार्मिंग में कमी के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है।
- लीचिंग और गैसीय उत्सर्जन के जरिये खेतों से हो रहे पोषक तत्वों के नुकसान से पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन पर असर हो रहा है। इसे नैनो यूरिया के प्रयोग से कम किया जा सकता है क्योंकि इसका कोई अवशिष्ट प्रभाव नहीं है। भारत में खपत होने वाले कुल नाइट्रोजन उर्वरकों में से 82% हिस्सा यूरिया का है और पिछले कुछ वर्षों में इसकी खपत में अप्रत्याशित वृद्धि दर्ज की गई है। वर्ष 2020-21 के दौरान यूरिया की खपत 37 मिलियन मीट्रिक टन तक पहुँचने का अनुमान है। यूरिया के लगभग 30-50% नाइट्रोजन का उपयोग पौधों द्वारा किया जाता है और बाकी लीचिंग, वाष्पीकरण और रन ऑफ के परिणामस्वरूप त्वरित रासायनिक परिवर्तन के कारण बर्बाद हो जाता है, जिससे पोषक तत्वों के उपयोग की क्षमता कम हो जाती है। यूरिया के अतिरिक्त उपयोग से नाइट्रस ऑक्साइड नामक ग्रीनहाउस गैस बनता है जिससे ग्लोबल वार्मिंग में वृद्धि होती है। नैनो यूरिया तरल पर्यावरण हितैषी, उच्च पोषक तत्व उपयोग क्षमता वाला एक अनोखा उर्वरक है जो लंबे समय में प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग कम करने की दिशा में एक टिकाऊ समाधान है, क्योंकि यह नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम कर देता है तथा मृदा, वायु एवं जल निकायों को दूषित नहीं करता है। ऐसे में यह पारंपरिक यूरिया का एक कारगर विकल्प है।

नैनो तरल यूरिया के फायदे

यह किसानों के खर्च के अनुकूल है तथा किसानों की आय बढ़ाने में कारगर होगा। इससे लॉजिस्टिक्स और वेयरहाउसिंग की लागत में भी काफी कमी आएगी। दानेदार यूरिया को किसान खेत में फैलाकर प्रयोग करता हैं। जिससे आधे से भी कम मात्रा पौधों को मिल पाती थी। परंतु नैनो तरह यूरिया में एक अच्छी खासी मात्रा पौधों को मिल पाएगी। नैनो तरल यूरिया उपज बढ़ाने के एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाएगा। जो उपज की गुणवत्ता बढ़ाने का भी कार्य करेगा। धान गेहूं तिलहन और सब्जियां आदि जो भी फसल उगाई जाती है। नैनो तरल यूरिया के प्रयोग से उनकी क्वालिटी में बढ़ोतरी होती है। सबसे बड़ी बात यह है कि नैनो तरल यूरिया के परिचालन में किसानों को जो समस्या उत्पन्न होती थी। अब वह नहीं होगी जैसे कि किसान 20 बोरी दानेदार यूरिया का प्रयोग करता है। तो उसको ट्रैक्टर ट्राली की आवश्यकता पड़ती थी। परंतु वही नैनो तरल यूरिया की बोतल को किसान सरलता से खेत में ले जा सकता है।

वहीं सरकार को भी बड़ी मात्रा में यूरिया के ले जाने के लिए ज्यादा परिचालन कीमत आती थी क्योंकि इसका आवागमन ट्रेन से होता था। अब नैनो तरल यूरिया की बोतलों को ट्रक में ले जाया जा सकता है। जिससे परिचालन लागत कम हो जाएगी और किसानों को सस्ती खाद उपलब्ध हो सकेगी।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

शरद ऋतु में आम के बागों का संरक्षण एक विश्लेषण

डॉ. सूर्य नारायण (एसोसिएट प्रोफेसर)
उद्यान विज्ञान विभाग, कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कॉलेज प्रयागराज (उ.प्र.)

अलीमुल इस्लाम (शोध छात्र)
कृषि प्रसार विभाग शुआट्स,प्रयागराज (उ.प्र.)

फलों का राजा कहे जाने वाला आम मूलत: उष्णकटिबंधीय जलवायु का फल है। परंतु इसकी बागवानी उपोषण जलवायु में भी सफलतापूर्वक की जाती है। इस फल का सबसे अधिक उत्पादन भारत में होता है। फसल की उत्पादकता अन्य कारकों के साथ-साथ जलवायु पर बहुत निर्भर करती है। मौसम में उतार-चढ़ाव फसल की उपज को आर्थिक रूप से अधिक प्रभावित करता है।

उत्तर भारत में आम में पुष्प कलिका विभिन्नीकरण अक्टूबर-नवंबर में होता है अर्थात इन 2 महीनों में निर्धारण होता है कि कौन सी कली पुष्प पैदा करेगी तथा कौन कलिका वानस्पतिक शाखा। वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम के बाद भी अनियमित फलन की समस्या बनी हुई है। फल नियमित नहीं आती स कभी तो वृक्ष बौर से लद जाते हैं और कभी सूने पड़े रहते हैं । बागवान इससे बहुत हतोत्साहित होते हैं। इससे जुड़े रोजगार भी प्रभावित होते हैं। पौधे की दैहिक क्रियाएं जैसे प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, पोषक तत्वों का अवशोषण, कोशिकाओं का बनना तथा उनके आकार में बदलाव आना, हारमोंस का बनना आदि तापमान से सबसे अधिक प्रभावित होती हैं। अत्यधिक सर्दी या गर्मी में पौधे सुसुप्त अवस्था में चले जाते हैं एवं अपने कार्यकीय क्रियाओं को न्यूनतम कर देते हैं । शोधों से निष्कर्ष निकला है कि शरद काल में यदि आम के वृक्षों को किसी भी युक्ति से 7 डिग्री सेल्सियस तापमान से कम अनुभव करने दिया जाए तो फरवरी-मार्च में पुष्प अधिक निकलते हैं । फलों की संख्या में भी वृद्धि होती है । शून्य डिग्री सेंटीग्रेड से कम तापमान नई कोपलो को मार देता है । पुरानी पत्तियों में भी घुलनशील खाद्य पदार्थ जटिल संरचना में परिवर्तित हो जाते हैं जो अनुत्क्रमणीय होते हैं यानी सामान्य तापमान पर भी सरल अवस्था में वापस नहीं आते हैं । इन दशाओं में

बौर आ जाने पर भी फल कम लगते हैं क्योंकि अधिकाधिक पुष्प नर अथवा नपुंसक होते हैं जबकि फल उभय लिंगी पुष्प में ही लगते हैं। कभी-कभी शीत क्षति का अनुभव भी पौधे करते हैं। ऐसी दशा में पौधे की टहनियां ऊपर से नीचे की तरफ सूखने लगती हैस ध्यान न देने पर पौधा उकठ जाता है।

पौधे के शारीरिक तापमान में वृद्धि बागवान निम्न युक्तियों की सहायता से कर सकते हैं।

- पलवार बिछाकर- 200 गेज मोटी काली पॉलीथिन पौधे के चारों तरफ इस प्रकार बिछाना चाहिए कि मृदा की गैस न निकलने पाए। पॉलिथीन ना होने पर पौधे के चारों ओर 3 फीट की चैड़ाई में 6 इंच सड़ी गोबर की खाद बिछाएं तथा इसको अच्छी तरह से दबा दें जिससे मृदा की ऊष्मा बाहर ना आ सके।
- यदि उपर्युक्त व्यवस्था नहीं है तो 15 सेंटीमीटर गहरी जुताई करें तथा ऊपरी मिट्टी को पाटा लगाकर भुरभुरा कर दें। पाटा दबा कर लगाएं। इससे मृदा की अंदर की परत का संपर्क ऊपर की परत से टूट जाता है एवं ऊष्मा संचार रुक जाता है।
- सूखी दशाओं में रूपांतरित अंगूठी विधि से पौधे की गहरी सिंचाई करें।
- बाग के चारों ओर मेड पर घास पात जलाकर धुआं भी कर सकते हैं परंतु यह पर्यावरण हेतु ठीक नहीं है।
- सर्द हवाओं से बचने हेतु बाग के चारों ओर बाड़ का प्रबंध करें।
- छोटे पौधे को बचाने हेतु पुआल या सूखी घास से ढक दें।
- बाग को साफ रखें।
- पौधों को धूप का प्रबंध करें। छाव उत्पन्न करने वाली वस्तुओं को हटाएँ।

किसान भाई उक्त युक्तियों में जो संभव हो अपनाकर अपने बाग या पौधों की सुरक्षा कर सकते हैं। उक्त तकनीकें केवल आम के पौधों हेतु ही नहीं है अपितु सभी लकड़ी दार फल वृक्षों हेत समान रूप से लाभप्रद हैं।

।। श्री गणेशाय नम ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार

खाद बीज एवं कृषि कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

भण्डार गृह में लगने वाले कीट एवं रोकथाम के उपाय

प्रदीप कुमार पटेल
(शोध छात्र), कीट विज्ञान विभाग
अरविन्द कुमार
(शोध छात्र), कीट विज्ञान विभाग
डॉ. पंकज कुमार (सहायक-प्राध्यापक)
कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

फसल के कटाई के बाद सबसे जरूरी काम अनाज भंडारण का होता है। अनाज के सुरक्षित भंडारण के लिए वैज्ञानिक विधि अपनाने की जरूरत होती है, जिससे अनाज को लंबे समय तक चूहे, कीट, नमी, फफूंद आदि से बचाया जा सके। प्रायः खाद्यान्नों में लगने वाले कीट लेपिडोप्टेरा एवं कोलिओप्टेरा ऑर्डर के होते हैं, जो भंडारित अनाज में अधिक नमी और तापमान की दशा में अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं। इनमे से चावल का घुन, अनाज का पतंगा या तितली, छोटी सुरसुरी, दाल भृंग, खपरा बीटल एवं अन्य कीट अत्यधिक हानिकारक है जो दानों को खाकर खोखला कर देते है, एवं अनाज की पौष्टिकता कीड़ों की मलमूत्र, अंडों, मरे हुये कीटों नमी के कारण पैदा हुई फफूंद से नष्ट हो जाती है। भण्डार गृह में लगने वाले कीट अनाज की मात्रा को खत्म कर देते हैं। और इसके साथ-साथ उनके पौष्टिक गुणों को भी नष्ट कर देते हैं।

भण्डार गृह के मुख्य कीट

चावल का घुन: पहचान व लक्षण- इस कीट की सूण्डी तथा प्रौढ़. दोनो ही नुकसान पहुंचाते हैं। परन्तु सूण्डी ज्यादा नुकसान पहुंचाती है। प्रौढ कीट भूरे रंग का लम्बा व बेलनाकार होता है। इसके सिर के आगे लम्बी सूण्ड निकली रहती है मादा कीट दाने में एक छोटा छिद्र बनाकर उसमें अन्डा देती है जिसमें से सूण्डी निकलने के बाद दाने के अन्दर के समस्त भाग को खा जाती है। इस कीट का प्रकोप होने से दाने खोखले हो जाते है और खाने योग्य नही रहते हैं। यह कीट चावल के अलावा गेहूं, मक्का आदि को भी नुकसान पहुंचाता है।

खपरा बीटल: पहचान व लक्षण-इस कीट की सूण्डी ही अकेली नुकसान पहुंचाती है। यह कीट वर्ष भर नुकसान पहुंचाते हैं, परन्तु अधिक नुकसान जुलाई से अक्टूबर महीने में करते हैं। इसकी सूण्डी दाने के भ्रूण वाले भागों को खाती है। ये दाने के अन्दर प्रवेश नहीं करते, बाहर वाले भाग में ही नुकसान करते हैं। इसका प्रौढ़ स्लेटी भूरे रंग का होता है जिसकी लंबाई 2.5 मिमी तथा 2 मिमी होती है। इसका शरीर अंडाकार, सिर छोटा होता है। यह भी गेहूं, चावल, मक्का, ज्वार, जौ आदि को नुकसान पहुंचाते हैं।

दालों का घुन :पहचान व लक्षण- प्रौढ़ कीट लगभग 3.2 मिमी लंबा होता है। इसका शरीर भूरा तथा शरीर आगे की ओर नुकीला तथा पीछे चौड़ा होता है। इस कीट का प्रकोप खेत और भण्डार गृह दोनों जगह होता है इस कीट की सूण्डी नुकसान पहुंचाती है जब फसल खेत में होती है तब ही इसका प्रकोप शुरु हो जाता है। मादा फलियों के ऊपर अण्डे देती है, अण्डे से सूण्डी निकलती है तो यह फली में छेद करके प्रवेश कर जाती है तथा दानों को खाती रहती है। जिस जगह से सूण्डी दानों में घुसती है वह बन्द हो जाता है तथा दाना बाहर से स्वस्थ दिखता है इस तरह से ग्रसित दानें भण्डार गृह में आ जाते हैं।

सुरसुरी: पहचान व लक्षण- सुरसुरी प्रौढ़ गहरे भूरे, काले रंग 2 से 4 मिमी लंबे सिर आगे की ओर सूंड थूथन के रूप में होता है एवं पंख के ऊपर चार छोटे हल्के धब्बेनुमा रचना होती है। यह कीट पूर्ण दानों को नुकसान नहीं पहुंचाता यह केवल कटे हुए दानों या अन्य कीटों के द्वारा ग्रसित दानों को ही नुकसान पहुंचाता है। जब इस कीट की संख्या अधिक हो जाती है तो आटा पीले रंग का हो जाता है और इसमें फफूंद विकसित हो जाता है तथा एक प्रकार की अप्रिय गंध आने लगती है और आटा खाने योग्य नही रहता है।

लघु धान्य बेधक: पहचान व लक्षण- इस कीट की सूण्डी और प्रौढ दोनो ही नुकसान पहुंचाते हैं। इसकी सूण्डी लगभग 2 से 3 मिमी. लम्बी, गंदी सफेद रंग की होती है। और हल्के भूरे रंग का सिर होता है। प्रौढ कीट छोटा बेलनाकार गहरा भूरा अथवा काले रंग के शरीर वाला होता है तथा इसका धड़ नीचे की तरफ होता है। प्रौढ़ दाने में टेढ़े-मेढ़े छेद करके उन्हे पाऊडर में बदल देते है जिसकी वजह से केवल भूसा और आटा ही शेष रह जाता है। यह सूण्डी दाने के स्टार्च को खाती है और केवल छिलके को ही छोड़ती है। इस कीट का आक्रमण गेहूं, चावल, ज्वार, मक्का, बाजरा में अधिक होता है।

अनाज का पतंगा: पहचान व लक्षण- यह सुनहरे भूरे रंग के उडने वाले पतंगे होते हैं, प्रौढ़ 5-7 मिमी लंबे अनाजों की सतहों पर ढेर में लगते हैं। अगले पंख हल्के पीले, पिछले भूरे तथा आखिरी सिरे कुछ नुकीले एवं लंबे बाल युक्त होते हैं। सुंडी एक दानों के भीतर छिद्र करके खाती है और विकसित होकर प्रौढ़ के रूप में निकलती है।

प्रबंधन

कीट प्रकोप के पूर्व बचाव

- गोदामों में नया अनाज रखने के पूर्व उन्हे अच्छी प्रकार साफ-सफाई करके, नीम की पत्तियाँ जलाकर प्रधूमित कर लें या फिर अच्छी प्रकार कई दिन तक धूप दिखाए।
- भंडारित किए जाने वाले अनाज को पूरी तरह से सुखा लें, जिसकी नमी 10 से 15 प्रतिशत के आसपास हो और वह दांतों से तोडने पर कड़क आवाज के साथ टूटे। ■ अनाज धोने वाले वाहनों की साफ-सफाई पर अत्यधिक ध्यान रखें।

कीट प्रकोप के पश्चात उपचार

- जुलाई से अक्टूबर तक अधिक नमी वाले दिनों में 15 से 20 दिन के अंतराल पर कीट प्रकोप की जांच करते रहें।
- हवा-अवरोधी भंडारों में एल्यूमिनियम फॉस्फाइड की एक गोली को 1 टन अनाज में भंडार को 7 दिन तक पूर्णरूपेण हवाबंद रखें।

प्राकृतिक पदार्थों द्वारा संरक्षण

- नीम की पत्तियां व उसका तेल, हल्दी पाउडर, मूंगफली व सरसों का तेल, लौंग, कपूर आदि पदार्थों का प्रयोग करने से उनकी गुणवत्ता में बगैर किसी ह्रास के सुरक्षित रखा जा सकता है।
- गेहूं में राख मिलाकर या फिर नीम की पत्तियां या उनका सूखा चूरा मिलाकर रखा जा सकता है। ■ सूखा गेंहू बीन में भरते समय नमक की डल्लियों की पोटली बनाकर बीच-बीच में डालने से उसमें नमी नहीं बढने पाती तथा आनाज सुरक्षित बना रहता है
- सूजी को अधिक समय तक रखने हमेशा भूनकर ही रखें
- साबुत दालों में 5 ग्राम खाने वाला तेल प्रति किलो मिलाकर रखें

अनाज की सफाई

- अनाज की कटाई के साथ ही उसके उचित भण्डारण की तैयारी शुरू हो जाती है। ■ बाजरा, गेहूँ, मक्का, ज्वार आदि के सिट्टे और बालियाँ जिस बोरे में भर कर रखने हों उस बोरे को पहले से ही एक प्रतिशत मैलाथियाँन के घोल में 10 मिनट भिगो कर अच्छी तरह सुखाएं। ■ तेज धूप में 5 से 6 घंटे सुखाने पर कीड़ों का प्रकोप बहुत कम हो जाता है।
- काटे हुए अनाज को सीधे जमीन पर न रखें, इससे कीड़े और नमी दोनों से अनाज प्रभावित होगा। ■ सूखे हुए अनाज को शाम के समय कोठी में न भरें। ■ सूखे अनाज को पूरी रात खुली हवा में ठन्डा होने दें और सुबह उसे कोठी में भरें
- भण्डारण गृह की सफाई ■ भंडारगृह में छत, फर्श, खिड़कियाँ एवं दरवाजे प्रमुख होते हैं ■ फर्श में कहीं पर भी दरारें हो तो उन्हें सीमेन्ट से भर देना चाहिए। ■ जहाँ तक संभव हो एक पल्ले का दरवाजा रखें। ■ खिड़कियाँ बाहर खुलने वाली हों और ऊँचाई पर हों।

बोरे की सफाई-

- अनाज को जूट के बोरों या कट्टों में भी संग्रह कर सकते हैं, जहाँ तक संभव हो नये बोरों का प्रयोग करें, अगर बोरे पुराने हैं तो उन्हें 1% मैलाथियाँन के घोल में आधे घंटे भिगोंए और कड़ी धूप में 2 से 3 दिन तक उलट पलट कर सुखा लें।
- यह काम गर्मी के मौसम में कर लें तो अच्छा रहेगा। ■ यदि बोरे कहीं से फटे हैं, तो उन्हें सिला लें। ■ अनाज भरने के बाद बोरे का मुंह अच्छी तरह सिल दें।

रसायनों द्वारा कीट नियंत्रण

- ई.डी.बी. एम्पयूल 30 मिली प्रति मीट्रिक टन अनाज के लिए उपयुक्त है। ■ सेल्फोस एल्यूमिनीयम फॉस्फाईड की 3 ग्राम की एक गोली प्रति मीट्रिक टन अनाज के लिए डालें।
- कीटों का आक्रमण कर देने के बाद 3 मिली. की 1 ई.डी.बी. एम्पूल प्रति क्विंटल अनाज की दर से कोठी में डालें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

कृषि उत्पादन में बायोचार का महत्व

रघुनन्दन सिंह खटाना
अक्षिता बडथ्वाल
तरुण कुमार
(पी. एच. डी. शोधार्थी) मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, नैनी कृषि संस्थान
योगेश कुमार अग्रवाल
शोधार्थी, पारि-पुर्नस्थापन वन अनुसंधान केन्द्र, प्रयागराज
सैम हिग्गिनबोटोम कृषि तकनीकि एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

बायोचार उच्च कार्बन उक्त ठोस पदार्थ हैं। वह उच्च तापमान पर तैयार या जाता है, जिसमे ऑक्सीजन अनुपस्थित रहती या कम मात्रा में होती है। यह कहा जा सकता हैं कि यह एक आंशिक अवायवीय प्रक्रिया है। जिसमे किसी भी कार्बनिक ठोस पदार्थ को भिन्न भिन्न तापमान पर रख कर बायोचार को तैयार किया जाता है। बायोचार एक बहुत ही प्रभावशाली उर्वरक है जो कि अवशिषट कार्बनिक पदार्थो कि पायरोलिसिस की प्रक्रिया द्वारा तैयार जाता है। यह एक उभरती हुई तकनीक है, जो कि आधुनिक कृषि उत्पादन के लिए अतिआवश्यक है।

बायोचार मृदा उर्वरक शक्ति बढाने के साथ साथ फसल कि उत्पादकता को भी बढाता है। यह किसानों के लिए एक बहुत ही किफायती और बहुपयोगी तकनीक साबित हो चुकी है। बायोचार कृषि के साथ-साथ पर्यावरणीय दृष्टि से भी उपयोगी साबित हुआ हैं। क्योंकि इसके अनेक पर्यावरणीय महत्व हैं।

बायोचार की कृषि के क्षेत्र में उपयोगिता

मृदा उर्वरता बढ़ाने में

मृदा की उर्वरा शक्ति बायोचार के द्वारा अलग अलग प्रकार से बढ़ती है। जैसे कि मृदा की नमी को रोकने की क्षमता बढ़ना, मृदा घनत्व कम हो जाना, मृदा कि भौतिक-रासायनिक एवं जैविक गुणो का बढ़ जाना इत्यादि मापदंडो पर सकारात्मक प्रभाव होता है। और साथ ही साथ इसके द्वारा उपचारित मृदा की उर्वरा शक्ति अन्य उर्वरक की तुलना में अधिक मापी गयी है। वह फसल की उच्च उत्पादन क्षमता को दर्शाता है। बायोचार की उर्वरा शक्ति उसके तापमान पर आधारित है। समान्यतया बायोचार 300, 400, 500, 600, 700, 800, 900 और 1000 डिग्री सेंटिग्रेड पर तैयार किया जाता है। परन्तु विभिन्न प्रकार के अनुसन्धानों से पता चलता है कि 500-600 डिग्री

सेंटिग्रेड तापमान पर तैयार किया गया बायोचार मृदा की उर्वरा शक्ति के लिए ज्यादा प्रभावशाली होता है। क्योंकि इस तापमान पर बायोचार के पोषक तत्व खत्म नहीं होते है। बायोचार के पोषक तत्व उसके आंतरिक गुणों पर भी निर्भर करते है। परन्तु जब उसको उच्च तापमान पर तैयार किया जाता है तो उसके पोषक तत्वों में कमी आ जाती है। इसलिए 500-600 डिग्री सेन्टीग्रड तापमान पर तैयार क्या गया बायोचार कृषि उपयोग के लिए उच्च कोटि का माना जाता है।

सूक्ष्मजीवों की प्रकृति

बयोचार का उपयोग मृदा में मृदा उपयोगी सूक्ष्मजीवो की संख्या को बढ़ाने में बहुत ही मददगार साबित हो चुका है क्योकि इसकी छिद्रउक्त आंतरिक संरचना सूक्ष्मजीवो के वास स्थान और जनन के लिए बहुत ही उपयोगी होती है। मृदा में उपस्थित अनेक प्रकार के जीव जैसे कि निमेटोड, प्रोटोजोया और अन्य मृदा जीव उन सभी कृषि उपयोगी सूक्ष्मजीवो को अपनी खाद्य श्रखला का हिस्सा बना लेते है जिससे कि मृदा कि उर्वरक शक्ति प्रभावित होती है जिसके फलस्वरूप फसल उत्पादन कम हो जाता है और साथ ही साथ मृदा में सूक्ष्मजैव विविधता भी घट जाती है

फसल उत्पादन क्षमता

अनेक प्रकार के अनुसंधानों से पता चला है कि बायोचार एक बहुपयोगी उर्वरक है। जो उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिससे कि किसानों की आय बढ़ती है और साथ ही साथ पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है। यह मृदा सूक्ष्मजीवों के लिए एक सुरक्षा कवच प्रदान करता है।फसल कि कायिक अवस्था से लेकर उसके परिपक्व होने तक महत्वपूर्ण योगदान देता है। फसल को मौसम के अनुकूल बनाता है तथा फसल अपनी कायिक अवस्था में ही उच्च स्तरीय वृद्धि को दर्शाती है। जिसमें कि पौधे की जड़ से लेकर तना, स्तंभ तक सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। फसल रोपाई के बाद वृद्धि को अलग-अलग अवस्थाओं में मापा भी जा चुका है।

मृदा पोषक तत्वों के ह्रास में सुधार

मृदा में बायोचार का उपयोग करने से मृदा बनावट, छिद्रण, कण आकार, वितरण और घनत्व प्रभावित होता है। बायोचर का उपयोग मृदा की अम्लता को कम कर है। इसके अलावा मृदा कि विद्युत चालकता और धनायन विनिमय क्षमता को बढ़ाता है। मृदा कि अम्लता के बढ़ने से बायोचार की उपयोगिता मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता को पूरा करता है। वह मृदा में पोषक तत्वों की कमी को दूर करता है। बायोचार मृदा कणों से बंधे रहते हैं, इस प्रकार मृदा में बायोचार 100-1000 वर्ष तक उपस्थित रह सकता है, जोकि मृदा कि उच्च उर्वरा शक्ति को दर्शाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बायोचार 100- 1000 वर्षों तक पोषक तत्वों को अपने अंदर समाहित कर सकता है एवं मृदा को एक लम्बे समय तक उपजाऊ बना सकता है।

बायोचार के रूप में कृषि अवशिष्ट का उपयोग

विश्व में प्रतेक वर्ष मिलियन टन के हिसाब से कृषि अवशिष्ट निकलता है जिसको की वह के ज्यादातर देशो में आग के द्वारा जला दिया जाता है। वह बाद में एक अनावश्यक उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है, क्योकि उसके ज्यादातर पोषक तत्व वाष्पिकृट हो जाते है। और कुछ मात्रा में कार्बन एवम् अन्य तत्व शेष बचते है। बयोचार आधारित कृषि पर्यावरणीय स्वाच्छ तकनीकी पर आधारित है, लेकिन भारत में इस तकनीकी के आभाव में किसान कृषि अवशिष्ट को जिसके द्वारा पर्यावरण भी प्रभावित होता है। वह जिस अवशिष्ट को जानकारी के आभाव जलाया जाता है, उसको बयोचार के रूप में अच्छी फसल उत्पादन लेने के लिए कृषि में प्रयोग किया जा सकता है इसके प्रयोग से विभिन्न प्रकार के रासयनिक उर्वरक के प्रयोग से बचा जा सकता है वह कृषि मृदा के लिए बहुत हानिकारक होते है इस प्रकार से अच्छी फसल प्राप्त करके अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। दिन पर दिन रासायनिक उर्वरको के इस्तेमाल से मृदा के भौतिक-रासायनिक और साथ साथ जैविक गुणो पर भी नकारात्मक प्रभाव होता है जिससे कि मृदा कि उर्वरक्ता आंशिक अथवा पूर्ण रूप से प्रभावित होती है। जिससे कि फसल का उत्पादन कम को जाता है इसीलिए किसानो की आय भी प्राभावित होती है यदि वर्तमान में कृषि फसल उत्पादन को देखते है तो 15 वर्ष पहले की उतपादन दर याद आती है जो कि वर्तमान दर से लगभा दोगुना ज्यादा होती थी इसीलिए किसान का जीवन भी खुशहाल था परन्तु वर्तमान में दिन प्रतिदिन अच्छे उत्पादन की लालशा ने किसानो को विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरको का उपयोग करने के लिए मजबूर कर दिया है, जिसके दुष्परिणाम आज हमारे सामने है।

निष्कर्ष

उन पौधों के लिए जिन्हें उच्च पोटाश और ऊंचे पीएच की आवश्यकता होती है, उपज में सुधार के लिए बायोचार का उपयोग मिट्टी के संशोधन के रूप में किया जा सकता है। बायोचार पानी की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं, ग्रीनहाउस गैसों के मिट्टी उत्सर्जन को कम कर सकते हैं, पोषक तत्वों की लीचिंग को कम कर सकते हैं, मिट्टी की अम्लता को कम कर सकते हैं और सिंचाई और उर्वरक आवश्यकताओं को कम कर सकते हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

निम्नवर्गीय फलों से स्वास्थ्य और आय

शुभम शर्मा एम.एस.सी., फल विज्ञान विभाग

डॉ. डी.राम (प्राध्यापक) फल विज्ञान विभाग

जसवंत प्रजापति एम.एस.सी., सब्जी विज्ञान विभाग

विजलेश कुमार, दिवाकर नाथ मिश्रा

एम.एस.सी., फल विज्ञान विभाग

श्वेता चतुर्वेदी शोध विद्यार्थी

फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

सामान्यतः निम्न वर्गीय फलों का उस स्तर पर उत्पादन नहीं हो रहा है जिस स्तर पर हम कर सकते हैंए इसलिए उच्च स्तर पर उत्पादन करना हमारी जिम्मेदारी है। ये निम्न वर्गीय फल यूपी क्षेत्र के लिए सबसे उपयुक्त हैं। किसान सीमित क्षेत्र में उच्च लाभ प्राप्त कर सकता है। खाद्य में विविधता पोषक तत्वों की आपूर्ति करके आहार को संतुलित करती है। कम उपयोग वाले निम्न वर्गीय फल इस अंतर को परिपूर्ण सकते हैं क्योंकि वे सभी प्रकार की मिट्टी पर प्रतिकूल परिस्थितियों में उगते हैं। छोटे फलों की यह ताकत भारत जैसे देश में विशेष रूप से उपयोगी है जहां अधिकांश किसान संसाधन-गरीब हैं और अनुकूल परिस्थितियों में खेती नहीं करते हैं।

फालसा: फालसा ग्रेविया सबिना, क्रालिस एल एक उपोष्णकटिबंधीय फल फसल है जो टिलियासी परिवार से संबंधित है। फालसा में उच्च पोषण मूल्य होता है जिसमें 85.90% नमी, 1.3% प्रोटीन, 0.2% वसाए 14.7% कार्बोहाइड्रेट, आयरन 3.1 मिलीग्राम /100 ग्राम गूदा एस्कॉर्बिक एसिड 22.0 मिलीग्राम/100 ग्रा.गूदा, सोडियम 17.3% होता है। इसके फलों में 50-60% जूस, 15-21% शक्कर और 724 कैलोरी प्रति किलो होता है। फालसा फल एंथोसायनिन और एंटी.ऑक्सीडेंट से भरपूर होते हैं जो मानव शरीर में भारी धातुओं के मुक्त कणों को बेअसर करते हैं। उम्र बढ़ने के कारक को कम करते हैं। इसके फल चिलचिलाती गर्मी के दिनों में हीट स्ट्रोक से बचाने के लिए बेहतर शीतलन प्रभाव डालते हैं। इसके फल सूजन, बुखार और कब्ज को भी दूर करते हैं। यह टॉनिक और कामोद्दीपक गुणों को भी प्रदर्शित करता है और इसे एंटी-माइक्रोबियल, एंटी.एनामैटिक और कैंसर रोधी फल भी माना जाता है।

कैरम्बोला: एवेरोआ कैरम्बोला, ऑक्सालिडेसी परिवार में पेड़ की एक प्रजाति है। चिकनपॉक्स, आंतों के परजीवी, सिरदर्द और अन्य बीमारियों के इलाज के लिए दवा में इस्तेमाल किया जाने वाला कैरम्बोला। कैरम्बोला को स्टार फ्रूट के नाम से भी जाना जाता है। स्टार फल कई पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है। विशेष रूप से फाइबर और विटामिन सी। स्टार फल में फाइबर 3 जी, प्रोटीन 1 जी, विटामिन सी 52%, विटामिन बी 5 4%, फोलेट 3%, तांबा 6%, पोटेशियम 3%, मैग्नीशियम 2 होता है और 28 कैलोरी और 6 ग्राम कार्ब्स परोसें। यह क्वेरसेटिन, गैलिक एसिड और एपिक्टिन सहित स्वस्थ पौधों के यौगिकों का एक उत्कृष्ट स्रोत है। स्टार फ्रूट में पौधों के यौगिकों को फैटी लीवर जोखिम और कोलेस्ट्रॉल को कम करने के लिए दिखाया गया है। लीवर कैंसर को रोकने की उनकी क्षमता के

लिए भी उनका अध्ययन किया जा रहा है। स्टार फल कुछ लोगों में प्रतिकूल प्रभाव पैदा कर सकता है। मुख्यतः इसकी उच्च ऑक्सालेट सामग्री के कारण।

कीवी फल. एक्टिनिडिया चिनेंसिस: या चीनी आंवला, एक्टिनिडिया जीनस में लकड़ी की लताओं की कई प्रजातियों का खाने योग्य बेरी है। कीवी फल में 42.1 कैलोरी, फाइबर 2.1 ग्राम, कैल्शियम 23.5 मिलीग्राम, विटामिन सी 64 मिलीग्राम, बीटा कैरोटीन 35.9 एमसीजी होता है। कीवी फल अपने पोषक तत्वों के कारण कई प्रकार के स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। कीवी विटामिन सीए एंटीऑक्सीडेंट और फाइबर का अच्छा स्रोत हैं।

लुकाट: (एरियोबोट्री जपोनिका) सदाबहार, उपोष्णकटिबंधीय फलों की फसल है। फल विटामिन-ए का एक समृद्ध स्रोत है। 500-2300 आईयू/100 ग्राम। लुकाट कैरोटीनॉयड और फेनोलिक यौगिकों का एक उत्कृष्ट स्रोत हैं जो बहुत सारे स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। लुकाट विटामिन, खनिज, और एंटीऑक्सीडेंट की अपनी एकाग्रता के कारण हृदय स्वास्थ्य को मजबूत कर सकता है। विशेष रूप से, उनके पोटेशियम और मैग्नीशियम रक्तचाप के नियमन और आपकी धमनियों के समुचित कार्य के लिए आवश्यक है। लुकाट ट्राइग्लिसराइड्स, रक्तशर्करा और इंसुलिन के स्तर को कम करके चयापचय स्वास्थ्य में सुधार कर सकते हैं। एक हार्मोन जो ऊर्जा के लिए उपयोग किए जाने के लिए आपकी कोशिकाओं में रक्त शर्करा को स्थानांतरित करने में मदद करता है है और यकृत में एंडोटॉक्सिनए एक प्रकार का भड़काऊ पदार्थ का स्तर काफी कम हो जाता है।

- ड्यूरियन-ड्यूरियो जिबेथिनस आर्द्र जलवायु को तरजीह देता है। ड्यूरियन एरियल विटामिन.सी **33mg/100 g** का समृद्ध स्रोत है। अधिकांश स्वास्थ्य लाभ ड्यूरियन की प्रभावशाली विटामिन और खनिज सामग्री से आते हैं। ड्यूरियन में विटामिन.सीए फोलिक एसिडए थायमिनए राइबोफ्लेविन, नियासिन, बी6 और विटामिन ए जैसे विटामिन होते हैं । ■ कैंसर के खतरे को कम करता है। इसके एंटीऑक्सिडेंट कैंसर को बढ़ावा देने वाले मुक्त कणों को बेअसर कर सकते हैं। एक टेस्ट-ट्यूब अध्ययन में, ड्यूरियन अर्क ने स्तन कैंसर की कोशिकाओं के एक तनाव को फैलने से रोका। ■ हृदय रोग से बचाता है। ड्यूरियन में कई यौगिक कोलेस्ट्रॉल के स्तर और एथेरोस्क्लेरोसिस के जोखिम को कम करने या आपकी धमनियों को सख्त करने में मदद कर सकते हैं। ■ संक्रमण से लड़ता है। इसके छिलके में ऐसे यौगिक होते हैं जिनमें एंटीबैक्टीरियल और एंटी-यीस्ट गुण होते हैं।
- रक्त शर्करा को कम करता है। ड्यूरियन में कई अन्य उष्णकटिबंधीय फलों की तुलना में कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स (जीआई) होता है जिसका अर्थ है कि यह रक्त शर्करा के स्तर को कम कर सकता है।

लीची: लीची चिनेंसिस-सदाबहार उपोष्णकटिबंधीय फल, सुस्वाद फल है। लीची में 80% मैलिक एसिड मौजूद प्रमुख कार्बनिक अम्ल होते हैं। विटामिन सी से भरपूर फल. 40.90 मिलीग्राम/100 ग्राम। जोंक मुख्य रूप से पानी और कार्ब्स से बने होते हैं जो क्रमशः 82% और 16.5% फल बनाते हैं। एक लीची या तो ताजा या सूखी होती है जिसमें 1.5-1.7 ग्राम कार्ब्स होते हैं। लीची में अधिकांश कार्ब्स शर्करा से आते हैंए जो उनके मीठे स्वाद हेतु जिम्मेदार होते हैं। वे फाइबर में अपेक्षाकृत कम हैं।

विटामिन और खनिज

लीची कई विटामिन और खनिजों का एक अच्छा स्रोत हैए जिनमें शामिल हैं-

विटामिन सी: लीची में सबसे प्रचुर मात्रा में विटामिन

कॉपर: लीची तांबे का एक अच्छा स्रोत है। अपर्याप्त तांबे का सेवन हृदय स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

पोटेशियम: एक आवश्यक पोषक तत्व जो पर्याप्त मात्रा में खाने पर हृदय स्वास्थ्य में सुधार कर सकता है। लीची मुख्य रूप से पानी और कार्ब्स से बनी होती है जिनमें से अधिकांश शर्करा होती है। कई अन्य फलों की तुलना में, वे फाइबर में कम होते हैं। वे विटामिन सी में भी उच्च हैं और तांबे और पोटेशियम की अच्छी मात्रा प्रदान करते हैं।

ब्लैक बेरी: ब्लैकबेरी कई स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता है। वे विटामिन और खनिजों से भरे हुए हैं जैसे विटामिन सी, विटामिन के, और मैंगनीज, फाइबर में उच्च, और मस्तिष्क स्वास्थ्य को बढ़ावा दे सकते हैं।

ब्लैकबेरी के स्वास्थ्य लाभ: मीठा ब्लैकबेरी गर्मियों का मुख्य व्यंजन है लेकिन इन बेरी सुंदरियों के लाभ उनके स्वादिष्ट स्वाद से परे हैं। ब्लैकबेरी के प्रभावशाली स्वास्थ्य लाभ हैं सिर्फ एक कप कच्चे ब्लैकबेरी में 320 मिलीग्राम विटामिन सी होता है। विटामिन सी हड्डियों, संयोजी ऊतक और रक्त वाहिकाओं में कोलेजन के निर्माण का अभिन्न अंग है। विटामिन सी भी आपकी मदद कर सकता है-

- घाव भरना, त्वचा को पुनः उत्पन्न करें ■ विषाक्त पदार्थों द्वारा जारी अणु को कम करें ■ लोहे को अवशोषित करें ■ सामान्य सर्दी को कम करें ■ कोलेस्ट्रॉल कम करें ■ नियमित मल त्याग को बढ़ावा देना ■ शर्करा के अवशोषण की दर को धीमा करके रक्त शर्करा के स्तर को प्रबंधित करें ■ खाने के बाद आपको अधिक समय तक भरा हुआ महसूस कराता है ■ स्वस्थ को पोषण देने के लिए ईंधन प्रदान करें
- **ड्रैगन फ्रूट:** ड्रैगन फ्रूट हिलोसेरियस कैक्टस पर उगता हैए जिसे होनोलूलू क्वीन के नाम से भी जाना जाता है जिसके फूल केवल रात में ही खुलते हैं। ड्रैगन फ्रूट में कम मात्रा में कई पोषक तत्व होते हैं। यह आयरन, मैग्नीशियम और फाइबर का भी एक अच्छा स्रोत है ।

फाइबर और मैग्नीशियम की उच्च मात्रा के साथ.साथ बेहद कम कैलोरी सामग्री को देखते हुए ड्रैगन फ्रूट को अत्यधिक पोषक तत्वों से भरपूर फल माना जा सकता है। ड्रैगन फ्रूट एक कम कैलोरी वाला फल है जो फाइबर में उच्च होता है और कई विटामिन और खनिजों की अच्छी मात्रा प्रदान करता है। ड्रैगन फ्रूट में कई तरह के एंटीऑक्सीडेंट होते हैं। ये ऐसे यौगिक हैं जो आपकी कोशिकाओं को अस्थिर अणुओं से बचाते हैं जिन्हें मुक्त कण कहा जाता है जो पुरानी बीमारियों और उम्र बढ़ने से जुड़े होते हैं। ये ड्रैगन फ्रूट पल्प में निहित कुछ मुख्य एंटीऑक्सिडेंट हैं फ्लेवोनोइड्सः एंटीऑक्सिडेंट का यह बड़ाए विविध समूह बेहतर मस्तिष्क स्वास्थ्य और हृदय रोगों के कम जोखिम से जुड़ा है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

मुलेठी की वैज्ञानिक विधि से खेती एवं रोग प्रबंधन

शिवम सिंह, जैशराज यादव
मनीष कुमार मौर्या
(शोध छात्र) पादप रोग विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)
डॉ. राम सुमन मिश्रा
(सहायक प्राध्यापक) आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

मुलेठी की खेती औषधीय फसल के रूप में की जाती है। जिसे अलग अलग जगहों पर अतिमधुरम, इरत्तिमधुरम, यष्टिमधु और मुलहठी के नाम से भी जाना जाता है। मुलेठी का उत्पत्ति स्थान अरब देशों के अलावा ईरान, तुर्किस्तान और अफगानिस्तान को माना जाता है।

इसका पौधा झाड़ीनुमा होता है। जिसकी लम्बाई 2 मीटर तक पाई जाती है। मुलेठी के पौधे में बीज भूमि की सतह से ऊपर लगते हैं। लेकिन ज्यादा उपयोगी इसकी जड़ें होती है।जिसका इस्तेमाल औषधियों के निर्माण में किया जाता है।

मुलेठी की खेती

मुलेठी की जड़ें उदरशूल क्षयरोग, खांसी, श्वासनली की सूजन, गले की खराश, मिरगी और शरीर की अंधरूनी चोट जैसी और भी कई तरह की बीमारियों में बहुत लाभकारी होती है। मुलेठी की जड़ों का इस्तेमाल आयुर्वेदिक चिकित्सा में सबसे ज्यादा किया जाता है। इसकास्वाद मीठा और हल्का अम्लीय होता है। इसकी जड़ों का इस्तेमाल ताजा और सुखाकर किया जाता है। मुलेठी की खेती के लिए हल्की क्षारीय भूमि उपयुक्त होती है। मुलेठी की खेती ज्यादातर ऊँचे प्रदेशों में की जाती है। इसकी खेती के लिए समशीतोष्ण जलवायु को उपयुक्त माना गया है। भारत में इसकी खेती मुख्य रूप से देहरादून, जम्मू-कश्मीर, सहारनपुर और मसूरी में की जाती है। इसकी खेती के लिए सामान्य बारिश की जरूरत होती है।

उपयुक्त मिट्टी

मुलेठी की खेती के लिए उपजाऊ और कार्बनिक पदार्थों से भरपूर रेतीली दोमटमिट्टी की जरूरत होती है। मुलेठी की खेती के लिए भूमि में जल निकासी की सुविधा अच्छी होनी चाहिए क्योंकि जल भराव की वजह से पौधों में रोग लग जाते हैं। इसकी खेती हलकी क्षारीय भूमि में भी की जा सकती हैं। इसकी खेती के लिए मिट्टी का पीएच मान 6 से 8.2 के बीच होना चाहिए।

जलवायु और तापमान

मुलेठी की खेती के लिए उष्ण और समशीतोष्ण दोनों जलवायु उपयुक्त होती है. मुलेठी के पौधे गर्मियों के मौसम में अच्छे से विकास करते हैं। जबकि सर्दी का मौसम इसकी खेती के लिए ज्यादा उपयुक्त नहीं होता। मुलेठी की खेती के लिए 50 से 100 सेटीमीटर वर्षा वाले भाग उपयुक्त होते हैं। मुलेठी के पौधों को विकास करने के लिए सूर्य की सीधी धूप की जरूरत होती है। इसलिए इसे छायादार जगहों में नही उगाना चाहिए। मुलेठी की खेती के लिए तापमान भी काफी अहम होता है। शुरुआत में इसके बीजों के अंकुरण के वक्त 18 से 20 डिग्री तापमान की जरूरत होती है। पौधों के अंकुरण के बाद विकास करने के लिए आदर्श तापमान सबसे उपयुक्त होता है। इसके पौधे सर्दियों में न्यूनतम 5 डिग्री और गर्मियों में अधिकतम 27 डिग्री के आसपास तापमान की जरूरत होती है। इससे कम या ज्यादा तापमान होने पर पौधों के विकास पर प्रभाव पड़ता हैं।

उन्नत किस्में

मुलेठी की भारत में काफी कम उन्नत किस्में हैं। मुलेठी को ज्यादातर भारत में आयात किया जाता है। लेकिन हाल में कृषि वैज्ञानिकों मुलेठी के उत्पादन पर जोर दे रहे हैं और जल्द ही इसकी काफी किस्में प्रचलन में आने वाली हैं।

हरियाणा मुलेठी

मुलेठी की इस किस्म को चैधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार ने तैयार किया है। यह भारत की पहली विकसित की गई किस्म है। जिसकों सम्पूर्ण भारत में उगाया जाता है। इसके पौधे तीन साल के आसपास पैदावार देना शुरू कर देते हैं।जिनका उत्पादन और गुणवत्ता काफी अच्छी होती है। इस किस्म के पौधों पर लम्बी, चैड़ी और गहरे हरे रंग की पत्तियां पाई जाती हैं। इसकी जड़ों की लम्बाई अधिक होती है।जिनमें ग्लिसराइजिक एसिड की मात्रा भी काफी ज्यादा पाई जाती है।

मुलेठी की ये एक स्वदेशी किस्म है। जिसे ईराक, ईरान, चीन और मध्य एशिया में उगाया जाता है। इसका पौधा सामान्य ऊँचाई का होता है, जो ढाई साल बाद पैदावार देता हैं। भारत में इस किस्म की जड़ों को आयात किया जाता है। मुलेठी की इस किस्म को अब उत्तर भारत के पर्वतीय भागों में भी उगाया जाने लगा है।

खेत की तैयारी

मुलेठी की खेती गन्ने की फसल की तरह की जाती है। इसकी खेती के लिए पहले खेत में मौजूद पुरानी फसलों के अवशेषों को हटाकर खेत की मिट्टी पलटने वाले हलों से गहरी जुताई कर दें। खेत की जुताई करने के बाद खेत को कुछ दिनों के लिए खुला छोड़ दें। ताकि सूर्य की तेज धूप से मिट्टी में पाए जाने वाले हानिकारक कीट नष्ट हो जाएँ। उसके बाद खेत में जैविक खाद के रूप में पुरानी गोबर की खाद को डालकर उसे मिट्टी में

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

मिला दें। खाद को मिट्टी में मिलाने के लिए खेत की कल्टीवेटर के माध्यम से दो से तीन तिरछी जुताई कर दें। जुताई के बाद खेत में पानी चलाकर उसका पलेव कर दें। पलेव करने के बाद जब जमीन की ऊपरी सतह हल्की सुखी हुई दिखाई दे तब खेत की फिर से जुताई कर मिट्टी को भुरभुरा बना लें। मिट्टी को भुरभुरा बनाने के बाद खेत में पाटा लगाकर भूमि को समतल बना दें ताकि बारिश के मौसम में खेत में जल भराव की समस्या का सामना न करना पड़े और पैदावार को भी नुकसान ना पहुचे।

बीज की मात्रा और उपचार

मुलेठी की खेती के लिए बीज के रूप में इसकी जड़ों का इस्तेमाल किया जाता हैं। एक एकड़ भूमि में मुलेठी की रोपाई के लिए 100 से 125 किलो जड़ की जरूरत होती है। इसकी जड़ों का चयन करते समय जड़ों की लम्बाई 7 से 9 इंच के बीच होनी चाहिए। इसके बीजों को खेत में रोपाई से पहले उन्हें गोमूत्र से उपचारित कर लेना चाहिए ताकि बीजों के अंकुरण के वक्त किसी भी तरह का कोई रोग दिखाई दे।

बीज रोपाई का तरीका और समय

मुलेठी के पौधे एक बार रोपाई करने के बाद ढाई से तीन साल के आसपास पैदावार देते हैं। इसके कंदों की रोपाई गर्मी और बरसात के मौसम में की जाती है। गर्मियों के मौसम में जहाँ पानी की उचित व्यवस्था हो वहां इसे मध्य फरवरी से मार्च के महीने तक उगा सकते हैं। लेकिन जहां पानी की उचित व्यवस्था ना हो वहां इसे बारिश के मौसम में जुलाई महीने में उगाना अच्छा होता है। मुलेठी की जड़ों की रोपाई गन्ने के कंदों की तरह ही की जाती है। इसके कंदों की रोपाई समतल भूमि में और मेड़ बनाकर की जाती है। समतल भूमि में इसकी रोपाई के दौरान इसे पंक्तियों में लगाया जाता है। इस दौरान प्रत्येक पंक्तियों के बीच तीन फिट के आसपास दूरी रखी जानी चाहिए. और पंक्ति में पौधों के बीच दो फिट के आसपास दूरी होनी चाहिए। मेड़ पर इसके कंदों की रोपाई के दौरान मेड़ों के बीच ढाई से तीन फिट के बीच दूरी होनी चाहए. और मेड़ों पर लगाए गए प्रत्येक पौधों के बीच डेढ़ से दो फिट की दूरी उपयुक्त होती है। मुलेठी के कंदों को दोनों तरह से रोपाई के दौरान 5 से 7 सेंटीमीटर की गहराई में उगाना चाहिए ताकि उनका अंकुरण प्रभावित ना हो पायें।

पौधों की सिंचाई

मुलेठी के कंदों की रोपाई के तुरंत बाद उनकी हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। उसके बाद पौधों के अंकुरित होने तक उन्हें हल्का पानी देते रहना चाहिए। पौधों के अंकुरित होने के बाद सर्दियों के मौसम में उनकी महीने में एक बार सिंचाई करनी चाहिए। गर्मियों के मौसम में पौधों को पानी की थोड़ी ज्यादा जरूरत होती है। इस दौरान पौधों की 10 से 15 दिन के अंतराल में सिंचाई करते रहना चाहिए। बरसात के मौसम में पौधों को सिंचाई की जरूरत काफी कम होती है। इस दौरान पौधों की सिंचाई आवश्यकता के अनुसार ही करनी चाहिए।

उर्वरक की मात्रा

मुलेठी की खेती में उर्वरक की सामान्य जरूरत होती है। इसकी खेती के लिए शुरुआत में खेत की तैयारी के वक्त प्रति हेक्टेयर 15 गाड़ी पुरानी गोबर की खाद को जैविक खाद के रूप में मिट्टी में छिडककर अच्छे से मिट्टी में मिला दें। मुलेठी की खेती औषधीय पौधे के रूप में की जाती है। इसलिए इसमें हो सके तो सिर्फ जैविक खाद का ही इस्तेमाल करना चाहिए लेकिन जो किसान भाई रासायनिक खाद का इस्तेमाल करना चाहते हैं. वो प्रति हेक्टेयर एक बोरा एन.पी.के. को खेत में आखिरी जुताई के वकत छिडककर मिट्टी में मिला दें।

खरपतवार नियंत्रण

मुलेठी की खेती लगभग तीन साल तक की जाती है। इस दौरान इसके पौधों में खरपतवार नियंत्रण प्राकृतिक तरीके से ही किया जाना चाहिए। इसके लिए शुरुआत में पौधों की रोपाई के लगभग एक महीने बाद पौधों की हल्की गुड़ाई कर खरपतवार निकाल देनी चाहिए। उसके बाद पहले साल में दो से तीन महीने के अंतराल में चार से पांच गुड़ाई कर दें और दूसरे साल में पौधों की दो से तीन गुड़ाई काफी होता है। दूसरे साल में पौधों की गुड़ाई मार्च महीने में करनी चाहिए क्योंकि सर्दियों में इसके पौधे की पत्तियां गिर जाती है। जिनका इस्तेमाल पौधों को पोषक तत्व देने के रूप में किया जा सकता हैं। जबकि तीसरे साल में इसके पौधे खुदाई के लिए तैयार हो जाते हैं इसलिए नीलाई की जरूरत काफी कम होती है।

पौधों में लगने वाले रोग और उनकी रोकथाम

मुलेठी के पौधों में काफी कम ही रोग देखने को मिलते हैं लेकिन कुछ कीट जनित रोग होते हैं जो पौधों की काफी नुकसान पहुँचाते हैं। जिनकी रोकथाम रोग लगने पर तुरंत कर देनी चाहिए। कीटों की रोकथाम के लिए रासायनिक कीटनाशक की जगह जैविक कीटनाशकों का इस्तेमाल करना अच्छा होता हैं।

सफेद धब्बा रोग

मुलेठी के पौधों में सफेद धब्बा का रोग जीवाणु जनित रोग है। इस रोग के लगने पर पौधे की पत्तियों पर सफेद रंग के धब्बे दिखाई देने लगते हैं। रोग बढ़ने पर धब्बों का आकार बढ़ने लगता हैं। जिससे पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करना बंद कर देते हैं और पौधों का विकास रूक जाता हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए पौधों पर नीम के काढ़े का छिड़काव करना चाहिए लेकिन अगर रोग अधिक बढ़ जाए तो पोटाशियम बाइकार्बोनेट का छिड़काव पौधों पर करना चाहिए।

हरी सुंडी

मुलेठी के पौधों में लगने वाला ये एक कीं जतनत रोग हैं. इस रोग का प्रभाव पौधे की पत्तियों और कोमल भागों पर देखने को ममलता है. इस रोग की सुंडी पौधे के कोमल भागों को खाकर और उनका रस चूसकर पौधों को नुक्सान पहुँचाती हैं. जजससे पौधा त्तवकास करना बांद कर देता है. इस रोग की रोकथाम के मलए पौधों पर नीम के तेल का तछ्किाव 10 ददन के आंतराल में दो बार करना चादहए.

जड़ गलन

मुलेठी के पौधों में जल गलन का रोग अधिक समय तक खेत में पानी भरे रहने की वजह से लगता है। इस रोग के लगने पर पौधे जल्द खराब हो जाते हैं और पैदावार को काफी नुकसान पहुँचता है। इसकी रोकथाम के लिए खेत में जलभराव की स्थिति न बनने दें।

पौधों की खुदाई

मुलेठी का पौधा रोपाई के लगभग तीन साल के आसपास खुदाई के लिए तैयार हो जाता है। इस दौरान इसके पौधों की खुदाई कर लेनी चाहिए। मुलेठी के पौधों की खुदाई से पहले पौधों में पानी छोड़ देना चाहिए ताकि खुदाई आसानी से की जा सके। पौधों की खुदाई के दौरान उन्हें दो से ढाई फिट की गहराई तक खोदना चाहिए। मुलेठी के पौधों की खुदाई के लिए किसान भाई विशेष हलों का इस्तेमाल करते हैं ताकि मुलेठी की खुदाई में अधिक कठिनाई ना हो। मुलेठी की खुदाई के बाद खेत में कुछ गाठें बच जाती है जो फिर से उग आती है। जिन्हें किसान भाई फिर से खेती के रूप में इस्तेमाल कर सकता हैं। मुलेठी की खुदाई के बाद प्राप्त गांठों को अच्छे से धोकर साफ कर लेना चाहिए। गाठों को साफ करने के बाद उन्हें तेज धूम में कुछ दिन सुखा देना चाहिए और जब गाठों में 10 प्रतिशत पानी शेष बचे तब उन्हें बाजार में बेचने के लिए भेज देना चाहिए।

पैदावार और लाभ

मुलेठी की विभिन्न किस्मों का प्रति एकड़ औसतन उत्पादन 30 से 35 क्विंटल के आसपास पाया जाता है। जिसका बाजार भाव 130 से 180 रूपये प्रति किलो के बीच पाया जाता है। इस हिसाब से किसान भाई एक बार में एक एकड़ से ढाई से तीन साल में चार लाख के आसपास कमाई कर लेता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

मटर के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

रवि शंकर, दीपक सिंह
अभिषेक कुमार, सचिन आर्य
शोध छात्र कीट विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

मटर दलहनी एवं हरी सब्जियों में एक प्रमुख स्थान रखता है। यह देखने में सुन्दर और बाजार की प्रचलित सब्जियों में से एक है। यह सर्दियों में मिलने वाली एक आम सब्जि है। हरे मटर को छीलकर इसके अन्दर के दाने का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन इसके छिलके में भी कई पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसे कई तरीके से खाया जा सकता है, कच्चा, भूनकर या पकाकार, दाल के रूप में तथा सूप बनाकर भी इसको अपने आहार में शामिल किया जाता है।

मटर की कली में कई प्रकार के पोषक तत्व पाये जाते है जिनमें प्रमुख रूप से सुपाच्य प्रोटीन (7.2 ग्रा./100 ग्राम) कार्बोहाइड्रेट (15.8 ग्रा./100 ग्राम), विटामिन सी (9 ग्रा./100 ग्राम) फॉस्फोरस (139 मि.ग्रा./100 ग्राम) एवं लोहा, जिंक, मैंग्नीज, कॉपर आदि जो कि मनुष्य को कई प्रकार की बीमारियों से बचाने में मदद करते है। आज की इस आधुनिक दुनिया में हर तीसरा इन्सान किसी न किसी बीमारी से ग्रसित है इन बीमारियों में मधुमेय एक प्रमुख स्थान रखता है। मटर मधुमेय से पीडित व्यक्तियों के लिए फायदेमंद पाया गया है। क्योंकि, इसकी फली में अधिक मात्रा में फाइबर और प्रोटीन पाया जाता हैं जो कि हमारे शरीर के रक्त में शर्करा की मात्रा को नियत्रिंत करता है जिससे मधुमेय के मरीजो को आराम मिलता है। इसी प्रकार से इसका प्रयोग विभिन्न व्याधियों के उपचार में किया जाता है जिनमें प्रमुख रूप से कैंसर के उपचार, चेहरे के निखार में, वनज कम करने के लिए बालों को झड़ने से रोकने आदि में इनका प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में मटर की जोत का आकार साल दर साल घटता चला जा रहा है, क्योंकि अत्यधिक रोगों एवं कीटों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है जिससे किसान की आय काफी हद तक प्रभावित हो रही है। अतः इसी सन्दर्भ में हम मटर में लगने वाले प्रमुख कीटो एवं उनके प्रबन्धन के बारे जानेगें।

मटर का फली भेदक कीट

क्षति

यह एक बहुभक्षी कीट है जिसका लार्वा (सूंडी) फसल को नुकसान पहुँचाता है। प्रारम्भिक अवस्था में लार्वा पत्तियों

को खाता है और अत्यधिक प्रकोप होने पर पौधा पत्ती रहित हो जाता है। जब पौधों में फल-फूल बनने लगते है तब इस कीट का लार्वा फल में छेद करके मटर के दानों को खाता है और लार्वा का अर्द्ध भाग फल के बाहर ही होता है। प्रभावित फली उपयोग योग्य नहीं रह जाती है। एक लार्वा अपने पूरे जीवन काल तीन से पॉच कलियों को प्रभावित करता है।

तना मक्खी

क्षतिः पौधों के प्रारंभिक अवस्था से ही इस कीट का प्रकोप प्रारंभ हो जाता है। इस कीट की सूंडी और प्रौण फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। सूंडी पौधों के निचले हिस्से के उत्को को खाता है जिसके परिणाम स्वरूप प्रभावित पौधों में फल-फूल नहीं आते तथा अन्ततः पौधा सूख जाता है। इसका प्रौढ़ कीट पत्तियों में छेद कर देता है। जिससे प्रभावित पीली पड़कर गिर जाती है।

लीफ माइनर

क्षतिः इस कीट की सूंडी पत्तियों के ऊपरी भाग एवं निचले भाग के अन्दर टेड़े-मेड़े, सर्पनुमा सफेद रंग के सुरंग बना देते हैं जिसके कारण पत्तियां पूर्णरूप से प्रकाश संश्लेषण नहीं कर पाती है और परिणाम स्वरूप पौधे की वृद्धि प्रभावित होती है। अत्यधिक प्रभावित पत्तियॉ जमीन पर गिर जाती है। इस कीट की वृद्धि के लिए गर्म मौसम उपयुक्त होता है।

घुन

क्षतिः इस कीट की सूंडी फसल के लिए हानिकारक होती है। इसका रंग सफेद कृमि जैसा होता है। इसकी सूंडी फली में सीधा छेद करती है और मटर के दाने को खाकर क्षति पहुँचाता है।

एफिड/माहू/चैपा

क्षति

एफिड पत्ती, पुष्पक्रम एवं मुलायम फली के रस को चूसते है। अत्यधिक आक्रमण होने पर पूरी फली एवं पत्ती काले रंग से घिर जाते है। एफिड पत्तियों एवं तनों पर मीठा लसलसा पदार्थ का श्राव जिसके कारण पौधे के आसपास चीटों की संख्या अधिक होती है।

कीट प्रबन्धन

- ग्रीष्म ऋतु की जुलाई मिट्टी पलट हल से अवश्य करें।
- फसल चक्र अपनाएं
- अन्तवर्ती फसल उगाएं
- खरपतवार का उचित प्रबन्ध करें ।
- फली भेदक कीट के लिए जगह-जगह लकडी की फल्लियां लगा देनी चाहिए जिस पर पक्षी बैठे और कीटों की खा सके।
- क्षतिग्रस्तर फूलों फलो एवं पौधो की हाथ से उखाड़ कर बाहर कर दें।
- नत्रजन की उचित मात्रा फसलों को प्रदान करें।
- फसल की कटाई के बाद फसल अवशेष का उचित प्रबंध करे।
- जब कभी मटर फल भेदक कीट का अण्डा या लार्वा की प्रारम्भिक अवस्था दिख जाए तभी एन.एस.के.ई. 5 प्रतिशत या नीमयुक्त कीटनाशक का प्रयोग करना चाहिये।
- फली भेदक कीट के लिये एन.पी.वी. (न्यूक्लियर पोलीहेड्रोसिस वायरस) का छिड़काव 250, एल.ई./हे. की दर से करें।
- फली भेदक कीट के रोकथम के लिये 400 ग्राम या 400 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से बैसिलस युरिन्जिरण्सिस का छिड़काव तीन बार एक सप्ताह के अन्तराल पर करें।
- लीफमाइनर फली भेदक, आदि कीटों के लिये क्लोरोपायरिफॉस 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर प्रयोग करें।
- यदि फसल पर फली भेदक कीट का अत्यधिक प्रकोप हो तब उस अवस्था में स्पाइनोसेड 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी या इनडोक्साकार्ब 1 मि. ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें।
- मटर की फल मक्खी के प्रबन्धन के लिये बीज कार्बोसल्फान/40 प्रति किग्रा बीज या यायोमेयोक्सान/ 4 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करें।
- फल मक्खि का ज्यादा प्रकोप होने की अवस्था एसिफैट 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर पर्णिव छिड़काव करें।
- लीफमाइनर एवं एफिड से बचाव के लिये एमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. तथा एसिटामिप्रिड 20 एस.सी. दवा को 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- फल मक्खि प्रभावित क्षेत्र में बीज दर ज्यादा रखें।
- अतः इस प्रकार से कृषक अपनी फसल को कीटो से बचाकर मटर की अच्छी उपज प्राप्त कर सकते है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

सब्जियों को भण्डारित करने के उचित तकनीक

राज कुमार जाखड़, योगेन्द्र मीणा
(विद्यावाचस्पति छात्र) उद्यान विज्ञान विभाग,
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

चंद्रकान्ता जाखड़ (स्नाकोत्तार छात्रा)
शस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि वि.वि., जोबनेर

अमित दूधवाल (स्नाकोत्तर छात्र) मृदा
विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि वि.वि. जोबनेर

पंकज कुमार मीना (स्नाकोत्तर छात्र)
उद्यान विज्ञान विभाग, बनारस हिन्दू वि.वि. वाराणसी

सब्जी उत्पादकों को सब्जियों का अधिक मूल्य लेने के लिये उनका उचित भण्डारण करना अत्यन्त आवष्यक है। अतः सब्जियों का भण्डारण उचित ढंग से किया जाना चाहिये ताकि वे अधिक समय तक बिना खराब हुये रखी जा सके। मुख्य तौर पर सब्जियों का भण्डारण निम्न कारणों से आवष्यक है।

■ उचित भण्डारण सुविधाओं के कारण सब्जियाँ अधिक उत्पादन के समय से निम्न उत्पादन के समय तक समान रूप से बाजार में उपलब्ध कराई जा सकती है। ■ अधिकतर सब्जियाँ अपने-अपने मौसम में मिलती है। मौसम व्यतीत होने पर उनकी बाजार में उपलब्धि दुर्लभ हो जाती है। यदि उनका उचित भण्डारण कर लिया जाये, तो उन्हे बे-मौसम भी उपलब्ध कराया जा सकता है। ■ उचित भण्डारण विधियों द्वारा सब्जियों की नियमित पूर्ति के लिये बाजार में सिक्का जमाया जा सकता है। ■ यदि सब्जियों की मांग न होने पर बाजार में भेजा जाता है तो कृषक को हानि उठानी पड़ती है क्योंकि सब्जियों के बाहुल्य से उनका मूल्य कम मिलता है। ■ उचित भण्डारण के फलस्वरूप ही, सब्जियों की बाजार में मांग होने पर उनसे अधिक मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। ■ आलू और शकरकन्द जैसी सब्जियों को सुगमता से भण्डारित किया जा सकता है और बे-मौसम में उन्हें भोज्य पदार्थ की पूर्ति के लिये उपयोग किया जा सकता है। ■ भण्डारण के कारण बाजार में सब्जियों का अनावष्यक बाहुल्य नहीं हो पाता है और उन्हे दूरस्थ बाजारों मे भी भेजा जा सकता है।

भण्डारण के सिद्धान्त

■ यदि तापमान अनुमति दे तो संवातन में वृद्वि करके अधिक आर्द्रता को कम किया जा सकता है। ■ भण्डार गृह में कैल्सियम क्लोराइड खोलकर रखनें में अधिक आर्द्रता में कमी की जा सकती है क्योंकि कैल्सियम क्लोराइड नमी को सोख लेता है।

तापमान: सब्जियों के समुचित भण्डारण के दौरान उचित तापमान को बनाये रखना अत्यन्त आवष्यक है। 100 सेल्सियस के आसपास का तापमान हिमकरण के बिना नियन्त्रित किया जा सकता है, जो अधिकांष सब्जियों के भण्डारण के समय उचित रहता है। यदि भण्डारण के दौरान कम तापमान विषेषकर हिमकरण से सब्जियों को काफी क्षति पहुँच सकती है। जबकि अधिक तापमान रासायनिक परिवर्तनों एवं श्वसन के कारण ऊतकों को हानि पहुँचा सकता है जिसके कारण उन पर हानिकारक जीवाणु और फफूंदी उग सकते हैं। इनके कारण सब्जियाँ खाने के काम में नहीं आती है।

सब्जियों के गुण व दशा: भण्डारण के लिये भण्डार में रखी जाने वाली सब्जियाँ उत्तम गुण वाली होनी आवष्यक है। कहने का अभिप्राय यह है कि कटी-फटी, खरोंच लगी, कीट या रोगग्रस्त सब्जियों का भण्डारण कदाचित न करें अन्यथा अच्छी सब्जियों के भी खराब होने का भय रहता है। फूलगोभी और बन्दगोभी जैसी फसलों के अधिक समय तक खराब न होने के गुण मौजूद होना और प्याज और लहसुन जैसी फसलों को जल्दी काट लिया जाना अत्यन्त आवष्यक है, जबकि काषीफल और आलू को पूर्ण परिपक्वता की दषा में भण्डारित करना अधिक अच्छा रहता है। सब्जियों को कच्चा न तोडें और तभी तोडें जब वे पूर्ण रूप से विकसित हो जाऐं। कुछ सब्जियों को उस स्थिति में तोडें जब वे पक जाएँ या पकने की स्थिति में हो।

सब्जियों के लिये संतुलित तापमान एवं आपेक्षिक आर्द्रता

सब्जी	तापमान °C	आपेक्षिक आर्द्रता (%)	भंडारण की अवधि (सप्ताह)
आलू	30-44	85	34
शक्करकंद	10-12.8	80-90	13-20
बैंगन	10-11.1	92	2-3
टमाटर पके	7.2	90	1
मिर्च (हरी)	7.2	85-90	3-5
बंदगोभी	0.0-1.7	92-95	4-6
फूलगोभी (स्नोबॉल)	0.1-1.7	85-88	7
शलजम	0.0	90-95	8-16
गाजर (पत्तो सहित)	0.0	95	20-24
चुकन्दर (पत्तो सहित)	0.0-1.7	90-95	8-14
प्याज	0.0	70-75	20-24
लहसुन	0.0	65	28-36
खीरा	10-11.7	92	2
खरबूजा (केण्टालूप)	1.7-3.3	80-90	1.5
खरबुजा (हनीड्यू)	7.2	85	4.5
तरबूज	7.2-15.6	80-90	2
करेला	0.6-1.7	85-90	4
सीताफल	1.7-11.6	70-75	24-36
विलायती कद्दू	12.8-15.6	70-75	24-36
मटर हरी	0.0	88-92	2-3
सलाद (लेट्स हैड)	0.0	90-95	3
सलाद	0.0	95	1
भिण्डी	8.9	90	2
धनिया	0.0-1.7	90	5

संवातन: सब्जियों के समुचित भण्डारण के लिये उनके भण्डारण के दौरान ऑक्सीजन काफी मात्रा में उपलब्ध रहनी चाहिये, ताकि कार्बन डाइऑक्साइड और श्वसन उत्पादन जैसे अवांछनीय पदार्थ और साथ ही सब्जियों से निकली नमी और ताप, भण्डार गृह में न रहें।

भण्डारण के प्रकार: सब्जियों के भण्डारण को उनके उपयोग और बिक्री के आधार पर निम्नलिखित दो भागों मे बांटा जा सकता है।

घरेलू भण्डारण: इस विधि में उन सब्जियो का भण्डारण किया जाता है, जिन्हें घरेलू उपयोग के लिये इस्तेमाल करना होता है। भारतीय परिस्थितियों में सर्दियों में कुछ सब्जियों को भण्डारित किया जा सकता है, वैसे हरी सब्जियों को 2-3 दिन से अधिक नहीं रखा जा सकता है, गर्मियों में अधिक तापमान के कारण उनका भण्डारण तो असम्भव है। गर्मियों में किसी ठंडे, शुष्क कमरें में फर्ष पर कुछ सेमी0 मोटी रेत की एक परत बिछाकर आलू को भण्डारित किया जा सकता है। प्याज और लहूसन को भी इसी भाँति रेत के कारण उन्हें चारों ओर से वायु मिलती रहती है जिसके कारण वे काफी समय तक बिना खराब हुये रखी जा सकती है। अरबी, जिमीकंद, आदि सब्जियों को छायादार स्थानों में गडडे खोदकर उनमें रखकर भण्डारित किया जा सकता है।

शीत भण्डार गृह: सब्जियाँ ताजी अवस्था में अधिक समय तक उपयोग और परीक्षण के लिये उपलब्ध हो सकती है। इनमें प्रषीतन द्वारा तापमान घटाया जाता है और उसे ऐसे तापमान पर नियत्रिंत किया जाता है, जिन पर भण्डारित सब्जियाँ खराब न हों। शीत भण्डार गृह का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें तापमान और आर्द्रता को इच्छानुसार नियन्त्रित किया जा सकता है और बाहरी तापमान का भण्डारित सब्जियों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

सब्जी भण्डारण के लिये ध्यान देने योग्य बातें: थाम्पसन और कैली के अनुसार सब्जियों को भण्डारित करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये-■ दामों में सम्भावित वृद्धि ■ भण्डारण के दौरान सिकुड़ने और सड़ने से होने वाली हानि ■ भण्डारण व्यय ■ दोबारा चुनने और बांधने का व्यय ■ शीत भण्डार गृह से समीप के बाजार तक ले जाने का व्यय।

भण्डारण के दौरान होने वाली हानियां

भार में कमी: भण्डारित सब्जियों के भार में कमी कई बातों पर निर्भर करती है, जिनमें सब्जी लगाने वाला स्थान, खेती की विधियाँ, सब्जी की किस्म और प्रकार प्रमुख है। परीक्षणों से पता चला है कि भारत में भण्डारित सब्जियों के भार में 4-10 प्रतिषत तक की कमी हो जाती है।

सब्जियों के आकार व गुणों में परिवर्तन: खरोंच वाली, रोगग्रस्त सब्जियों को भण्डार गृह में रखने के कारण उनके आकार और गुणों में परिवर्तन हो जाता है। यदि खेत में ही रोग-ग्रस्त सब्जियों को भण्डारित कर दिया जाये, तो भण्डार में रखी सब्जियों में भी रोग फैल जाता है।

उचित भण्डारण: सब्जियों का वैसा ही आकार रखने के लिये यह आवष्यक है कि उनके भण्डारण की उचित व्यवस्था की जाये।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

बैंगन की उन्नतशील खेती

✍ नियाज अहमद, कु. कोमल
(पादप आणविक जीव विज्ञान एवं आनुवंशिक इंजीनियरिंग विभाग)
✍ सिद्धांत गुप्ता (कृषि मौसम विज्ञान विभाग)
✍ गिरिजेश कन्नौजिया
(कृषि प्रसार शिक्षा विभाग), आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौ. वि. वि. कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र)
✍ मो. शहबाज, सरफराज
(कृषि विभाग) इंटीग्रल वि. वि. लखनऊ (उ.प्र.)
✍ हीबा अख्तर, चन्द्रभानु गुप्त
कृषि महाविद्यालय, बख्शी का तालाब, लखनऊ (उ. प्र.)

भारत में बैंगन एक साधारण फसल है तथा विभिन्न जलवायु में उगाया जाता है। उड़ीसा, बिहार, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश सर्वाधिक खेती की जाती है। बैगन के फल में विभिन्न प्रकार के पोषक त्तव जैसे कैल्सियम, फास्फोरस, ऑयरन तथा विटामिन पाया जाता है। यह स्वपरागित फसल है परन्तु कीटो के द्वारा भी परागण होता है। पौधे तथा फल की सामान्य वृध्दी एवं विकास के लिए उचित तापमान 21-30 डिग्री सेल्सियस है, इससे कम तापमान पर वृध्दी पूर्णतः रुक जाती है। बीज अंकुरण के लिए सामान्य तापमान 20-25 डिग्री सेल्सियस है।

चयन विधि द्वारा विकसित उन्नतिशिल किस्में: पूसा पर्पल लाँग, पूसा पर्पल क्लस्टर, जमूनी गोल, बी आर 112, टाइप 3, अर्का कुशुमार, अर्का शील, अर्का शिरिश, मंजरी गोटा, भाग्यमती, ए. आर. यू. 2 सी., मैसूर ग्रीन, अन्नामलाई, पंत सम्राट, एन. बी. डी. 25, को 1, को 2, एम. डी. यू. 1, पी. के. एम. 1, पी. एल. आर. 1, तथा के. के. एम. 1 इत्यादी।

संकरण द्वारा विकसित उन्नतिशिल किस्में- पूसा क्रान्ती, पूसा भैरव, पूसा अनूपम, पूसा उत्तम, पूसा उपकार, पूसा बिंदू, पी. एच. 4, पंजाब बरसाती, पंजाब नीलम, पंजाब सदाबहार, हीसार श्यामल, हीसार जमुनी, पंत रीतुराज, वैशाली, तथा प्रगती इत्यादी।

संस्था द्वारा विकसित उन्नतिशिल एफ 1 किस्में: अर्का नवनीत, पूसा हाइब्रिड 5, पूसा हाइब्रिड 6, पूसा हाइब्रिड 9, एन. डी. बी. एच. 1, एन. डी. बी. एच. 6, ए. बी. एच. 1 तथा ए. बी. एच. 2.

जलवायु: बैगन का फसल कोहरे से अति संवेदनशिल होता है। सफल उत्पादन के लिए लम्बी अवधि के ग्रीष्म जलवायु के साथ 21-27 ? तापमान अनुकूल होता है।

मृदा: बैगन हल्की से भारी चिकनी मिट्टी में उगाया जा सकता है। अगेती फसल के लिए बलुई मिट्टी सर्वश्रेष्ठ होता है जबकी रेतीली दोमट या चिकनी दोमट भारी उत्पादन के लिए अच्छा होता है। 5.5-6.6 पी. एच. पौधे के वृध्दी एंव विकास के लिए अच्छा होता है।

बुवाई का समय: शरद ऋतु के लिए जून जुलाई तथा ग्रीष्म ऋतु के लिए नवम्बर में बुवाई किया जाता है। नवम्बर में बुवाई के लिए रात्री के समय ठंड से बचानी चाहिए, इस समय 6-8 सप्ताह में पौधे मुख्य खेत में स्थानांतरण के लिए तैयार हो जाते है। जून जुलाई के समय में लगभग 4 सप्ताह में पौधे बुवाई के लिए तैयार हो जाते है।

नर्सरी की तैयारी: बीज बुवाई के लिए नर्सरी बेड को 20-25 सेमी. ऊँचा तथा एकांतर में नाली रखना चाहिए। बुवाई से कुछ दिन पहले प्रचुर मात्रा में सडी हुई गोबर की खाद को मिलाये। डैम्पिंग ऑफ रोग से बचाव हेतु बीज बुवाई से 1-2 दिन पूर्व कैप्टान या थीरम को मिट्टी में मिलाये। 200-300 ग्राम बीज की मात्रा का उपयोग कर अंकुरित होने तक गेहूँ के भूसा से नर्सरी को ढक देना चाहिए।

मृदा की तैयारी: अच्छी उत्पादकता वाली फसल होने के कारण इसे अच्छी उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती है। 4-5 जुताई करने के उपरान्त भुरभुरी मिट्टी तैयार करके सडी हुई गोबर की खाद डालना चाहिए।

पौधे से पौधे एवं लाइन से लाइन की दूरी तथा मुख्य खेत में स्थानांतरण: स्वस्थय एवं रोग रहित पौधे का चयन करना चाहिए जो 10-12 सेमी. तथा 3-4 पत्तियों का हो। लम्बे किस्मों वाले बैगन के लिए 60 × 45 सेमी. तथा घने, गोल अथवा अधिक उत्पादकता वाले किस्मों के लिए 75-60 सेमी. और 90 × 90 सेमी. की दूरी रखना चाहिए।

उर्वरक एवं खाद: 100 किग्रा. नत्रजन, 50 किग्रा. फॉस्फोरस, 50 किग्रा पोटाश तथा 25-30 टन गोबर खाद की मात्रा को प्रति है. की दर से दिया जाना चाहिए। इसके अलावा कॉपर फूलो एवं फलो की संख्या में वृध्दी करता है तथा जिंक से फलो का वजन बढता है।

अंतरकर्षण और खरपतवार नियंत्रण: धीमी गती से बढने के कारण बैगन खरपतवार के साथ मुकाबला नहीं कर सकता। इसलिए आवश्यक है कि खरपतवार मुक्त रखा जाये इस समय पौधे के विकासशील जड को किसी भी प्रकार की घाव या हानी से बचाना चाहिए। रासायनिक खरपतवार नाशी जैसे फ्लूक्लोरालीन की 1 किग्रा मात्रा प्रति है. की दर से उयोग करना चाहिए। काली पॉलीथिन से ढकने पर खरपरवार कम उगता है।

सिंचाई: अच्छी उपज के समय से सिंचाई करना आवश्यक होता है, जो कि आदर्श सिंचाई में प्राप्त किया जा सकता है। सर्दीयों में ठंड से बचाव हेतु मृदा में हल्की नमी रखना आवश्यक होता है।

पौध वृद्धक: हार्मोन जैसे 2, 4-डी (2 पी.पी. एम.) यह फलो की संख्या में वृध्दी करता है तथा बीज के बिना निशेचन के ही फल आने लगते है और फल की परिपक्वता समय से पूर्व हो जाती है। इसके अलावा 4 सी.पी.ए. (20 पी.पी.एम.) और एन-मीटाटोलेफ्थ एसिड (0.5%), नेफ्थालिन एसिटिक एसिड (60 पी.पी.एम.), ब्यूटारिक एसिड (30 पी. पी. एम.) का उपयोग फूल एवं फल की संख्या में वृध्दी व विकास के लिए करते है।

कीटों से फसल सुरक्षा

जैसिड कीट: यह हरे रंग के होते है तथा पत्तियो के निचे छुपे होते है, पत्तियों के रस चूस कर उसे कप की आकार में बदल देते है। वयस्क तथा युवक दोनों अवस्थाओ में हानि पहुँचाते है।

बीटल: सुंडी कीट तथा वयस्क कीट पत्तियों को हानि पहुँचाते है। पत्तियों को फीते की तरह बना देते है भूरा रंग विकसित हो जाता है और पौधे मुरझा कर गिर जाते है।

तना और फल छेदक: यह फसल को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाने वाले शत्रु कीट है। कीट उभार पर रहते है तथा फल और तना में छेद कर देते है। फसल में तना का कट कर गिरा होना इनके उपस्थित होने का संकेत है जिसके कारण पौधे बौने रह जाते है तथा फल सड कर गिर जाते है।

नियंत्रण: पौधे के सूखे हुए भाग को काट कर निकाल देना चाहिए और छिद्रित फल को एकत्रित कर मिट्टी की गहराई में दबा देना चाहिए। बचाव हेतु फुल आते समय कार्बारिल 0.025 त्न का छिडकाव करें तथा हर दो सप्ताह पर दुहराये, फल आने पर इसके छिडकाव न करे। उपरोक्त कीटों का नियत्रण भी इसी विधि से करे।

कुटकी: यह लाल रंग के होते है तथा पत्तियों के निचे जाला बना कर रहते है। यह पत्तियों का रस चूस कर पीला कर देते है जिसके कारण पत्तिया गिर जाती है। बचाव हेतु 0.02 त्न मेटॉसिस्टॉक्स या 0.03 त्नमिथयीत पैरॉथीयॉन का कीट दिखते ही छिडकाव करे।

रोग तथा बचाव के तरीके

डैम्पिंग ऑफ: यह रोग अधिक नमि तथा फफूँद लगने से बरसात के दिनो में होता है, नर्सरी में बीजों को जमने पर ही इसका आक्रमण होता है और सम्पूर्ण नर्सरी गिर जाता है।

नियंत्रण: 2 ग्राम प्रति किग्रा की दर से थीरम, कैप्टान या एग्रोसान से बीज उपचारित करे। नर्सरी में जल निकास का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। कॉपर फफूँदनाशी का 2 ग्राम प्रति लिटर पानी के साथ नर्सरी में छिडकाव करें।

छोटा पत्ती रोग: इसके कारण पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है तथा पीलापन होने लगता है, पौधा झाडीदार व छोटा रह जाता है जिसके कारण फल नहीं आता है।

धब्बा रोग: पीले धब्बे हरे पत्तियों में समाहित होते है, पौधे बौने रह जाते है तथा बहुत कम फल आते है।

नियंत्रण: रोगग्रसित पौधे को निकाल देना चाहिए तथा केवल स्वस्थय पौधे ही लगाने चाहिए। रोगी पौधे को उखाड कर रोगहित पौधे लगाने चाहिए। नर्सरी में रोगर की 1 मिली. प्रति लिटर की दर से छिडकाव करे।

फोमोप्सिस झुलसा रोग: इसके कारण पत्तियों पर गहरे भूरे धब्बे पड जाते है। फलो पर नर्म तथा सडन शुरु हो जाता है जो बाद में काला पड जाता है।

नियंत्रण: स्वस्थय पौधे से बीज एकत्रित्र करना चाहिए, थीरम या कैप्टॉफ का 2.5 मिली. प्रति किग्रा बीज को उपचारित करे। डीथेन जेड 78 का 0.2% की सघनता का फफूँदनाशक का 2 ग्राम मात्रा 7-10 दिन के अंतराल पर छिडकाव करे। रोगग्रसित पौधे या फल को जला दे।

फसल तुड़ाई: बैगन का फल जब अच्छी आकार एवं रंग का हो जाये, अविकसित रहे तथा पकाने की गुणवत्ता हो तब तोडना चाहिए। आकर्षक, चमकीला एवं ताजगी भरे फल बाजार में बेचने लायक होता है। फल को डंठल के साथ तोडना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

कृषि में विभिन्न फसलों के अंकुरण को प्रभावित करने के संभावित उपकरण के रूप में बायोचार

गजराज यादव (शोध छात्र)
मृदा एवं रसायन विज्ञान विभाग
शिवम सिंह
विकास कुमार यादव
मनीष कुमार मौर्या
पादप एवं रोग विज्ञान विभाग
नीरज कुमार सह-प्राध्यापक, मृदा एवं रसायन विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौघोगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

अंकुरण एक जटिल और साथ ही विरामित प्रक्रिया है जिसमें नमी के अंत:क्षेपण से कई चरण शामिल होते हैं जो तेजी से एरोबिक श्वसन, प्रोटीन संश्लेषण, भ्रूण के लिए आरक्षित सामग्री को जुटाने और अंत में रेडिकल और कोलॉप्टाइल के फलाव के पूरक होते हैं। पौधे के आगे विकास के लिए अंकुरण को प्राथमिक घटना माना जाता है।

कृषि में हर फसल के मामले में पौधों की स्वस्थ स्थापना और उपज के लिए एकसमान अंकुरण महत्वपूर्ण है, लेकिन यह मौसमी, प्रकाश काल, तापमान में उतार-चढ़ाव, प्रकाश की उपलब्धता और अन्य अजैविक कारकों से प्रभावित होता है जिसमें मिट्टी की उर्वरता की स्थिति, बुवाई की गहराई, मृदा जल क्षमता और ऑक्सीजन की उपलब्धता। आंतरिक या बाहरी कारकों के कारण कुछ समय अंकुरण में गिरावट आती है। आंतरिक कारकों में बीज की निष्क्रियता शामिल होती है जो फसल के आनुवंशिक मेकअप या कठोर बीज कोट के कारण पर्यावरण की अनुकूल परिस्थितियों में भी बीज के उद्भव को रोकती है जबकि बाहरी कारक प्रमुख रूप से मिट्टी की नमी की उपलब्धता, पीएच और विशेष मिट्टी की पोषक स्थिति को शामिल करते हैं। बीज की कम शक्ति, कटाई के बाद के कार्यों के दौरान गलत संचालन, बीज की भ्रूण क्षति और उम्र बढ़ने के कारण अंकुरण प्रतिशत में भी गिरावट आती है। खराब उभार के इन सभी मुद्दों को दूर करने और बीज के अंकुरण को बढ़ाने के लिए, असंख्य सीड प्राइमिंग तकनीकों को हाइड्रो प्राइमिंग (एक विशिष्ट अंतराल के लिए बीज का जलयोजन और निर्जलीकरण), कुछ-प्राइमिंग (बीज भिगोने के लिए आसमाटिक समाधान का उपयोग) स्थापित किया गया है। बायो-प्राइमिंग (बीज को किसी विशिष्ट बायो एजेंट से उपचारित किया जाता है), मैग्नेटो-प्राइमिंग (चुंबकीय विकिरण के लिए बीजों का एक्सपोजर)। इन सभी विधियों का रिटर्न प्राइमिंग की तीव्रता और अवधि, पौधों की प्रजातियों, आसपास के वातावरण और फसल प्रबंधन तकनीकों पर निर्भर करता है। इन सभी भौतिक पूर्व बुवाई उपचारों के अलावा, अब एक उत्कृष्ट कार्बन स्रोत और हवा की अनुपस्थिति में जैविक कचरे के आंशिक भस्मीकरण के माध्यम से उत्पादित जैवचार, नियंत्रित और कृषि परिस्थितियों में बीज के अंकुरण में सुधार के लिए शोधकर्ताओं को आकर्षित कर रहा है। सूत्रीकरण में प्रयुक्त सामग्री के कारण जैवचार की विशेषताओं में बड़ी परिवर्तनशीलता हो सकती है। इसमें उनके लाभकारी परिवर्तन या मृदा बायोटा पर नकारात्मक परिवर्तनों के अनुसार नकारात्मक या सकारात्मक गुण हो सकते हैं। जैवचार बहुत अधिक ध्यान देने का एक स्रोत है क्योंकि कई शोधों के परिणामों ने हर प्रकार की मिट्टी में बीज के अंकुरण को बढ़ावा देने और परिवर्तनशील जलवायु परिस्थितियों में कृषि फसल के उत्पादन पर इसके गतिशील प्रभाव को दिखाया है। बायोचार न केवल अपने उच्च सतह क्षेत्र, कटियन विनिमय क्षमता, सूक्ष्म और स्थूल सरंध्रता, जल धारण क्षमता, कुल मृदा कार्बनिक कार्बन के कारण कुल मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाता है जो मिट्टी के पोषक तत्व प्रतिधारण को सब्सिडी देता है बल्कि पारिस्थितिक कारकों का प्रबंधन भी करता है जिन्हें ठीक करना मुश्किल है। बायोचार को ऊर्जा स्रोत, कार्बन सीक्वेस्टर माना जाता है जो ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को भी कम करता है, फ़ीड स्टॉक की विस्तृत श्रृंखला के माध्यम से अक्षय स्रोत का उत्पादन करता है। मिट्टी की उर्वरता की स्थिति में सुधार और पानी की कमी के प्रति मिट्टी के प्रतिरोध में वृद्धि के माध्यम से जैव चार संरचना और अनुप्रयोग मिट्टी के भौतिक रासायनिक और जैविक व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। पायरोलिसिस प्रक्रिया के दौरान कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम और सोडियम जैसे मूल धनायन बायोचार में जमा हो जाते हैं जो मिट्टी के प्रमुख गुणों और पोषक तत्वों की स्थिति में संशोधन करते हैं। बीज के अंकुरण पर विभिन्न फीड स्टॉक से प्राप्त जैव चार के प्रभाव का निरीक्षण करने के लिए प्रयोगशाला के साथ-साथ खेत में भी कई जांच की गई हैं। मिट्टी के गुणों के समान, जैव चार कुल अंकुरण प्रतिशत, उद्भव की गति और परिवर्तनशील सब्सट्रेट स्थितियों के तहत खेत में अंकुर की स्थापना को प्रभावित करते हैं जो पौधे के प्रदर्शन पर जैव चार के प्रभाव का संकेत भी देते हैं। कुछ मामलों में जैवचार बीज के अंकुरण को प्रोत्साहित करते हैं जबकि कभी-कभी फाइटोटॉक्सिक तत्वों और भारी धातुओं की उपस्थिति के कारण अंकुरण सामान्य से कम हो जाता है। यह स्वयं पोषक तत्वों का स्रोत नहीं है बल्कि इसमें पौधों की वृद्धि के लिए उपयोग करने योग्य कार्बन होता है। कुछ जैव चार में अंकुरण सूचकांकों को स्पष्ट रूप से प्रभावित करने की क्षमता होती है जो मिट्टी की रासायनिक और जैविक स्थिति पर भी उनके प्रभाव को इंगित करता है। जैव चार संशोधन मिट्टी में बढ़े हुए अंकुरण को मिट्टी की असाधारण जल धारण क्षमता, महान पोषक तत्वों की पहुंच और अधिक छिद्र वाले स्थानों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। ऊष्मीय भिन्नता, अम्लता और क्षारीयता, पानी और मिट्टी में ऑक्सीजन की उपस्थिति से अंकुरण विशेष रूप से प्रभावित होता है। जैवचार गैर-केशिका छिद्रों की अतिरिक्त वृद्धि के साथ केशिका जल धारण क्षमता को बढ़ाता है जो अंततः मिट्टी की हवा में सुधार करता है जिसके परिणामस्वरूप एक समान और त्वरित बीज अंकुरण होता है।

निष्कर्ष- अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में बीज के अंकुरण में सुधार करने में संभावित भूमिका निभाने वाली विभिन्न प्रकार की प्राइमिंग विधियां। प्राइमिंग जैविक और अजैविक तनाव की स्थिति में बीज को मजबूत करता है, बुवाई में देरी करता है और अंकुरण को काफी बढ़ाता है। उसी तरह जैवचार से अंकुरण और मिट्टी की भौतिक के साथ-साथ पोषण गुणवत्ता भी बढ़ती है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

धनिया की जैविक खेती

जैश राज यादव (शोध छात्र)
डॉ. एस.के. सिंह (सह.प्राध्यापक)
शिवम सिंह (शोध छात्र)
पाद्प एवं रोग विज्ञान विभाग
गजराज यादव (शोध छात्र), मृदा एवं रसायन विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

धनिया की जैविक खेती का अपना विशेष महत्व है क्योंकि मसाले के रूप में धनिया का उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है धनिया के बीज एवं पत्ते में विटामिन ए प्रचुर मात्रा में पाया जाता है सूखे बीजों में 11.2 प्रतिशत नमी, 14 प्रतिशत प्रोटीन, 16 प्रतिशत वसा, 21.6 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 32.6 प्रतिशत रेशा एवं खनिज (कैल्शियम फास्फोरस एवं लोहा) पाया जाता है। इसे पीसकर या बीज को सीधे आचार, सॉस, मिठाई, करी पाउडर आदि खाद्य पदार्थों को सुगंधित करने के काम में लाते हैं। धनिया के बीजों से आसवन विधि द्वारा तेल निकालकर सुगंधित द्रव्य खुशबूदार साबुन आदि बनाने के काम में लाते हैं।

हरी धनिया का प्रयोग चटनी बनाने तथा साग सब्जी, सूप व सलाद को स्वादिष्ट एवं आकर्षक बनाने के लिए किया जाता है कई आयुर्वेदिक औषधियों में विशेष रूप से अपाचयन, जुकाम और मूत्र से संबंधित रोगों में धनिया या इसके तेल का उपयोग होता है। भारत में इसकी खेती मुख्यता राजस्थान, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक एवं झारखंड में की जाती है। हरी पत्तियों के लिए इसे प्रायः सभी राज्यों में उगाया जाता है। जैविक धनिया की मांग श्रीलंका, जापान, सिंगापुर, इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि विश्व के कई देशों में है। जैविक उत्पादन में अकार्बनिक तत्वों से निर्मित उर्वरक, कीटनाशक, रोग नाशक एवं अन्य रासायनों का उपयोग प्रतिबंधित होता है। इसके स्थान पर गोबर की खाद, वर्मी कंपोस्ट, हरी खाद, जैव रसायन इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। इस लेख में धनिया की जैविक खेती कैसे करें का उल्लेख किया जा रहा है।

उपयुक्त जलवायु

उष्ण एवं मध्य जलवायु वाले क्षेत्रों में जहां तापमान अधिक ना हो और वर्षा का वितरण ठीक हो वहां धनिया की जैविक खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। फूल आते समय अधिक तापमान एवं तेज हवा उत्पादन पर असर डालते हैं।

भूमि का चयन

धनिया की जैविक खेती लगभग सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है बशर्ते उनमें जैविक खाद का उपयोग किया गया हो इसके लिए उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट अच्छे उत्पादन के लिए सर्वोत्तम मानी गई है क्षारीय व हल्की बलुई मिट्टी इसके सफल उत्पादन में बाधक मानी जाती है।

धनिया की जैविक फसल से अधिकतम उत्पादन के लिए खेत को अच्छी तरह जोतकर तैयार कर लें। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें तथा दो जुताई कल्टीवेटर से देकर तुरंत पाटा लगा दें। अंतिम जुताई से पहले 15 से 20 टन गोबर की सड़ी खाद, 5 क्विंटल केचुआँ खाद तथा 200 किलोग्राम नीम की खली प्रति हेक्टेयर की दर से अच्छी तरह मिटटी में या ढैंचा की बुवाई करके 45-50 दिन बाद खेत में पलटाई करके धनिया की बुवाई करें।

उन्नत किस्में

हमारे देश में धनिया की अनेक उन्नत किस्में उपलब्ध है। अतः कृषकों को चाहिए कि केवल उन्नत किस्में ही उगाएं, साथ में अधिक उपज देने वाली और अपने क्षेत्र की प्रचलित तथा रोग रोधी किस्मों का चयन करें। जहां तक संभव हो जैविक प्रमाणित बीज का उपयोग करें। कुछ प्रचलित उन्नत किस्में इस प्रकार है, जैसे- आर सी आर-41, आर सी आर-20, गुजरात धनिया-2 (जी-2), पूसा-360, स्वाति, सी-2, साधना, राजेन्द्र स्वाति, सी एस. 287, को-1, को-2, को-3, आर सी आर-687, आर सी आर. 436, हिसार सुगंध, कुभराज, सिम्पो एस-33, नरेन्द्र धनिया-1, नरेन्द्र धनिया-2 और नरेन्द्र धनिया-3 आदि प्रमुख है।

बुवाई का समय

धनिया मुख्यतः रबी की फसल है। हमारे देश के अधिकतर क्षेत्रों में यह वर्षा पर आधारित फसल है, इसलिए इसे शुद्ध या मिश्रित फसल के रूप में उगाया जाता है। उत्तर भारत में इसे ठन्डे मौसम में उगाया जाता है। जबकि दक्षिणी राज्यों में इसकी खेती दोनों मौसमों में की जाती है। यहाँ साल में एक बार मई से अगस्त और दूसरी बार अक्टूबर से जनवरी तक बुवाई होती है, जबकि उत्तरी राज्यों में धनिया की खेती का सर्वोत्तम समय अक्टूबर से मार्च का द्वितीय सप्ताह है। धनिये की बुवाई का उपयुक्त समय 15 अक्तूबर से 15 नवम्बर तक है।

बीज की मात्रा

धनिया के बीज की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है, की इसे किस विधि से बोया जा रहा है। यदि इसे छिटकवां विधि से बोया जा रहा है, तो 21 से 23 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है, जबकि पंक्तियों में बोने के लिए 12 से 15 किलोग्राम तथा बरानी क्षेत्रों के लिए 20 से 25 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

बीज उपचार

बोने के पहले बीज को पैरों से हल्का दबाकर दो भागों में विभाजित कर लें और धनिया की जैविक खेती हेतु बोने से पूर्व बीजों को जैविक फंफूदीनाशक ट्राइकोडर्मा विरिडी से 8-10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

की दर से बीजोपचारित कर लें। इसके पश्चात् बीजों को जीवाणु कल्चर से उपचारित करें, इसके लिए एक लीटर गर्म पानी में 250 ग्राम गुड़ का घोल बनायें और ठण्डा करने के बाद 600 ग्राम एजोटोबेक्टर कल्चर तथा 600 ग्राम पी.एस.बी. कल्चर प्रति हेक्टयर बीज की मात्रा की दर से मिलायें। कल्चर मिले घोल में बीजों को हल्के हाथ से मिलायें जिससे सारे बीजों पर एक समान परत चढ़ जाये फिर 6-8 घंटे छाया में सुखाकर बुवाई करें। बीजों को पी.एस.बी. कल्चर से उपचारित करने से फास्फेट की बचत होती है। यदि बीजोपचार सम्भव नहीं हो तो ट्राइकोडर्मा विरिडी, एजोटोबेक्टर और पी.एस.बी. कल्चर प्रत्येक की 2.0 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टयर को 40 से 50 किलोग्राम सड़ी गोबर की बारीक खाद में मिलाकर अंतिम जुताई के समय बुरकाव करें।

बुवाई की विधि

धनिया की जैविक खेती के लिए तैयार किए हुए खेत में क्यारियाँ बनाकर उसमें बीज की बुआई करें । धनिया की बुआई हल के पीछे भी कर सकते है। छिटकवॉ विधि से बुआई के बाद बीज पर 1 से 2 सेंटीमीटर मिट्टी चढ़ा दें। पंक्तियों में बुवाई के लिए पंक्तियों के बीच 30 सेन्टीमीटर की दूरी रखें और पौधे से पौधे की दूरी 10 सेंटीमीटर उचित है।

खरपतवार नियंत्रण

फसल को खरपतवारों से मुक्त रखने के लिये बुवाई के 30 से 35 दिन बाद जब पौधे 7 से 8 सेंटीमीटर बड़े हो जाये तब पहली निराई-गुड़ाई करें। दूसरी निराई-गुड़ाई जरूरत पड़ने पर बुवाई के 55 से 60 दिन बाद करें या पंक्तियों के बीच खाली स्थान पर प्लास्टिक सीट बिछा देने से खरपतवार का प्रकोप कम होता है।

सिंचाई प्रबंधन

धनिया की जैविक फसल की बुवाई पलेवा देकर करने पर दो से तीन अतिरिक्त सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई पूर्ण अंकुरण के बाद आवश्यकतानुसार करें और दूसरी शाखा बनते समय बुवाई के 50 से 60 दिन बाद तथा तीसरी दाना बनते समय 90 से 100 दिन बाद करें।

फसल संरक्षण

धनिया की फसल में फूल आने व बाद की अवस्था पर मुख्यतया मोयला, फली छेदक, माहू जैसे कीट का प्रकोप अधिक होता है। इसी प्रकार बिमारियों में उखटा, गठिया, छाछ्या और झुलसा रोग लगता है। इनसे धनिया की जैविक फसल को बचाने के लिये निम्नलिखित उपाय इस प्रकार करना चाहिए।

1. उखटा रोग नियंत्रण के लिये बीजों को ट्राइकोडर्मा 8-10 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करें।
2. धनिया की जैविक फसल में मोयला के नियंत्रण हेतु पीली चैड़ीदार तख्ती पर ग्रीस लगाकर एक हेक्टर खेत में 10 से 15 की संख्या में लगायें या नीम आधारित एजाडिरेक्टिन 1500 पी पी एम का 5.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी (5 लीटर प्रति हेक्टर) की दर से छिड़काव करें।
3. धनिया में चने की फली छेदक कीट का प्रकोप भी होता है , इसकी निगरानी हेतु एक हेक्टर खेत में 5 से 7 अलग अलग जगह पर फेरोमोन ट्रेप लगायें।
4. धनिया की जैविक खेती में माहू कीट के नियंत्रण हेतु वानस्पतिक पदार्थो जैसे- नीम, तुलसी, करंज इत्यादि के पत्तियों के घोल का छिड़काव करें।
5. ब्युवेरिया बैसीयाना फफूंद पर आधारित जीवनाशक है, जो हरी इल्ली माहू, लीफ माईनर, छेदक आदि कीड़ों में रोग फैलाकर उनका नियंत्रण करती है, इसके लिए 4 से 5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। जमीन में प्रयोग के लिए 1 किलोग्राम फफूंद प्रति हेक्टेयर मिट्टी में मिलाना चाहिए।
6. धनिया की जैविक खेती में उकठा रोग नियंत्रण के लिए गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें, स्वस्थ बीज बोएँ और बीज को उपचारित कर बुआई करें तथा खेत में नीम, महुआ या करंज की खली का उपयोग करें।
7. धनिया की जैविक खेती हेतु तना सुजन की रोकथाम के लिए रोग रोधी किस्म जैसे आर सी आर-41 जैसी किस्मों का प्रयोग करें एवं बीज को उपरोक्त विधि से उपचारित करें।

पाले से बचाव

धनिया की फसल में पाले से भी भारी हानि हो सकती है। पाला पड़ने की संभावना नजर आते ही एक हल्की सिचाई कर दे, रात्रि के समय खेत मे चारों और धुआं करके भी फसल को पाले से बचाया जा सकता है। गोबर के उपलों की राख जो प्राय ग्रामीण क्षेत्रों में आसानी प्राप्त हो जाती है, उसका बुरकाव करने से पाला का असर कम हो जाता है।

धनिया की फसल कटाई

धनिया की फसल 90 से 120 दिन में पककर तैयार हो जाती है, जब फूल आना बंद हो जाए तथा बीज के गुच्छों का रंग भूरा हो जाए तब फसल कटाई के लिए तैयार मानी जाती है कटाई के बाद फसल को खलिहान में छाया में सुखाना चाहिए पूरी तरह से सुख जाने पर दानों को अलग करके साफ कर लेते है। इसके बाद दानों को सुखाकर नीम के तेल (एक प्रतिशत घोल में) से उपचारित कर भण्डारण करना चाहिए। बोरियों में भर लेते है।

पैदावार

धनिया की जैविक फसल में पैदावार भूमि की उर्वरा शक्ति, उनकी किस्म व फसल की देखभाल पर निर्भर करती है। लेकिन उपरोक्त उन्नत विधि से धनिया की जैविक खेती करने पर 12 से 18 क्विंटल सिंचित फसल से तथा 9 से 11 क्विंटल प्रति हेक्टेयर बरानी फसल से पैदावार मिल जाती है।

जैविक प्रमाण पत्र

धनिया की जैविक खेती से प्राप्त उपज का अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए जैविक प्रमाण पत्र की आवश्यकता होती है। जैविक प्रमाण पत्र भूमि पर जैविक तरीके से की गई खेती की सत्यता को निर्धारित करते हुए उस भूमि के लिए निर्गत किया जाता है। इसके लिए देश में एपिडा द्वारा अनुमोदित प्रमाणीकरण संस्थाओं से सम्पर्क कर विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त करना चाहिए। जैविक प्रमाणीकरण एकवर्षीय तथा द्विवर्षीय फसल वाली भूमि के लिए 3 वर्षीय कार्यक्रम है। किसान इन वर्षो के दौरान भी अपना उत्पाद जैविक विधि से पैदा कर बाजार में बेच सकता है। जैविक खेती से अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिये छोटे किसानों के समूह के लिए जैविक मापदण्डों का पूर्ण रूप से अनुसरण कर उनको प्रमाण पत्र देने की व्यवस्था भी संस्थानों के सहयोग से विकसित की गई है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

जीरो बजट प्राकृतिक खेती

सुनील कुमार, देवेश पाठक
(शोध छात्र) सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

जीरो बजट प्राकृतिक खेती कृषि की पारंपरिक भारतीय प्रथाओं पर आधारित की जाने वाली खेती है। जिसमें बिना किसी लागत के खेती की जाती है इस खेती में देसी गाय का गोबर और गोमूत्र का प्रयोग किया जाता है। इसमें किसानों को कीटनाशक और रसायनिक उर्वरक के बिना ही खेती करनी पड़ती है जिससे किसान पर किसी अतिरिक्त बाहरी लागत का दबाव नहीं पड़ता है इससे उसकी आय में भी बढ़ोतरी होती है और खेती प्राकृतिक होने के कारण सेहत पर बुरा प्रभाव भी नहीं पड़ता है।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती क्यों?

- जीरो बजट प्राकृतिक खेती प्रदूषण के स्तर को कम करके पर्यावरण के स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करता है। यह कृषि उत्पादन की लागत को कम करने के साथ-साथ मृदा के स्वास्थ्य में भी सुधार करता है
- कीटनाशक और उर्वरक के प्रयोग से जो मानव शरीर और पशु स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है उससे भी बचाता है ।
- यह मृदा जल ,वायु तथा मृदा में उपलब्ध अन्य उपयोगी जीवो के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करता है साथ ही साथ मृदा क्षरण ,जल प्रदूषण और वायु प्रदूषण आदि को भी कम करता है ।
- कम लागत लगने के कारण किसानों की आय को दोगुना करने में भी सहायक है ।
- इस खेती से उगाए गए उत्पाद का स्वाद और गुणवत्ता अच्छी होती है ।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती के प्रमुख चार स्तंभ

- जीवामृत ■ बीजामृत ■ आच्छादन **(mulching)**
- नमी **(Moisture)**

जीवामृत: जीवामृत पानी, स्थानीय गोबर, गौमूत्र,गुड़ और दाल का बेसन और मिट्टी का उपयोग करके बनाया जाता है।

जीवामृत बनाने की विधि

- जीवामृत बनाने के लिए लगभग 200 लीटर क्षमता का बर्तन होना चाहिए और उसमें लगभग 180 लीटर पानी मिला देना चाहिए ।
- बर्तन में 10 किलो गाय का गोबर और 5 लीटर गौमूत्र को उस में मिला देना चाहिए ।
- फिर बर्तन में 2 किलो गुड़ और 2 किलो दाल का वेसन मिला देना चाहिए ।
- मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर छाया में 48 घंटे के लिए छोड़ देते हैं जिससे उसमें किण्वन की क्रिया हो सके।
- फिर 48 घंटे के बाद मिश्रण फसल में छिड़कने के लिए तैयार हो जाता है ।
- अब मिश्रण को 10 गुना पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव कर सकते हैं या फसल में पानी देते समय मिश्रण को पानी के साथ प्रयोग कर सकते हैं जिससे फसल की अच्छी बढ़वार और उत्पादन ज्यादा होता है

- 1 एकड़ जमीन के लिए 200 लीटर मिश्रण की आवश्यकता होती है इस मिश्रण को महीने में दो बार प्रयोग करने से उत्पादन अच्छा होता है ।

बीजामृत

बीजामृत बीज को बीजजनित और मृदाजनित रोगों से बचाने के लिए प्रयोग किया जाता है जिससे फसल का अंकुरण और पैदावार अच्छी हो सके ।

बीजमृत बनाने की बिधि

- बीजामृत बनाने के लिए एक बर्तन में 5 किलो देसी गाय का गोबर, 5 लीटर देसी गाय का मूत्र ,कच्चा दूध आधा लीटर, सादा पानी 5 लीटर और 250 ग्राम चूने की जरूरत पड़ती है ।
- एक बर्तन में देसी गाय का गोबर,गोमूत्र और कच्चे दूध को बताए गए मात्रा के अनुसार 5 लीटर पानी में अच्छी तरह से घोल लेना चाहिए ।
- दूसरे बर्तन में 250 ग्राम चूने को 1 लीटर पानी के घोल में पोटली बना कर छोड़ देना चाहिए ।
- फिर 24 घंटे के बाद दोनों बर्तन के मिश्रण को मिलाकर छान लेना चाहिए जिसमें उसमें मौजूद कचरा बाहर निकल सके ।
- अब बीजामृत बीज शोधन क्रिया के लिए तैयार है ।
- यह मात्रा 100 किलोग्राम धान के बीज शोधन के लिए पर्याप्त है मोटे छिल्के वाली फसल जैसे धान में बीज शोधन की क्रिया में चूने का प्रयोग करना चाहिए ।
- एवं अन्य पतली छिलकों वाली फसल में चूने की जगह गुड़ का प्रयोग करना चाहिए जो कि बीज के ऊपर लेप को चिपकने में सहायता करता है ।

आच्छादन

- यह एक प्रकार की तकनीक है जो मृदा में उपलब्ध नमी को संरक्षण करने के लिए और उसकी प्रजनन क्षमता को बनाए रखने में सहायता करती है ।
- इस प्रक्रिया में मृदा के ऊपर अनेक सामग्री जैसे- भूसा,धान की पराली आदि को जमीन के ऊपर अच्छी तरह से रख कर ढक दिया जाता है जो मृदा नमी को बनाए रखने में मदद करता है और इस प्रक्रिया से खरपतवार भी कम होते हैं ।

नमी

- जीवामृत और आच्छादन के प्रयोग से मृदा में नमी की बढ़ोतरी होती है ।
- पौधों को बढ़ने के लिए अधिक पानी की जरूरत नहीं होती है और पौधे व्हापासा यानी की भाप की मदद से भी बढ़ सकते हैं ।
- यह वह स्थिति है जिसमें हवा और पानी के अणु मृदा में मौजूद होते हैं और इन अणुओ की मदद से पौधों का विकास होता रहता है ।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती के फायदे

- पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखने में सहायक है
- इस खेती से पर्यावरण पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है
- मृदा स्वास्थ्य तथा मृदा की गुणवत्ता में सुधार होता है
- मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ती है ।
- इस खेती में लागत मूल्य कम लगता है जिससे किसान का खर्च कम होता है जो कि किसानों की आय दोगुनी करने में सहायता करता है
- इस खेती से रसायनिक खादों व कीटनाशकों पर होने वाले खर्च से भी बचा जा सकता है ।
- फसल की उत्पादकता में वृद्धि होती है ।
- रसायनिक खाद से उगाए गए उत्पादों की तुलना में अधिक पोषण देता है तथा उनसे होने वाली बीमारियो से भी बचाता है
- यह खेती मानव प्रतिरक्षा **(Immune)** प्रणाली में भी सुधार करता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की भूमिका

पवन सिंह
डॉ. वाई.वी. सिंह
बसंत कुमार दादरवाल
मृदा विज्ञान विभाग, बीएचयू, वाराणसी (उ.प्र.)

मिट्टी के सभी घटकों में से, कार्बनिक पदार्थ शायद सबसे महत्वपूर्ण और सबसे गलत समझा जाता है। कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में पोषक तत्वों और पानी के भंडार के रूप में कार्य करता है, संघनन और सतह क्रस्टिंग को कम करने में सहायता करता है, और मिट्टी में पानी की घुसपैठ को बढ़ाता है। फिर भी इसे अक्सर नज़रअंदाज़ और उपेक्षित किया जाता है आइए मृदा कार्बनिक पदार्थों के योगदान की जाँच करें और बात करें कि इसे कैसे बनाए रखा जाए या बढ़ाया जाए।

कार्बनिक पदार्थ क्या है?

लोग अक्सर कार्बनिक पदार्थों को मिट्टी में समाहित पौधे और जानवरों के अवशेषों के रूप में समझते हैं। वे पत्तियों, खाद, या पौधों के हिस्सों का ढेर देखते हैं और सोचते हैं, 'वाह! मैं मिट्टी में बहुत सारा कार्बनिक पदार्थ मिला रहा हूँ।' यह वास्तव में कार्बनिक पदार्थ है, कार्बनिक पदार्थ नहीं। कार्बनिक पदार्थ और कार्बनिक पदार्थ के बीच अंतर क्या है? कार्बनिक पदार्थ कुछ भी है जो जीवित था और अब या मिट्टी में है। इसे कार्बनिक पदार्थ बनने के लिए, इसे ह्यूमस में विघटित करना होगा। ह्यूमस कार्बनिक पदार्थ है जिसे सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटन की प्रतिरोधी अवस्था में परिवर्तित कर दिया गया है। कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में अस्थिर होते हैं, जैसे-जैसे यह विघटित होता है, रूप और द्रव्यमान आसानी से बदल जाता है। इसका 90% तक अपघटन के कारण जल्दी गायब हो जाता है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ स्थिर है; इसे तब तक विघटित किया गया है जब तक कि यह आगे के अपघटन के लिए प्रतिरोधी न हो जाए। आमतौर पर इसका लगभग 5% ही सालाना खनिज होता है। यह दर बढ़ जाती है यदि तापमान, ऑक्सीजन और नमी की स्थिति अपघटन के लिए अनुकूल हो जाती है, जो अक्सर अत्यधिक जुताई के साथ होती है। यह स्थिर कार्बनिक पदार्थ है जिसका मृदा परीक्षण में विश्लेषण किया जाता है।

मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा: छह इंच (15 सेमी) की गहराई तक मापी गई एक एकड़ (0,4 हेक्टेयर) मिट्टी का वजन लगभग 2 000 000 पाउंड (907 टन) होता है, जिसका अर्थ है कि मिट्टी में 1% कार्बनिक पदार्थ का वजन लगभग 20 000 पाउंड (नौ टन) होगा। प्रति एकड़। याद रखें कि कार्बनिक पदार्थ के एक पाउंड (0,45 किग्रा) को विघटित होने में कम से कम दस पाउंड (4,53 किग्रा) कार्बनिक पदार्थ लगते हैं, इसलिए इसमें कम से कम 200 000 पाउंड (90 टन) कार्बनिक पदार्थ को लागू या वापस करने की आवश्यकता होती है। मिट्टी, अनुकूल परिस्थितियों

में 1% स्थिर कार्बनिक पदार्थ जोड़ने के लिए। प्रैरी वनस्पति (प्राकृतिक वेल्ड-एड) के तहत बनने वाली मिट्टी में, कार्बनिक पदार्थ का स्तर आम तौर पर तुलनात्मक रूप से अधिक होता है क्योंकि कार्बनिक पदार्थों की आपूर्ति शीर्ष वृद्धि और जड़ों दोनों से की जाती थी। हम आमतौर पर जड़ों को जैविक सामग्री की आपूर्ति के रूप में नहीं सोचते हैं, लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) के ऊपरी महान मैदानों में एक अध्ययन से पता चला है कि मिश्रित प्रैरी (वेल्ड-एड) में जमीन के ऊपर (शूट) उपज 1,4 टन थी। प्रति एकड़ जैविक सामग्री की, जबकि जड़ की उपज लगभग चार टन प्रति एकड़ थी। पौधे जड़ों का उत्पादन कर रहे थे जो कि अंकुर के वजन के दोगुने से अधिक थे।

वन वनस्पति के तहत विकसित हुई मिट्टी में आमतौर पर तुलनात्मक रूप से कम कार्बनिक पदार्थ होते हैं। इसके कम से कम दो कारण हैं-

- पेड़ घास के पौधों की तुलना में प्रति एकड़ बहुत कम जड़ द्रव्यमान पैदा करते हैं।
- पेड़ वापस नहीं मरते और हर साल सड़ जाते हैं। इसके बजाय, जंगल में अधिकांश कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में वापस आने के बजाय पेड़ में बंधे होते हैं।

प्रैरी वनस्पति के तहत बनने वाली मिट्टी में आमतौर पर देशी कार्बनिक पदार्थों का स्तर कम से कम दोगुना होता है, जो वन वनस्पति के तहत बनता है।

कार्बनिक पदार्थ के लाभ: पोषक तत्वों की आपूर्ति कार्बनिक पदार्थ पोषक तत्वों का भंडार है जिसे मिट्टी में छोड़ा जा सकता है। मिट्टी में प्रत्येक प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ 20 से 30 पाउंड (9 से 13,6 किग्रा) N, 4,5 से 6,6 पाउंड (2,04 से 2,99 किग्रा) P2O5, और 2 से 3 पाउंड (0,9 से 1,36 kg) सल्फर प्रति वर्ष। पोषक तत्वों का विमोचन मुख्य रूप से वसंत और गर्मियों में होता है, इसलिए गर्मियों की फसलों को सर्दियों की फसलों की तुलना में कार्बनिक पदार्थों के खनिजकरण से अधिक लाभ होता है। कार्बनिक पदार्थ कुछ भी है जो जीवित था और है। अब या मिट्टी पर। इसके लिए जैविक पदार्थ, इसे ह्यूमस में विघटित किया जाना चाहिए।

जल धारण क्षमता: कार्बनिक पदार्थ कुछ हद तक स्पंज की तरह व्यवहार करते हैं, जिसमें पानी में अपने वजन का 90% तक अवशोषित करने और धारण करने की क्षमता होती है। कार्बनिक पदार्थों की जल धारण क्षमता का एक बड़ा लाभ यह है कि यह पदार्थ पौधों को अवशोषित होने वाले अधिकांश पानी को छोड़ देगा। इसके विपरीत, मिट्टी में बड़ी मात्रा में पानी होता है, लेकिन इसका अधिकांश भाग पौधों के लिए उपलब्ध नहीं होता है।

मृदा संरचना एकत्रीकरण: कार्बनिक पदार्थ मिट्टी के गुच्छे बनाते हैं और मिट्टी के समुच्चय बनाते हैं, जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है। बेहतर मिट्टी की संरचना के साथ, पारगम्यता (मिट्टी के माध्यम से पानी की घुसपैठ) में सुधार होता है, बदले में मिट्टी की पानी लेने और धारण करने की क्षमता में सुधार होता है।

कटाव की रोकथाम: कार्बनिक पदार्थों की यह संपत्ति व्यापक रूप से ज्ञात नहीं है। सार्वभौमिक मृदा हानि समीकरण में उपयोग किए गए डेटा से संकेत मिलता है कि मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ को 1 से 3% तक बढ़ाने से पानी की घुसपैठ में वृद्धि और कार्बनिक पदार्थों के कारण स्थिर मिट्टी के समग्र गठन के कारण क्षरण को 20 से 33न तक कम किया जा सकता है।

कार्बनिक पदार्थ के स्तर में सुधार: मृदा कार्बनिक पदार्थ का निर्माण एक लंबी अवधि की प्रक्रिया है लेकिन फायदेमंद हो सकती है। इसे करने के कुछ तरीके यहां दिए गए हैं।

जुताई कम करें या समाप्त करें: जुताई मिट्टी के वातन में सुधार करती है और माइक्रोबियल क्रिया का कारण बनती है जो कार्बनिक पदार्थों के अपघटन को गति देती है। जुताई भी अक्सर क्षरण को बढ़ाती है। नो-टिल प्रैक्टिस कार्बनिक पदार्थ बनाने में मदद कर सकती है।

अपरदन कम करें: अधिकांश मृदा कार्बनिक पदार्थ ऊपरी मिट्टी में होते हैं। जब मिट्टी का क्षरण होता है, तो कार्बनिक पदार्थ उसके साथ चले जाते हैं। मिट्टी और मिट्टी को बचाना कार्बनिक पदार्थ साथ-साथ चलते हैं।

मिट्टी की जांच और सही तरीके से खाद डालें: शायद आपने इस पर विचार नहीं किया होगा। उचित निषेचन पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है, जिससे जड़ वृद्धि में वृद्धि होती है। बढ़ी हुई जड़ वृद्धि मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों को बनाने या बनाए रखने में मदद कर सकती है, भले ही शीर्ष वृद्धि को हटा दिया गया हो।

कवर फ़सलें: कवर फ़सल उगाने से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ बनाने या बनाए रखने में मदद मिल सकती है। हालांकि, सबसे अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं यदि बढ़ती कवर फसलों को जुताई में कमी और कटाव नियंत्रण उपायों के साथ जोड़ा जाता है। मृदा कार्बनिक पदार्थ की अच्छी आपूर्ति फसल या चारा उत्पादन में लाभकारी होती है। इस मूल्यवान संसाधन के लाभों पर विचार करें और आप अपनी मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के निर्माण, या कम से कम बनाए रखने के लिए अपने संचालन का प्रबंधन कैसे कर सकते हैं, इस पर विचार करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

आलू की फसल पर पाले का प्रभाव तथा इससे बचाव

धर्मराज कुमार
(एमएससी सब्जी विज्ञान विभाग)
जसवंत प्रजापति
(एमएससी सब्जी विज्ञान विभाग)
अचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)
डॉ. नीतु कुमारी (सहायक प्राध्यापक)
(सब्जी विज्ञान विभाग) वीर कुंवर सिंह कृषि महाविद्यालय डुमरांव बिहार
अंजली रानी (एमएससी आनुवंशिक और पादप प्रजनन), सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

सर्दियों के मौसम में पाले का असर दिखाई देने लगा है. जिससे आलू की खेती करने वालो किसानों को चिंता सताने लगी है कि कहीं उनकी फसल पाले की वजह से बर्बाद न होने लगे. आलू किसानों की कमर प्रकृति के प्रतिकूल होने से टूटने लगती है. मौजूदा वक्त में बेमौसम बरसात और कोहरे से आलू की फसल बर्बाद हो रही है.

तापमान में गिरावट से किसानों को आलू की फसल पर पाला के प्रकोप की चिंता सताने लगी है. बदलते मौसम से सबसे अधिक आलू की फसल को ज्यादा नुकसान होता है, जबकि चना, सरसों, अरहर, और सब्जी की खेती को कम नुकसान पहुंचता है. इससे आलू की खेती करने वाले किसान काफी परेशान हो रहे हैं. सर्दियों में आलू की फसल पर पाला पड़ने से फसल को पाला झुलसा रोग होता है. इसमें आलू की पत्तियां पीली पड़ने लगती है और सड़ने लगती हैं. वहीं पौधा गल जाता है. ऐसे कई समस्याएं है जिससे आलू की

फसल को नुकसान पहुंच सकता है. माना जाता है कि जब वायुमंडल का तापमान चार से कम होता है, तो पाला पड़ने की संभावना रहती है. ऐसा मौसम दिसंबर से जनवरी के बीच रहता है. हवा न चल रही हो या फिर आसमान साफ हो, तब भी पाला पड़ने की संभावना होती है. ऐसे में पाला पत्तियों पर जम जाता है. इसकी वजह से पत्तियों के नस फट जाती हैं. इसलिए किसान को अपनी फसल बचाने के लिए पहले से तैयार रहना चाहिए.

पाला दो तरह का होता है

एडवेक्टिव

यह पाला तब पड़ता है, जब ठंडी हवाएं चलती है. ऐसी हवा की परत एक-डेढ़ किलोमीटर तक हो सकती है. यह पाला आसमान खुला हो या बादल हों, दोनों परिस्थितियों में गिर सकता है.

रेडिएटिव

जब आसमान बिलकुल साफ हो और हवा न चल रही हो, तब यह पाला गिरता है. जब ये पाला पड़ने की आंशका होती है. तब बादल पृथ्वी के लिए कम्बल की तरह काम करते हैं. हवा न चलने से एक इनवर्शन परत बन जाती है. यह एक ऐसी वायुमंडलीय दशा है, जो सामान्य दिनों की तुलना में उल्टी होती है.

प्रभाव

इसका सबसे अधिक प्रभाव आलू फसल पर ही होगा। लगातार पाला पड़ने से आलू फसल की पत्तियां फटने लगती है। होता यह है कि लगातार मौसम ठंडा होने के चलते वातावरण में वाष्प की बूंदें पत्तियों के सतह पर जमने लगती है। इससे पत्तियों में जो पानी है वह भी जमने लगता था। ऐसे में बर्फ जमने लगता है। पानी जमने से आयतन बढ़ेगा और पत्तियां फटने लगती है। इससे पत्तियों पर घाव जैसा निशान दिखने लगता है। उन्होंने बताया पाला से आलू फसल को समय रहते नहीं बचाया गया तो अस्सी से सत्तर प्रतिशत नुकसान हो सकताहै।

आलू की फसलों को पाले से बचाएं

आलू को पाला झुलसा रोग से बचाए रखने के लिए हर संभव सिंचाई पर ध्यान देना चाहिए. पौधों को पाला से बचाने के लिए किसान खेतों में नमी बनाए रखें. इसके अलावा सिंचाई के बाद पौधों के उपर छप्पर या फिर पाली हाउस बना दें. इससे काफी हद तक फसल को पाले से राहत मिलती है. तो वहीं आलू की फसल में करीब 10 से 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई कर देना चाहिए. ऐसा करने से आलू की फसल को पाला और झुलसा रोग के प्रकोप से बचाया जा सकता है.

साथ ही खेतों के मेढ़ पर अलाव यानी घास फूस जलाकर धुआं करें। आलू फसल में पाला का अगर अधिक प्रभाव दिखे तो किसान कृषि विज्ञान केंद्र के विशेषज्ञों से सलाह लेकर नियंत्रण का उपाय कर सकते हैं इसके अलावा पाले से पौधों को बचाने के लिए परंपरागत एवं रासायनिक तरीकों का भी प्रयोग किया जा सकता है. इसके लिए नर्सरी में पौधों को रात में प्लास्टिक की चादर से ढक दें. ऐसा करने से प्लास्टिक के अंदर का तापमान 2 से 3 डिग्री सैल्शियस बढ़ जाता है और पौधे पाले से बच जाते हैं, ध्यान रहे कि पौधों का दक्षिणी एवं पूर्वी भाग खुला होना चाहिए. इससे पौधों को सुबह और दोपहर में धूप मिलती रहती है. साथ ही आलू की फसल को पाले से बचाने के लिए करीब 20 से 25 दिन तक का सड़ा हुआ मठ्ठा 4 लीटर, 100 लीटर छाछ के पानी में घोल लें और फसल में दो से तीन बार छिड़क दें. इससे फसल को पाले से बचा सकते है अगर खेत में झुलसा रोग की संभावना है तो मैंकोजेब दवा का सवा किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। यदि खेत में झुलसा रोग लग चुका है तो इसमें मैंकोजेब और मेटालैक्सिल के मिश्रण वाली दवा का छिड़काव किया जाना चाहिए। यह दवा दो ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर प्रयोग की जाए। इस हिसाब से एक किलोग्राम दवा का उपयोग एक हेक्टेयर आलू में करना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

गाजर घास अनिष्टकारी खरपतवार

डॉ. महेन्द्र बैरवा और खुशबू
बागवानी विभाग, नैनी कृषि संस्थान, सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान वि.वि. प्रयागराज (उ.प्र.)

पार्थेनियम को क्षेत्रीय भाषा में छतक चांदनी, गाजर घास, सफेद टोपी, गंधीबूटी आदि नामों से जाना जाता है। यह एस्टीरेसी (कम्पोजिटी) कुल का पौधा है। संसार में इसकी लगभग बीस प्रजातियां पाई जाती है, जिसमें से पार्थेनियम हिस्टेरोफेरस प्रमुख है।

ये खरपतवार पूरे विश्व में तेजी से फैल रहा है। प्रमुख रूप से यह खरपतवार अमेरिका, मेक्सिको, वेस्टइंडीज, भारत, नेपाल, आस्ट्रेलिया, चीन तथा वियतनाम के विभिन्न भाग में पाया जाता है। गाजर घास का मूल स्थान दक्षिण एवं मध्य अमेरिका तथा मेक्सिको माना जाता है। भारत में सर्वप्रथम यह खरपतवार पूना (महाराष्ट्र) में 1956 में देखा गया। ऐसा माना जाता है कि हमारे देश में इसका प्रवेश अमेरिका अथवा कनाड़ा से आयात किये हुए गेहूं के साथ हुआ था। परंतु शीघ्रातिशीघ्र यह लगभग पूरे देश में फैल गया है तथा वर्तमान में 35 मिलियन (3.5 करोड़) हैक्टेयर से अधिक क्षेत्र में इसका भीषण प्रकोप देखा जा रहा है। यह खरपतवार जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि राज्यों के विभिन्न भागों में फैला हुआ है।

यह बहुशाखीय, तीव्र वृद्धि वाला एक वर्षीय शाकीय पौधा है, जिसकी लंबाई 1 से 1.5 मीटर तक होती है। इसका तना रोयेदार एवं पत्तियां गाजर के पौधे की तरह होती है। इसके फूलों का रंग सफेद होता है। प्रत्येक पौधा लगभग 1000 से 5000 अत्यंत सूक्ष्म बीज पैदा करता है। जिसके इन बीजों में सुषुप्ताव सथ्था नहीं होती है, जिसके कारण ये बीज पककर जमीन पर गिरने के बाद पुनः नमी पाकर अंकुरित हो जाते हैं। गाजरघास का पौधा लगभग 3-4 महीने में अपना जीवनचक्र पूर्ण कर लेता है। प्रकाश एवं तापक्रम के प्रति उदासीन होने के कारण ये वर्ष भर उगता एवं फलता-फूलता रहता है, ये प्रमुख रूप से काली मिट्टी, चिकनी दोमट मिट्टी में बहुत तीव्रता से अपनी वृद्धि करता पाया गया है। यद्यपि इसके अंकुरण पर भूमि के प्रकार, उसकी अम्लीयता, क्षारीयता आदि का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, ये बीज के द्वारा प्रजनन करता है।

ये मुख्यतः नम एवं छायादार स्थानों में उगता है। परंतु यह हर तरह के वातावरण में उगने की अभूतपूर्व क्षमता रखता है। इसके बीज काले, चपटे एवं 2 मिमी लंबे होते हैं, जो कि समुद्र की गहराई से लेकर 2400 मीटर

ऊंचाई तक आसानी से उग आते हैं। गाजर घास के पौधे खाली स्थानों, अनुपयोगी भूमियों, औद्योगिक क्षेत्रों, सड़क के किनारों रेल्वे लाईनों आदि पर बहुतायत से पाये जाते हैं। इसके अलावा इसका प्रकोप विभिन्न खाद्यान्न फसलों, सब्जियों एवं उद्यान फसलों के साथ-साथ कुछ जंगली पेड़ों पर भी देखा गया है।

यह एक पूर्व अनिष्टकारी खरपतवार है, जो हमारी कृषि के लिये एक विकराल समस्या बनता जा रहा है। इस खरपतवार को पानी में घुलनशील केफीक एसिड, फेरूलिक एसिड, बेनिसिलीक एसिड, फिनोलिक एवं सेस्क्यूटरपिनलेक्टोन्स पाये जाते हैं। इसमें से सेस्क्यूटरपिनलोक्टोन्स जैसे पार्थेनिन एवं आईसेनिन बहुत अधिक खतरनाक रसायन होते हैं, जो पौधे के सभी भागों में पाये जाते हैं। यह खरपतवार हमारे पौधों के साथ-साथ मनुष्यों एवं जानवरों के लिये भी काफी हानिकारक है।

- इसमें सेस्क्यूटरपिनलेक्टोन्स विशेष रूप से पार्थेनिन एवं हाईमेनिन पाये जाते हैं, जो कि फसलों के अंकुरण एवं वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।
- इसके प्रकोप के कारण हमारी फसलों की पैदावार बहुत कम हो जाती है। ज्वार एवं मक्के में इस खरपतवार के कारण 40 प्रतिशत तक उपज में कमी पाई गई है।
- दलहनी फसलों में यह खरपतवार, जड़ों की ग्रंथियों के विकास को प्रभावित करके नाईट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की क्रियाशीलता को कम कर देता है।
- टमाटर, मिर्च, बैंगन आदि सब्जियों के पौधों पर इस खरपतवार के परागकण एकत्र होकर, फसल के पुष्प् उत्पादन एवं फलविन्यास को प्रभावित करते हैं तथा पत्तियों में कलोरोफिल की कमी एवं पुष्पशीषों में असामान्यता पैदा कर देते हैं।
- इस खरपतवार के लगातार संपर्क में रहने से मनुष्यों में एर्लजी, बुखार, डर्मेटाईटिस, एग्जिमा, दमा आदि बीमारियाँ हो जाती हैं।
- इसको खाने से पशुओं में अनेक तरह की बीमारियाँ हो जाती हैं एवं दुधारू पशुओं के दूध में कड़वाहट आने लगती है।

नियंत्रण के उपाय

वैधानिक विधिः खरपतवारों के प्रवेश एवं उनके फैलाव को रोकने हेतु विभिन्न खरपतवार नियंत्रण कानून एवं संगरोध कानून बनाये गये हैं, जिनके प्रभावी ढंग से पालन एवं जनजागरूकता एवं जनसहयोग से इस खरपतवार पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है।

यांत्रिक विधिः इस विधि में खरपतवार को फूल आने से पहले हाथ से, फावड़े से, खुरपी से उखाड़ कर तथा तलवार से काट कर उसे किसी गड्ढे में दबाकर या जला कर नष्ट किया जा सकता है। परंतु यदि नियंत्रण में सावधानी न रखी जाये तो इस विधि में खरपतवार के पुनः वृद्धि करने का खतरा रहता है। इसके साथ-साथ इस खरपतवार को उखाड़ते समय हाथ में दस्ताने तथा अन्य सुरक्षात्मक कपड़ों का प्रयोग करना चाहिये अन्यथा लगातार संपर्क में आने से बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है।

रासायनिक विधिः गाजर घास का नियंत्रण, शाक नाशियों के प्रयोग से आसानी से किया जा सकता है। इन शाकनाशियों में मेट्रीव्यूजिन, एट्राजिन, एलाक्लोर, 24 डी, ग्लाईफोसेट आदि प्रमुख है। आकर्षित क्षेत्रों में गाजर घास के साथ अन्य सभी खर पतवारों को नष्ट करने के लिए ग्लाईफोसेट (1 से 1.5 प्रतिशत) का उपयोग करना चाहिये।

जैविक विधि

गाजर घास का नियंत्रण उनके प्राकृतिक शत्रुओं, मुख्यतः कीटों, रोग के जीवाणुओं एवं वनस्पतियों द्वारा किया जा सकता है। इस विधि की विशेषता यह है कि इस विधि को बार-बार दोहराने की आवश्यकता नहीं होती है तथा यह अपेक्षाकृत सस्ती विधि है। सन् 1983 में जाईगोग्रामा बाईकलराटा नामक गुबरैले को मेक्सिको से लाया गया है, जो कि गाजर घास की पत्तियों को पूर्ण रूप से खाकर उसे पत्ती रहित कर देता है जिससे अंततः पौधा सूख कर मर जाता है। यह एक सुरक्षित विधि हैं। ये कीट एक पौधे को खाकर स्वतः ही दूसरे पौधे पर आक्रमण कर देते हैं तथा तेजी से अपनी संख्या को बढ़ाकर पूरे क्षेत्र को गाजर घास रहित कर देता है।

इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि गाजर घास एक जटिल एवं अनिष्टकारी खरपतवार है, जो हमारी फसलों के साथ-साथ मनुष्यों, एवं जानवरों के लिये भी बहुत हानिकारक है। परन्तु जन जागरण एवं जन सहयोग से उपरोक्त विधियों के समन्वित उपयोग से इसका पूर्ण नियंत्रण संभव है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

नए भारत की आत्मनिर्भरता में कृषि क्षेत्र का योगदान

अंकित कुमार तिवारी
रामा विश्वविद्यालय कानपुर (उ.प्र.)

केन्द्रीय वित्त एवं कॉरपोरेट कार्य मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने संसद में आर्थिक समीक्षा, 2020-21 पेश करते हुए कहा कि भारतीय कृषि क्षेत्र ने कोविड-19 की वजह से लगाए गए लॉकडाउन के समय में भी अपनी उपयोगिता और लचीलेपन को साबित किया है। आर्थिक समीक्षा के अनुसार कृषि क्षेत्र और संबंधित गतिविधियों ने वर्ष 2020-21 (पहला अग्रिम अनुमान) के दौरान स्थिर मूल्यों पर 3.4 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्ज की।

मुख्य सांख्यिकी अधिकारी के द्वारा 29 मई, 2020 को पेश किए गए राष्ट्रीय आय से संबंधित आंकड़ों के आधार पर आर्थिक समीक्षा के अनुसार 2019-20 में देश के सकल मूल्य संवर्धन (जीवीए) में कृषि और संबंधित गतिविधियों का योगदान 17.8 प्रतिशत रहा है।

रिकॉर्ड खाद्यान्न उत्पादन: 2019-20 में कृषि क्षेत्र की आर्थिक समीक्षा (चौथे अग्रिम अनुमान) के अनुसार देश में 296.65 मिलियन टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ जबकि 2018-19 में 285.21 मिलियन टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ था। इस प्रकार वर्तमान सत्र में 11.44 मिलियन टन अधिक खाद्यान्न का उत्पादन हुआ।

कृषि निर्यात:वर्ष 2019-20 की आर्थिक समीक्षा के अनुसार भारत का कृषि और संबंधित वस्तु निर्यात लगभग 252 हजार करोड़ रुपये का हुआ। भारत से सर्वाधिक निर्यात अमेरिका, सऊदी अरब, ईरान, नेपाल और बांग्लादेश को किया गया। भारत की ओर से दूसरे देशों को भेजी जाने वाली प्रमुख वस्तुओं में मछलियां और समुद्री संपदा, बासमती चावल, भैंस का मांस, मसाले, साधारण चावल, कच्चा कपास, तेल, चीनी, अरंडी का तेल और चाय की पत्ती शामिल हैं। कृषि आधारित और संबंधित वस्तुओं के निर्यात में भारत की स्थिति विश्व स्तर पर अग्रणी रही है। इस क्षेत्र में विश्व का लगभग 2.5 प्रतिशत निर्यात भारत से ही किया जाता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य: आर्थिक समीक्षा के अनुसार वर्ष 2018-19 के बजट में फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य फसल की वास्तविक लागत का डेढ़ गुना रखने की घोषणा की गई थी। इसी सिद्धांत पर काम करते हुए भारत सरकार द्वारा 2020-21 सत्र में खरीफ और रबी की फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि की गई है।

कृषि सुधार: हालिया कृषि सुधारों पर आर्थिक समीक्षा में कहा गया है कि तीन नए कानूनों को छोटे और सीमांत किसानों को अधिकतम लाभ सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया है। ऐसे कृषकों की संख्या देश के कुल किसानों में लगभग 85% है और इनकी फसलें एपीएमसी आधारित बाजारों में विक्रय की जाती है। नए कृषि कानूनों के लागू होने से किसानों को बाजार के प्रतिबन्धों से आजादी मिलेगी और कृषि क्षेत्र में एक नए युग की शुरुआत होगी। इससे भारत के किसानों को अधिक लाभ होगा और उनके जीवन स्तर में सुधार आएगा।

आत्मनिर्भर भारत अभियान: आर्थिक समीक्षा कहती है कि आत्मनिर्भर अभियान के तहत कृषि और खाद्य प्रबंधन क्षेत्र में अनेक बड़ी घोषणाएं की गई हैं। कृषि ढांचा निर्माण के लिए एक लाख करोड़ रुपये की धनराशि सुनिश्चित की गई। सूक्ष्म खाद्य प्रसंस्करणों (एमएफई) की स्थापना के लिए 10 हजार करोड़ रुपये की योजना की घोषणा की गई। प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना (पीएमएमएसवाई) के लिए 20 हजार करोड़ रुपये निर्धारित किए गए। राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम तथा पशुपालन ढांचा निर्माण विकास के लिए 15 हजार करोड़ रुपये की घोषणा की गई। इनके अलावा आवश्यक वस्तु अधिनियम, कृषि विपणन और कृषि उत्पाद

मूल्य तथा गुणवत्ता; प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना; और एक राष्ट्र एक राशन कार्ड जैसी योजनाएं शुरु की गई।

कृषि ऋण: आर्थिक समीक्षा के अनुसार भारत में छोटे और सीमांत किसानों को बड़े पैमाने पर वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई गई है। किसानों की कृषि संबंधी गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने के लिए समय पर ऋण की उपलब्धता को प्रमुखता दी गई। वर्ष 2019-20 में 13 लाख 50 हजार करोड़ रुपये का कृषि ऋण निर्धारित किया गया था जबकि किसानों को 13,92,469.81 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया गया जो कि निर्धारित सीमा से काफी अधिक था। 2020-21 में 15 लाख करोड़ रुपये का ऋण प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया था। 30 नवंबर, 2020 तक 9, 73, 517.80 करोड़ रुपये का ऋण किसानों को उपलब्ध कराया गया। आर्थिक समीक्षा में कहा गया है कि आत्मनिर्भर भारत अभियान के एक हिस्से के रूप में कृषि ढांचा विनिर्माण कोष के तहत दिया जाने वाला ऋण कृषि क्षेत्र को और अधिक लाभ पहुंचाएगा। आर्थिक समीक्षा के अनुसार फरवरी 2020 में बजट की घोषणाओं के अनुसार किसान क्रेडिट कार्ड को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया। प्रधानमंत्री आत्मनिर्भर भारत पैकेज के हिस्से के रूप में डेढ़ करोड़ दुग्ध डेयरी उत्पादकों और दुग्ध निर्माता कंपनियों को किसान क्रेडिट कार्ड (केसीसी) प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया था। आंकड़ों के अनुसार मध्य जनवरी, 2021 तक कुल 44,673 किसान क्रेडिट कार्ड (केसीसी) मछुआरों और मत्स्य पालकों को उपलब्ध कराए गए थे जबकि इनके अतिरिक्त मछुआरों और मत्स्य पालकों के 4.04 लाख आवेदन बैंकों में कार्ड प्रदान करने की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में हैं।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना: आर्थिक समीक्षा के अनुसार प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) मील का पत्थर साबित हुई है। इसमें देश के किसानों को न्यूनतम प्रीमियम राशि पर फसलों का बीमा प्रदान किया जाता है। पीएमएफबीवाई के तहत साल दर साल 5.5 करोड़ से ज्यादा आवेदनों को स्वीकार कर किसानों को योजना का लाभ दिया जाता है। इस योजना के अंतर्गत 12 जनवरी, 2021 तक 90 हजार करोड़ रुपये के दावों का भुगतान किया गया है। आधार की वजह से किसानों को तेजी से भुगतान हुआ है और दावे की राशि सीधे उनके बैंक खातों में पहुंचाई गई है। मौजूदा कोविड-19 महामारी की वजह से लगाए गए लॉकडाउन के बावजूद 70 लाख किसानों को इस योजना का लाभ मिला है और लाभार्थियों के बैंक खातों में 8741.30 करोड़ रुपये के दावों का भुगतान किया गया है।

प्रधानमंत्री किसान योजना: आर्थिक समीक्षा कहती है कि प्रधानमंत्री किसान योजना के तहत दी जाने वाली वित्तीय सहायता की सातवीं किस्त के रूप में दिसंबर, 2020 में देश के 9 करोड़ किसान परिवारों के बैंक खातों में 18 हजार करोड़ रुपये की धनराशि वितरित की गई।

पशुधन क्षेत्र:पशुधन क्षेत्र की आर्थिक समीक्षा के अनुसार 2014-15 के मुकाबले 2018-19 में पशुधन के क्षेत्र में संयुक्त वार्षिक विकास दर के आधार पर 8.24 प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। कृषि क्षेत्र और संबंधित गतिविधियों वाले क्षेत्रों के सकल मूल्य संवर्धन पर आधारित नेशनल अकाउंट्स स्टेटिस्टिक्स (एनएएस) 2020 के अनुसार पशुधन की हिस्सेदारी में वृद्धि देखी गई है। सकल मूल्य संवर्धन में (स्थिर मूल्य पर) पशुधन का योगदान लगातार बढ़ रहा है। 2014-15 में यह 24.32 प्रतिशत था जबकि 2018-19 में 28.63 प्रतिशत दर्ज किया गया। 2018-19 के सकल मूल्य संवर्धन में पशुधन की हिस्सेदारी 4.19 प्रतिशत रही।

मत्स्य पालन:आर्थिक समीक्षा में जानकारी दी गई है कि भारत का मत्स्य उत्पादन इतिहास में अबतक का सर्वाधिक रहा है। 2019-20 में 14.16 मिलियन मिट्रिक टन मत्स्य उत्पादन किया गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था ने मत्स्य क्षेत्र में 2,12,915 करोड़ रुपये की हिस्सेदारी दर्ज की है। यह कुल राष्ट्रीय सकल मूल्य संवर्धन का 1.24 प्रतिशत और कृषि क्षेत्र के सकल मूल्य संवर्धन का 7.28 प्रतिशत है।

प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना: आर्थिक समीक्षा में बताया गया है कि वित्त वर्ष 2020-21 के दौरान खाद्यान्न का वितरण दो चैनलों के माध्यम से किया गया। ये हैं - राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए) और प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (पीएमजीकेएवाई)। वर्तमान में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम को सभी 36 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में लागू किया जा रहा है और ये सभी एनएफएसए के अंतर्गत मासिक आधार पर खाद्यान्न प्राप्त कर रहे हैं। कोविड-19 महामारी के चलते प्रधानमंत्री गरीब कल्याण पैकेज के अंतर्गत भारत सरकार ने प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (पीएमजीकेएवाई) की शुरुआत की थी। जिसके तहत लक्षित जनवितरण प्रणाली (टीपीडीएस) के अंतर्गत आने वाले सभी लाभार्थियों को 5 किलो खाद्यान्न प्रतिव्यक्ति मुफ्त प्रदान करने की सुविधा प्रदान की गई। (इनमें अंत्योदय अन्य योजना और प्राथमिकता दिए जाने वाले नागरिक शामिल हैं।) प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना के अंतर्गत नवंबर 2020 तक प्रतिव्यक्ति 5 किलो खाद्यान्न देने की व्यवस्था के तहत 80.96 करोड़ लाभार्थियों को अतिरिक्त खाद्यान्न उपलब्ध कराया गया था। इस दौरान 75000 करोड़ रुपये से अधिक मूल्य के 200 लाख मीट्रिक टन से ज्यादा अनाज का वितरण किया गया। इसके अलावा आत्मनिर्भर भारत पैकेज के अंतर्गत चार महीनों तक (मई से अगस्त के बीच) प्रतिव्यक्ति 5 किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराया गया, जिससे उन 8 करोड़ प्रवासी मजदूरों को लाभ मिला जो राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम या फिर राज्य राशन कार्ड योजना के अंतर्गत नहीं आते थे, जिसकी सब्सिडी लागत लगभग 3109 करोड़ रुपये थी।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग: आर्थिक समीक्षा के अनुसार 2018-19 तक बीते पांच वर्षों में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग (एफपीआई) क्षेत्र में औसत वार्षिक वृद्धि दर (एएजीआर) पर 9.99 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो रही है। 2011-12 से कृषि क्षेत्र में यह बढ़ोतरी 3.12 प्रतिशत रही है और विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि दर 8.25 प्रतिशत रही है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

जैविक खेती में नीम से कीट प्रबंधन का महत्व

आदित्य कुमार सिंह
(वैज्ञानिक/तकनीकी अधिकारी) क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, भरारी, झाँसी (उ.प्र.)

डॉ. नरेन्द्र सिंह (प्रोफेसर)
बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि. बांदा (उ.प्र.)

डॉ.एच.एस. कुशवाहा
(प्रोफेसर) महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

नीम शब्द की उत्पति निम्बा से हुई है, जिसका अर्थ बीमारी से छुटकारा पाना है। नीम की पत्ती, फूल, फल, जड़ व तने की छाल औषधि महत्व की होती हैं। पत्ती में निम्बिन, निम्बिनीन, निम्बेडिअल एवं क्वैसेंटिन, बीज एवं फल में गेडमिन, एजाडेरोन, निम्बिओल, एजाडिरेक्टिन यौगिक होते हैं। नीम से प्राप्त रसायनों के द्वारा विभिन्न कीटों का नियंत्रण वैज्ञानिक दृष्टिकोण में उचित पाया गया है।

इन रसायनों का उपयोग समन्वित कीट नियंत्रण (आई. पी. एम.) कार्यक्रम का एक प्रमुख घटक है। व्यावसायिक तौर पर इसके विभिन्न उत्पाद बाजार में उपलब्ध हो रहे हैं, किन्तु किसान स्वयं भी इन रयायनों को तैयार कर कीटों के नियंत्रण हेतु प्रयोग कर सकते हैं। खेती के अलावा नीम से मनुष्य में कैंसर ठीक हो जाता है। खाज खुजली, चर्म रोग, पीलिया, रक्ताल्पता, बुखार, हृदय रोग को रोकने में भी मददकारी है।

खेती में नीमेक्स नामक जैविक नीम खाद एवं कीट निवारक पदार्थ भी प्रयोग होता है। जिससे मृदा की उत्पादन क्षमता में बढोत्तरी, विष रहित, स्वास्थ्यवर्धक (जैविक भोजन) उत्पादित करता है। इसकी मात्रा

धान्य, दलहनी, तिलहनी फसलो में 125 से 150 किग्रा/ हैक्टेयर बुवाई से पूर्व डालने से लाभ मिलता है। फल वृक्षों में 500 से 1000 ग्राम प्रति वृक्ष प्रति छमाही डालना बहुत ही लाभदायक होता है।

कीट नियंत्रण

लिमोनायडस के कीट नियंत्रण पर प्रभावकारी असर पाए गए हैं। नीम रसायन के छिड़काव से कीटों के दुष्प्रभाव को रोका जा सकता है। इन रसायनों के उपयोग से पर्यावरण दूषित होने का खतरा कम हो जाता है। नीम रसायन निम्नानुसार कीटों को प्रभावित करता है-

- जिन पौधों पर छिड़काव किया गया है, उसे कीट नुकसान नहीं पहुंचाते हैं।
- कीट की भोजन नली में अवरोध उत्पन्न हो जाता है, जिससे उनको भोजन निगलने में कठिनाई होती है।
- कीटों का जीवन चक्र प्रभावित होता है, जिससे कीट धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं।
- कीटों में अण्डे देने की क्षमता कम हो जाती है।
- कीटों में लैगिंक प्रक्रिया रुक जाती है।

कृमि नियंत्रण

- कृमियों से होने वाले नुकसान की रोकथाम कृमिनाशकों से महंगी पड़ती है। यह मानव स्वास्थ्य के लिए अति हानिकारक है। नीम के प्रयोग से अंडे से लार्वा का निकलना एवं विकसित होना प्रभावित होता है। अतः नीम तेल एवं नीम खली के उपयोग से कृमियों की संख्या घटाई जा सकती है।

जलीय कीट नियंत्रण

- जलीय कीट हेटेरोसिपीरस लूजोनेसिस, नील हरित शैवाल को खाकर नष्ट करते हैं। नील हरित शैवाल से वायुमण्डलीय नाइट्रोजन यौगिक के रुप में बदल कर खेतों की उर्वरता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। नीम का प्रयोग इस कीट की रोकथाम में प्रभावशाली पाया गया है।

फफूंद नियंत्रण

- फफूंदों का प्रयोग फसलों पर विभिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न होता है। नीम बीज तेल का उपयोग, गेरुआ एवं भभूतिया रोग पर करने से इनकी रोकथाम में काफी हद तक सफलता मिलती है।
- नीम खली के मिट्टी में उपयोग से राइजोक्टोनिया सोलनी, सकेलरोक्टीयम रोलस्की व स्कलेरोटियोरम स्पी. आदि फफूंद के कुप्रभाव से बीज संरक्षित हो जाता है।

पौध विषाणु नियंत्रण

विषाणु पौधों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाते हैं। पौधे में विषाणु फैलाने में कुछ कीट भी सहायक होते हैं। इन कीटों पर नीम द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है। विषाणु के नियंत्रण पर आर्थिक सफलता नीम के प्रयोग से सर्वप्रथम पाई गई है।

निम्बोली सत

निम्बोली को घर में इस्तेमाल होने वाले बिजली से चलने वाले मिक्सर/ग्राइंडर से या चूने के लेप और मुसली का प्रयोग करते हुए बारीक कूट लें। निम्बोली से छिलके को अलग करने के लिए ओसाई करें। कूटी गई निम्बोली को जालियों वाली छलनी से छान लें। छानने के बाद इस पाउडर को 100 ग्रा.= 30 मिली. के अनुपात में पानी के साथ मिला लें। फिर सहयोजक (साबुन/डिटर्जेन्ट पाउडर) को इस मिश्रण में प्रत्येक 100 ग्रा. के निम्बोली पाउडर में 5 मिली./ग्रा. सहयोजक के अनुपात में मिला दें। इस मिश्रण को रातभर रखें। सुबह इसे हिलाते हुए मलमल के कपड़े से छान लें। मलमल के कपड़े पर बचे अवशेष के माध्यम से इतना पानी गुजारा जाना चाहिए कि छानन में निम्बौली के पाउडर-जल का अनुपात 2 लीटर पानी में 100 ग्राम पाउडर रह जाए। जिसे कि छिड़काव किया जा सकता है। छिड़काव शाम के समय किया जाना चाहिए जब सूर्य किरणों की तीव्रता कम होती है और पूरी पत्तियों पर छिड़काव किया जाना अनिवार्य है।

निम्बोली सत् बनाने की विधि

- निम्बोली बारीक कूट लें
- कपड़े में बांधकर रातभर पानी में भिगो दें
- सुबह इस घोल को बारीक कपड़े से छान लें
- इस घोल का 5 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें
- एक हैक्टेयर के लिए 25 किग्रा. निम्बोली
- 500 लिटर पानी व 5 किग्रा. साबुन/सर्फ

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

यूरिया उपचार से चारे की गुणवत्ता में वृद्धि

दीपक कुमार, डॉ. पी.के. उपाध्याय
सत्येन्द्र कुमार, प्रवीण साहू, गोविंद
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविधालय, कानपुर (उ.प्र.)

आज भारतवर्ष मे खेती का व्यवसायीकरण होने, जनसंख्या वृद्धि आदि के कारण पशुओ के लिए चारा न उगाकर किसान और पशुपालक अधिकतर फसल उत्पादन ही करते है। हरा चारा और दाना महंगा भी हो गया है और इसमे भी अधिकतर वर्षो मे अकाल पडता रहता है। इस कारण पशुओ को अच्छि गुणवत्ता का भूसा, हरा चारा और दाना कम मिल पाता है। अतः पशुओ को निम्न गुणवत्ता वाले चारो पर निर्भर रहना पडता है। इन चारो मे प्रोटीन व ऊर्जा प्रदान करने वाले तत्वो और खनिज पदार्थो की कमी होती है। जिससे पशु शरीर मे पौषक तत्वो की मात्रा मे कमी हो जाती है और पशु कुपोषण का शिकार हो जाते है। पशुओ को कुपोषण से बचाने एवं उनका उत्पादन बनाऐ रखने के लिए इन निम्न गुणवत्ता वाले चारो की पौष्टिकता बढाकर उपयोग मे लिया जा सकता है। सूखे चारो मे सेलूलोज एवं हेमिसेलूलोज की बाहुलता होती है परन्तु इसका कुछ भाग लिग्निन मे समावेश हो जाता है, जो बिना लिग्निन तोडे ऊर्जा पैदा नही कर सकता। अतः यह आवश्यक हो गया कि पौष्टिक तत्वो को अलग किया जाऐ। इसलिए वैज्ञानिको द्वारा कई वर्षो के प्रयास से इन घटिया किस्म के चारो मे प्रोटीन की मात्रा एवं ऊर्जा शक्ति मे वृद्धि की विधियां विकसित की गई है।

यूरिया से उपचार की विधिया: यह विधि सबसे सरल एवं उत्तम है। इस विधि से किसी भी सूखे चारे - गेंहू, जौ, जई व सरसो का भूसा, धान का पुवाल, ज्वार अथवा बाजरे की कडवी एवं गन्ने की खोई आदि को उपचारित किया जा सकता है।

प्रथम विधि: चार किलो यूरिया को 35-40 लीटर पानी मे घोलकर चार बर्तनो मे रखे। अब 100 किलो सूखे चारे को भी चार भागो मे बांट ले। इसमे से एक भाग चारे को दो या तीन मीटर के गोल घेरे मे फर्श पर बिछाकर इसके ऊपर यूरिया के घोल के एक भाग को बाल्टी या झारे से छिडकाव कर पैरो से अच्छि तरह मिला देते है। इस प्रकार शेष बचे हुए चारे एवं घोल को परत दर परत मिला लेते है। अब उपचारित चारे को समान रुप से मिलाकर, पैरो से दबाकर कर पॉलिथीन के बोरे मे या गडढे मे भरकर ऊपर से पॉलिथीन से ढक देते है। इसके 21 दिन बाद उपचारित चारा पशुओ को खिलाने के लिए तैयार हो जाता है। अब गड्ढे को खोलकर आवश्यकतानुसार चारा निकाल कर गड्ढे को बन्द करदे और 6 माह की उम्र से ऊपर के स्वस्थ्य पशुओ को खिलाऐ। प्रति पशु 50 ग्राम खनिज लवण अलग से खिलाए।

द्वितीय विधि: भूसे को यूरिया व चूने से उपचारित करना

तीन किलो यूरिया व चार किलो बुझे हुए चूने को 40-45 लीटर पानी मे घोलकर 100 किलो गेंहू, जौ, जई व सरसो का भूसा, धान का पुवाल, ज्वार अथवा बाजरे की कडवी एवं गन्ने की खोई इत्यादि पर छिडककर ऊपर बताई गई विधि से उपचारित कर पॉलिथीन के बोरे मे या गडढे मे दबाकर भरकर रखे। इसके 21 दिन बाद चारा पशुओ को खिलाने के लिए तैयार हो जाता है। अब गड्ढे को खोलकर आवश्यकतानुसार उपचारित चारा निकाल कर गड्ढे को बन्द करदे और 6 माह की उम्र से ऊपर के स्वस्थ्य पशुओ को खिलाऐ। प्रति पशु 50

ग्राम खनिज लवण अलग से खिलाए। चूना पानी मे पूरी तरह से घुलनशील नही होता है, इसलिए केवल घुलनशील वाले हिस्से का ही उपयोग करे। इस विधी का एक फायदा यह है कि चूना कैल्शियम का स्रोत है जिससे पशुओ को कैल्शियम भी प्राप्त होता है जो दुधारु व बढवार वाले पशुओ के लिए बहुत जरुरी है। दूसरा फायदा यह है कि चूना पानी से मिलकर कैल्शियम हाइड्रोक्साइड बनाता है जो लिग्निन से पौष्टिक तत्वो को अलग करने मे मदद करता है। इसमे यूरिया भी मिलाते है, जिससे प्रोटीन मिलती है और अमोनिया बनती है, जो लिग्निन से पौश्टिक तत्वो को अलग करती है।

तृतीय विधि

अवयव	मात्रा
यूरिया	2 किलो
मोलासिस/गुड	1 किलो
खनिज लवण	1 किलो
नमक	1 किलो

इन अवयवो को 15 किलो पानी मे घोलकर 100 किलो गेंहू, जौ, जई व सरसो का भूसा, धान का पुवाल, ज्वार अथवा बाजरे की कडवी एवं गन्ने की खोई आदि को ऊपर बताई गई विधि से उपचारित कर 24 घण्टे के लिए पॉलिथीन से ढककर रखे, फिर 6 माह की उम्र से ऊपर के स्वस्थ्य पशुओ को खिलाऐ।

चतुर्थ विधि

अवयव	मात्रा
यूरिया	2 किलो
मोलासिस/गुड	10 किलो
खनिज लवण	1 किलो
सैंधा नमक	1 किलो

इन अवयवो को 2 किलो पानी मे घोलकर एक बर्तन में रखे। इस घोल मे से प्रति पशु के हिसाब से आधा किलो घोल लेकर इसे 2 किलो पानी में घोलकर पशु के लिए आवश्यक गेंहू, जौ, जई व सरसो का भूसा, धान का पुवाल, ज्वार अथवा बाजरे की कडवी एवं गन्ने की खोई आदि को ऊपर बताई गई विधि से उपचारित कर 6 माह की उम्र से ऊपर के स्वस्थ्य पशुओ को खिलाऐ।

पशुओ को यूरिया से उपचारित भूसा खिलाने का तरीका: पशुओ को यूरिया से उपचारित भूसा खिलाने से पहले उपचारित भूसे को लगभग आधा घण्टा तक खुला छोड दे ताकि अमोनिया की गंध निकल जाऐ। यदि शुरूआत मे पशु यूरिया से उपचारित भूसे को नही खाये तो उस पर थोडा आंटा या दलिया बुरकाकर या हरे चारे की कुट्टी मिलाकर खिलाऐ। पशुओ के चारे मे यूरिया से उपचारित भूसे की मात्रा धीरे धीरे बढाऐ। बिमार और 6 माह की उम्र से कम के पशुओ को यूरिया से उपचारित भूसा नही खिलाऐ। यूरिया से उपचारित भूसा पशुओ को खाली पेट नही खिलाऐ, पहले बिना उपचारित भूसा खिलाऐ। अगर उपचारित भूसे मे खनिज लवण नही मिलाऐ हो, तो उसमे वृद्धिरत पशुओ के लिए 20 ग्राम व व्यस्क के लिए 50 ग्राम खनिज लवण अवश्य मिलाकर खिलाऐ।

भूसा उपचार के लिए यूरिया का ही उपयोग क्यों?

- यूरीया, अमोनिया में बदलकर भूसे की पाचकता मे वृद्धि करती है। ■ भूसे की पाचन प्रोटीन 5-6 प्रतिशत तक बढ जाति है। ■ रुमेन मे पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओ की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक है।
- यूरिया सभी जगह आसानी से उपलब्ध हो जाता है।
- इसमे प्रोटीन की सर्वाधिक मात्रा होती है। 100 ग्राम यूरीया मे 287.5 ग्राम प्रोटीन होती है, जबकि वानस्पतिक प्रोटीन का प्रमुख स्रोत मूंगफली की खली है, जिसकी 100 ग्राम मात्रा मे केवल 62 ग्राम प्रोटीन होती है।

भूसे को यूरिया से उपचारित करते समय निम्नलिखित सावधानी रखें

- आवश्यक अवयवो को सही मात्रा एवं अनुपात मे धोले।
- अवयवो के धोल को चारे के ऊपर समान रूप से छिडककर उसे पैरो से खूंदकर अच्छी तरह मिलावे।
- अवयवो के धोल को पशुओ की पहुँच से दूर रखे।

यूरिया विषाक्तता के लक्षण: गहरी सांस लेना, सांस लेने मे परेशानी, आफरा, मुँह से झाग आना, आंखो से टकटकी लगाकर देखना, शरीर का अकडना और तडपना आदि।

उपचार

- प्रारम्भिक अवस्था मे आधा लीटर सिरका, आधा लीटर पानी व एक किलो शक्कर या गुड का घोल बनाकर पशु को तुरन्त देवे। अथवा 5 प्रतिशत सिरका (एसिटिक अम्ल) 3-4 लिटर, पशु को नाल द्वारा देवे।
- पशु को लैक्टिक एसिड और हाइडोजन एसिड पिलाना चाहिऐ
- विटामिन ए 2000 आई. यु. मांसपेशियो मे देना चाहिऐ।
- पशु को शिरा मे सैलाइन डेक्सटोज चढवाऐ।

इस प्रकार पशुपालक यूरिया का उपयोग करके इन निम्न गुणवत्ता वाले चारो की पोष्टिकता बढाकर विपरीत परिस्थितियो मे भी अपने पशुओ का उत्पादन बनाए रख सकते है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

आलू के झुलसा रोगों का प्रबंधन

शुभेंदु सिंह
YP 1 एआईसीआरपी एम निक्रा

अंकित गुप्ता परास्नातक (कृषि) शस्य विज्ञान विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौ. वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

डॉ देवीदीन यादव ,वैज्ञानिक शस्य विज्ञान, भाकृअनुप- भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान

भारत में आलू साल भर उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल है। आलू का लगभग सभी परिवारों में किसी न किसी रूप में इस्तेमाल किया जाता है। आलू कम समय में पैदा होने वाली फसल है इस में स्टार्च, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन विटामिन सी व खनिजलवण काफी मात्रा में होने के कारण इसे कुपोषण की समस्या के समाधान का एक अच्छा साधन मन जाता है।

- आलू की फसल में खरपतवारों, कीटों व रोगों से 42 फीसदी की हानि होती है। भारत में आलू की खेती लगभग 2.4 लाख हेक्टेयर रकबे में की जाती है। आज के दौर में इस का सालाना उत्पादन 24.4 लाख टन हो गया है। इस समय भारत दुनिया में आलू के रकबे के आधार पर चौथे और उत्पादन के आधार पर पांचवें स्थान पर है। आलू की फसल को झुलसा रोगों से सब से ज्यादा नुकसान होता है।

आलू का पिछेती झुलसा रोग

- यह रोग फाइटोपथोरा नमक कवक के कारण फैलता है। आलू का पछेता अंगमारी रोग बेहद विनाशकारी है। आयरलैंड का भयंकर अकाल जो साल 1945 में पड़ा था, इसी रोग के द्वारा आलू की पूरी फसल तबाह हो जाने का ही नतीजा था। यह रोग उत्तर प्रदेश के मैदानी तथा पहाड़ी दोनों इलाकों में आलू की पत्तियों, शाखाओं व कंदों पर हमला करता है। जब वातावरण में नमी व रोशनी

आलू का अगेती झुलसा

कम होती है और कई दिनों तक बरसात होती है, तब इस का प्रकोप पौधे तक बरसात पत्तियों से शुरू होता है। यह रोग 5 दिनों के अंदर पौधों की हरी पत्तियों को नष्ट कर देता है। पत्तियों की निचली सतहों पर सफेद रंग के गोले बन जाते हैं, जो बाद में भूरे व काले हो जाते हैं। पत्तियों के बीमार होने से आलू के कंदों का आकार छोटा हो जाता है और उत्पादन में कमी आ जाती है। इस के लिए 20-21 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान मुनासिब होता है। आर्द्रता इसे बढ़ाने में मदद करती है।

प्रबंधन

- आलू की पत्तियों पर कवक का प्रकोप रोकने के लिए बोड्रेक्स मिश्रण या फ्लोटन का छिड़काव करना चाहिए।
- मेटालोक्सिल नामक फफूंदीनाशक की 10 ग्राम मात्रा को 10 लीटर पानी में घोल कर उस में बीजों को आधे घंटे डूबा कर उपचारित करने के बाद छाया में सूखा कर बोआई करनी चाहिए।
- इसके उपचार के लिए खेत में जैविक स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस की 250 ग्राम मात्रा को 100 किलो गोबर की खाद **(FYM)** में मिलाकर एक एकड़ खेत में बिखेर दे. रसायनिक उपचार द्वारा एज़ोक्सिस्ट्रोबिन 11% + टेबुकोनाज़ोल 18.3% **SC** की 300 मिली मात्रा या क्लोरोथालोनिल 75% **WP** की 400 ग्राम या कीटाजिन **(Kitazin)** 48% **EC** की 300 मिली मात्रा या मेटालैक्सिल 4% + मैंकोजेब 64% **WP** की 600 ग्राम प्रति एकड़ खेत में 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव कर दें • बीज के उपचार के लिए, मेटालॅक्सील 8% + मैंकोजेब 64% @ 3 ग्राम प्रति लीटर पानी वाले घोल तैयार करें. यह तैयार घोल को बीज कंद **(Bulb)** पर स्प्रे कर सकते हैं या बीज कंद को 30 मिनट के लिए इस घोल में डूबा कर बुवाई की जा सकती है

आलू का अगेती झुलसा

यह रोग आल्टनेरिय सोलेनाई नामक कवक द्वारा होता है। यह आलू का एक सामान्य रोग है, जो आलू फसल को सब से ज्यादा नुकसान पहुंचाता है। इस रोग के लक्षण पछेता अंगमारी से पहले यानी फसल बोने के 3-4 हफ्ते बाद पौधों की निचली पत्तियों पर छोटे-छोटे, दूर दूर बिखरे हुए कोणीय आकार के चकत्तों या धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं, जो बाद में कवक की गहरी हरीनली वृद्धि से ढक जाते हैं। ये धब्बे तेजी से बढ़ते हैं और ऊपरी पत्तियों पर भी बन जाते हैं। शुरू में बिन्दु के आकार के ये धब्बे तेजी से बढ़ते हैं और शीघ्र ही तिकोने, गोल या अंडाकार हो जाते हैं। आकार में बढ़ने के साथ साथ इन धब्बों का रंग भी बदल जाता है और बाद में ये भूरे व काले रंग के हो जाते हैं। सूखे मौसम में धब्बे कड़े हो जाते हैं और नम मौसम में फ़ैल कर आपस में मिल जाते हैं, जिस से बड़े क्षेत्र बन जाते हैं। रोग का जबरदस्त प्रकोप होने पर पत्तियाँ सिकुड़ कर जमीन पर गिर जाती हैं और पौधों के तनों पर भूरे काले निशान बन जाते हैं। रोग का असर आलू के कंदों पर भी पड़ता है। नतीजतन कंद आकार में छोटे रह जाते हैं।

प्रबंधन

- आलू की खुदाई के बाद खेत में छूटे रोगी पौधों के कचरे को इकट्ठा कर के जला देना चाहिए।
- यह एक भूमि जनित रोग है। इस रोग को पैदा करने वाले कवक के कोनिडीमम 1 साल से 15 महीने तक मिट्टी में पड़े रहते हैं, लिहाजा 2 साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- इसके बचाव के लिए खेत में अंतिम जुताई के समय या फसल में रोग के हल्के लक्षण दिखाई देने पर जैविक ट्राइकोडर्मा विरिडी की 500 ग्राम मात्रा या स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस की 250 ग्राम मात्रा को 100 किलो गोबर की खाद में मिलाकर एक एकड़ खेत में बिखेर दे. रसायनिक उपचार द्वारा एज़ोक्सिस्ट्रोबिन 11% + टेबुकोनाज़ोल 18.3% **SC** की 300 मिली मात्रा या कासुगामायसिन 5% + कॉपर आक्सीक्लोराइड 45% **WP** की 300 ग्राम मात्रा या मेटालैक्सिल 4त्र + मैनकोज़ेब 64% **WP** की 600 ग्राम मात्रा या टेबुकोनाज़ोल 10% + सल्फर 65% **WG** की 500 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ खेत में आलू की फसल पर स्प्रे कर देने से रोग का प्रकोप मिट जाता है

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

खरपतवार हटाना हो या करनी हो निराई-गुड़ाई, प्रयोग करें 'पावर वीडर'

विवेकानन्द सिंह फार्म मशीनरी एवं पॉवर इंजीनियरिंग विभागर सैम हिगिनबॉटम यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंड साइंसेस प्रयागराज (उ.प्र.)

नवीन्द्र कुमार पटेल (शोध छात्र), फार्म मशीनरी एंव पॉवर इंजीनियरिंग विभाग, सैम हिगिनबॉटम यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंड साइंसेस प्रयागराज (उ.प्र.)

मनीष कुमार (शोध सहयोगी) जलवायु अनुकूल कृषि कार्यक्रम कृषि विज्ञान केन्द्र, बांका, बिहार

दिग्विजय सिंह (परास्नातक छात्र), शस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

खरपतवार एक ऐसा अवांछित पौधा है जो बिना बोए ही खेतो तथा अन्य स्थानों पर तेजी से बढ़ता है और अपने समीप के पौधों की वृद्धि को दबाकर उपज को घटा देता है जिससे फसलो की उत्पादन दर में कमी आती है। किसानों की समय-समय पर खरपतवार प्रबंधन करना अच्छी फसल उत्पादन के लिए बहुत जरुरी होता है। फसलो में खरपतवारो कु उपस्थिति के कारण फसल की पैदावार में कमी आती है। किसानों को अच्छी फसल उत्पादन लेने के लिए खरपतवार को नष्ट करना खेती-किसानी के कार्य में बहुत ही महत्वपूर्ण मणि जाती है। किसान मेहनत और समय को बचाने के लिए रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण हेतु खरपतवार नाशी दवा का प्रयोग करते है अधिक रसायनों का फसलो में प्रयोग होने से हमारी खेती तथा हमारी वातावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। फसलो से खरपतवार को यांत्रिक विधि से निकाई-गुराई सबसे अच्छा माना जाता है। इन्ही सभी कारणों को देखते हुए किसान अब पावर वीडर कृषि यंत्र का इस्तेमाल करने लगे है। पावर वीडर का इस्तेमाल फसलो से खरपतवार को नष्ट करने में किया जाता है यह कृषि यंत्र फसलो को बिना किसी नुकसान पहुचाए कार्य करती है। इसके उपयोग से गन्ना, कपास, मक्का, केला, नारियल, सब्जिया, आदि के फसलो से खरपतवार को आसानी से नष्ट किया जाता है।

पावर वीडर क्या है : पावर वीडर खेती-किसानी की एक एसी कृषि यंत्र है जिसका इस्तेमाल फसल से खरपतवार को नष्ट करने में किया जाता है इसके इस्तेमाल से खेती-किसानी के अनेक काम आसानी से किए जा सकते है। इसका इस्तेमाल गन्ना, कपास, मक्का, केला, नारियल, सब्जिया, आदि के फसलो से खरपतवार को आसानी से नष्ट करने में किया जाता है तथा इसके साथ ही इसका इस्तेमाल कतारों एंव मेड़ो के बीच मिट्टी चढ़ाने में भी किया जाता है। यह यंत्र विभिन्न फसलो तथा सब्जियों/बगानों/गन्ने/पहाड़ी इलाकों में लगे अन्य फसले आदि जो पंकित में लगाई जाती है उसमे उगे घास-फूस एंव खरपतवार निकालने के लिए एक अच्छा उपयोगी कृषि यंत्र है। इस यंत्र के उपयोग से बिभिन्न फसलो के खरपतवार कम समय में आसानी से निकाले जा सकते है। इसकी कार्य क्षमता लगभग 1 से 1.2 हेक्टेयर प्रतिदिन है।

पावर वीडर-एक परिचय: पावर वीडर आमतौर पर छोटी मशीनें होती हैं जो पूरी तरह से खरपतवार को हटाने के लिए उपयोग की जाती हैं. इन मशीनों को आसानी से इस्तेमाल किया जा सकता है. यहाँ तक कि इनके सुरक्षित संचालन के लिए किसी भी प्रकार के पूर्व प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है. यह वीडर इंजन, फ्रेम, ब्लेड्स तथा सहायक पहिये का मिश्रण

होता है. ये आमतौर पर दो छोटे स्ट्रोक इंजन द्वारा संचालित होते हैं। इंजन का उपयोग वीडर के सामने लगे ब्लेडों को घुमाने के लिए किया जाता है. वीडर में इंजन को स्टार्ट करने के लिए रिकॉइल्ड स्टार्टर्स लगा होता है. इंजन चालू होने के बाद मशीन को कोई व्यक्ति धकेलकर आगे बढ़ाता है. अधिकांशतः इंजन शक्ति का उपयोग केवल ब्लेड को घूमने के लिए किया जाता है.

सरंचना : इसमें एक या दो इंजन लगे होते हैं. इंजन से ब्लेड, मैकेनिकल क्लच और गियरबॉक्स को जोड़ने के लिए एक शाफ्ट लगी होती है. इसकी गति को नियंत्रित करने के लिए चेन या बेल्ट ड्राइव अथवा वर्म गियर का उपयोग किया जाता है. सामान्यत दो या चार गियर वाले वीडर प्रचलन में रहते हैं. छोटे वीडर 1.5 से 5 हॉर्स पावर क्षमता वाले होते हैं. ज्यादातर मामलों में दो स्ट्रोक इंजनों की क्षमता लगभग 25 से 50 सीसी है. इनकी ईंधन खपत 60 से 80 मिनट प्रति लीटर होती है.

महत्व

- इसका इस्तेमाल खरपतवार को निकालने में होता है ■ सब्जियों की कतारों के बीच उग आये अनचाहे घास-फूस को आसानी से निकाल देता है ■ गन्ना की फसल में निराई, गुड़ाई तथा मिटटी चढाने में इस्तेमाल होता है ■ कपास के खेत में भारी मात्रा में खरपतवार होता है उसे इससे खत्म किया जा सकता है ■ फूलों की खेती में खरपतवार को निकलना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि इसके पेड़ बहुत नाजुक होते हैं और इनके बीच में नियत फैसला रहता है ऐसे में पॉवर वीडर काफी मददगार साबित होता है ■ बाग़बानी में वीडिंग के लिए उपयुक्त ■ पहाड़ी क्षेत्रों में काफी उपयुक्त रहता है क्योंकि यहाँ जमीं उबड़ खाबड़, असमान तथा पथरीली होती है चूँकि पावर वीडर आकार में छोटा रहता है इसलिए इसे किसी भी जमीन पर आसानी से इस्तेमाल किया जा सकता यही.

सब्सिडी (अनुदान या सहायता राशि): कृषि देश की समवर्ती सूची का हिस्सा है इसलिए यह राज्य तथा केंद्र सरकार का विषय है. केंद्र तथा विभिन्न राज्य सरकारें किसानों के हित में कई योजनाएं चलाती हैं. इनमें कृषि यंत्रों पर दी जाने वाली सब्सिडी जैसी स्कीम भी शामिल हैं. पावर वीडर पर भी केंद्र सरकार उसकी कीमतों के आधार पर सब्सिडी दे रही है यह इस प्रकार है- केंद्र सरकार देश के सभी राज्यों के किसानों को राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अंतर्गत पावर वीडर की खरीद के लिए 15,000 रूपये प्रति मशीन अथवा लागत का 50 फीसदी मूल्य अनुदान के रूप में दे रही है. इसके अलावा पूर्वी भारत में हरित क्रांति लाने की पहल के तहत संबंधित राज्यों में केंद्र सरकार पावर वीडर की खरीद पर 15,000 की विशेष सब्सिडी दे रही है। साथ ही संघीय सरकार 'कृषि यंत्रीकरण पर उपमिशन(एसएमएएम)' के अंतर्गत लागत मानक के आधार पर पावर वीडर (इंजन से संचालित) पर सब्सिडी दे रही है. इसके तहत 2 हॉर्सपावर से अधिक क्षमता वाले वीडर पर अनुसूचित जाति-जनजाति, छोटे तथा सीमांत किसान, महिलाएं तथा पूर्वोत्तर राज्यों के लाभार्थियों के लिए 19,000 रूपये की सहायता राशि दी जाती है. शेष लाभार्थियों को कुल कीमत का 40 फीसदी अनुदान दिया जाता है. पीटीओ चालित पावर वीडर की कीमतें अधिक होती हैं इसलिए इसकी खरीद पर 50,000 से 63,000 हजार की सब्सिडी निर्धारित है.

कहाँ संपर्क करें?: पावर वीडर की खरीद पर सब्सिडी का लाभ लेने के लिए किसानों को अपने जिले के 'जिला कृषि अधिकारी' या 'जिला उद्यान या बागवानी कार्यालय' में संपर्क करना होगा. यहाँ योजना के अनुरूप किसानों को पंजीकृत किया जाता है. इसके लिए किसानों को अपनी जमीन के कागजात और आधार कार्ड की प्रतियां जमा करानी होती हैं. इसके अलावा केंद्र तथा राज्य सरकार और जिला कृषि विभाग की वेबसाइट पर इससे संबंधित जानकारी ली जा सकती है और योजना का लाभ पाने के लिए ऑनलाइन आवेदन करने की सुविधा भी दी जाती है.

पावर वीडर से लाभ

- खरपतवार प्रबंधन के कामो के लिए पहले कई मजदूर खेत में लगाने पड़ते थे लेकिन पावर वीडर के प्रयोग से कम लागत और कम समय में सभी कम आसानी से ख़त्म हो जाते है ■ सब्जियों की फसलो के कतारों के बीच उगे हुए अनचाहे खरपतवार को इस यंत्र से आसानी से निकाला जा सकता है ■ इसका इस्तेमाल गन्ने की फसलो में निकाई-गुराई तथा मिट्टी चढाने के कार्य में भी इस्तेमाल किया जा सकता है ■ बागवानी फसलो से खरपतवारो को नष्ट करने के लिए इस यंत्र को उपयुक्त माना जाता है।

पावर वीडर की कीमत: इसकी कीमत की शुरुआत 15 से 20 हजार से हो जाती है और ये लगभग 1 से 1.5 लाख तक की होती है। समय-समय पर इसकी कीमत ऊपर नीचे होती रहती है। इसकी कीमत अलग-अलग कंपनियों पर भी निर्भर करती है आप अपनी जरूरत और आवश्यकता के अनुसार ही खरीदे।

कहाँ से खरीद सकते हैं: पावर वीडर आम तौर पर बड़े कृषि क्षेत्रों वाले बाज़ारों में उपलब्ध होते हैं क्योंकि वहां इनकी मांग ज्यादा रहती है. हालाँकि इसके लिए कई इंटरनेट आधारित ऑनलाइन प्लेटफॉर्म से भी इसकी आसानी से खरीद की जा सकती है. किसानों को बाजार कीमत पर इसे खरीदना होता है. इसका बिल जिला कृषि कार्यालय में आवेदन फॉर्म के साथ सलंग्न करना होता है. आवेदन स्वीकार होने के बाद सब्सिडी की रकम लाभार्थी के बैंक खाते में डीबीटी के माध्यम से आ जाती है.

निजी विचार: ऐसे वक़्त में जब दुनिया में कृषि में इस्तेमाल किये जा रहे हानिकारक रसायनों और पेस्टीसाइड के घातक परिणाम देखने को मिल रहे हैं. पावर वीडर इसका एक मजबूत और बेहतर विकल्प बन सकता है. साथ ही यह छोटे किसानों के लिए फायदेमंद है जो बड़े यन्त्र नहीं खरीद पाते हैं. पावर वीडर खरपतवार, निडाई-गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाने के लिए उपयुक्त साधन है इसलिए किसानों को इसे खरीदकर लाभ उठाना चाहिए.

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

कृषि में कीटनाशक का प्रयोग

राकेश, योगेश पंवार कृषि महाविद्यालय, जोधपुर, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

जसवंत उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय झालावाड़, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

कमलेश कुमार गोरा कृषि महाविद्यालय, सुमेरपुर पाली, कृषि वि.वि. जोधपुर (राजस्थान)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, वर्तमान समय में कृषि लगभाग 65 प्रतिशत लोगो का व्यवसाय है, और कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता आजकल एक प्रमुख चर्चा का विषय बना हुआ है। सभी कृषि वैज्ञानिक, उत्पादन एवं कृषि उत्पादकता बढ़ाने के सभी संभव प्रयासों में लगे हुए है, क्योकि हमें एक बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन चाहिये। यदि हम खेती में कृषि रसायनों का उपयोग ना करे तो हमारा कृषि उत्पादन 30-40 प्रतिशत तक गिर सकता है। वर्तमान समय में किसान अपनी खेती के प्रति जागरूक हो गया है। इसके लिए वह उन्नतशील बीज, खाद व उर्वरक का प्रयोग करने के साथ-साथ फसल सुरक्षा रसायनों का प्रयोग भी कर रहा है। लेकिन इसका पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव भी पड़ रहा है। उन्नत खेती के लिए उन्नत बीज, संतुलित उर्वरक, निराई-गुड़ाई, समय पर सिंचाई आदि के साथ-साथ अगर कीट नियंत्रण सुरक्षित रूप से नहीं किया जाए तो पैदावार में गिरावट हो सकती है। कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से प्रदूषण तो बढ़ता ही है, साथ ही साथ लाभदायक मित्र कीटों की संख्या में भी काफी कमी आती है। इसके साथ ही कीटों में कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधकता भी पैदा होती है।

कृषि में उपयोग किये जाने वाले रसायन ना केवल कृषि उत्पादकता को स्थिर बनाये हुए है, बल्कि ये किसान भाईयों के लिये उपयोग साबित हुए है। जैसे-■ रसायनिक कीटनाशक कीटों को नियत्रित करने का एक सस्ता और कम निवेश वाला कारगर उपाय है।

- कृषि रसायन अधिक कृषि उत्पादकता, उत्पाद की गुणवत्ता और उचित मूल्य पर पैदा करने के लिये आवश्यक है। ■ कृषि रसायन विभिन्न कीट समस्याओं, जैसे खड़ी फसलों मे कीड़ों को रोकने, निर्यात और आयात में उपचार के लिये कीटों के प्रसार को रोकने तथा संग्रहित उत्पादों के भंडारण के दौरान की कीटों के प्रकोप से बचाने के लिये आवश्यक है। ■ पालतू जानवर और मनुष्यों के संरक्षण में भी कृषि रसायानो का उपयोग किया जाता है। जैसे कि घरों में मकड़ियों, तिलचट्टे तथा पालतू जानवरो पर मक्खियों को रोकने के लिय इन रसायनों का उपयोग किया जाता हैं। ■ कृषि रसायन हमारे पर्यावरण की भी सुरक्षा करते हैं। यदि हम इनका उपयोग न करे तो भूमि क्षरण की संम्भावनाये बढ़ जाती है। इसलिये ये हमारी भूमि मृदा संरक्षण के लिये भी कुछ हद तक उत्तरदायी है।

कृषि रसायनों के दुष्प्रभावों को तीन तरीको से कम किया जा सकता है-

- कृषि रसायनो को प्रयोग से पूर्व किसान भाई एकीकृत कीट प्रबन्धन का प्रयोग करें, अर्थात जितना आवश्यक हो उतना ही कृषि रसायनों का प्रयोग करें। ■ जिन रसायनों का उपयोग सरकार द्वारा बन्द कर दिया गया है। उनका प्रयोग न करें, खरीदने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि हम कोई ऐसा कृषि रसायन का उपयोग तो नहीं कर रहे है जो हमारी फसलो तथा पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। ■ अच्छी तरह से प्रशिक्षित तथा सक्षम किसान भाई ही कृषि रसायनों का प्रयोग करें और हां रसायन खरीदने एंव प्रयोग करने से पहले किसी कृषि वैज्ञानिक या कृषि अधिकारी से अवश्य संपर्क करें। इन सभी उपायों से कृषि रसायनों द्वारा होने वाले दुष्प्रभावों से काफी हद तक बचा जा सकता है।

कीटनाशी खरीदते समय रखी जाने वाली सावधानियां

- कीटनाशक दवा हमेशा अधिकृत विक्रेता से ही खरीदें तथा बिल विक्रेता से आवश्यक रूप से लेवे। ■ कीटनाशक खरीदते समय ब्रांड, सक्रिय तत्व व उपयोग की आखिरी तारीख तथा प्रयागे की सिफारिश मात्रा अवश्य देखें। खुली पैंकिग वाला कीटनाशी न खरीदें। ■ जितना आवष्यक हो, केवल उतना ही कीटनाशी खरीदें।

कीटनाशी का घोल बनाते समय रखी जाने वाली सावधानियां

- कीटनाशी का घोल बनाने में हमेशा साफ पानी का इस्तेमाल करें।
- कीटनाशक की बोतल को मुंह से नहीं खोलें। ■ कीटनाशक घोल बनाते समय अपने आंख, कान, मुंह, नाक और हाथों को ढंककर रखं। ■ कीटनाशक का घोल बनाते समय हाथ के दस्तानो का इस्तेमाल करे साथ ही अपने मुंह को कपड़े से ढंके तथा सिर पर टोपी पहने इससे कीटनाशी के संपर्क से बचा जा सकता है। ■ हमेशा प्लास्टिक की थैली का इस्तेमाल हाथ के दस्तानों के रूप मे करे। एक साफ कपड़े के टुकड़े का प्रयोग रूमाल के रूप में करें। किसी दूसरे कीटनाशक युक्त प्लास्टिक की थैली दूसरे तरह के कीटनाशी में इस्तेमाल न करे। खुले हाथों से घोल न बनाएं। ■ कीटनाशी के डब्बे पर लिखी सावधानियां कीटनाशी का घोल बनाने से पहले अच्छे से पढ़ लें। ■ जरूरत के अनुसार ही कीटनाशी का घोल बनाएं उसे पात्र में छोड़े नहीं। ■ घोल बनाते समय सांद्र कीटनाशियों के संपर्क से बचे। तथा यह सावधानी कीटनाशक का डब्बा खोलते समय भी रखें। ■ कीटनाशी छिड़काव यंत्र को सूंघे नहीं। ■ कीटनाशक का इस्तेमाल से पूर्व आपके नजदीकी क्षेत्र में कार्यरत कृषि वैज्ञानिक सहायक कृषि अधिकारी, कृषि अधिकारी और कृषि पर्यवेक्षक की सलाह लेकर ही करे। ■ कीटनाशी का घोल बनाते समय कुछ खाना-पीना, चबाना नहीं चाहिए और ना ही धूम्रपान करना चाहिए।

कीटनाशी का छिड़काव करते समय सावधानियां

- कीटनाशक का छिड़काव सुबह एवं सांय के समय ही करे। ज्यादा धुप व तेज हवा चलने के दौरान कीटनाशी न छिड़कें।
- किसी भी कीटनाषी का प्रयोग करने से पूर्व उसके उपर लिखे निर्देशों को पढ़ लेना चाहिए। ■ रासायनिक कीटनाषकों का घोल हमेशा खुली हवा में ही बनाना चाहिए, क्योंकि कीटनाषक में से विषैली गैस निकलती है। ■ कीटनाशक का घोल ऐसे बर्तन में बनाना चाहिए जोकि घरेलू कार्यों में उपयोग नही होता हो।
- कीटनाशियों का घोल कभी हाथ से नहीं मिलाना चाहिए, इसके लिए लकड़ी या लोहे की छड़ का प्रयोग करना चाहिए। ■ छिड़काव के समय शरीर पर पूरे कपड़े पहनने चाहिए। हाथों में दस्ताने तथा मुंह पर मास्क या कपड़े से ढंक लेना चाहिए। ■ यदि तेज हवा चल रही हो तो कीटनाशियों का छिड़काव व बुरकाव सर्वदा वर्जित है। ■ खेत में धूल का भुरकाव या घोल का छिड़काव करते समय हवा के रूख के विपरित न चलें। ■ रासायनिक कीटनाशियों के खाली डिब्बों को तोड़ कर जला देना चाहिए तथा शीशियों को तोड़कर पानी के स्त्रोत से दूर जमीन में गाड़ देना चाहिए। ■ कीटनाशक का बारिश होने के पश्चात तथा बारिश होने के पूर्व छिड़काव न करें। ■ हवा के विपरीत दिशा में कीटनाशी का छिड़काव न करें। ■ छिडकाव या भुरकाव करने के बाद हाथ, पैर, मुँह, आदि सभी अंगों को साबुन से धो लेना चाहिए।

भंडारण के समय सावधानियां

- कीटनाशकों का भंडारण सूखे, ठण्डे एवं हवादार कमरें में करें और घरों में कभी भी कीटनाशकों का भंडारण नहीं करें।
- कीटनाशक को बच्चों एवं पशुओं की पहुंच से दूर रखे।
- कीटनाशक को खरपतवारनाशी, फफूंदनाशक के साथ नहीं रखें।
- कीटनाशी डिब्बों का उपयोग खाद्य पदार्थ एवं पानी के लिए न करें एवं पेय पदार्थ की बोतलों में कीटनाशी न भरें।
- कीटनाशक घोल के छिड़काव के बाद एवं उपयोग में लेने से पहले उपकरणों को साफ करें तथा उनकी जांच कर लेवें।
- उपचारित फसलों वाली जगह में जाने से पहले पर्चे में दी गई हिदायतों का पालन करें। ■ कीटनाशक घोल का छिड़काव करने के बाद स्नान कर लेवें एवं कपड़ों को धो लेवें।

कीटनाशक के हानिकारक प्रभाव रोकने के उपाय

- यदि गलती से कीटनाशक रसायन शरीर में चला गया हो तो, भरपूर मात्रा में गुनगुना पानी पिलाना चाहिए जिससे कि उल्टी के साथ कीटनाशक बाहर आ जाये। ■ यदि आराम न मिले तो डाक्टर से सम्पर्क कर उपचार करना चाहिए। ■ इसके अतिरिक्त आंख में कीटनाशक गया हो तो आंख को पानी से भरपूर धोना चाहिए। ■ संदूषित कपड़े तत्काल बदल दें और त्वचा को धो लें। ■ सांस में रूकावट आने पर फौरन कृत्रिम सांस देना आरंभ करें।

निष्कर्ष: कीटनाशकों के घातक प्रभाव से बचने के लिए आवश्यक है कि उन पर लिखे निर्देशों का पालन सही प्रकार से किया जाये तथा इसमें किसी भी प्रकार की असावधानी न बरती जायें क्योंकि जरा सी चूक होने पर जान जाने का भी खतरा रहता है। इसलिए कीटनाशकों का सावधानीपूर्वक इस्तेमाल करना जरूरी है इसका सर्वाधिक हानिकारक प्रभाव, प्रयोग करने वाले व्यक्तियों, किसानों तथा पशुओं के स्वास्थ्य पर पडता है। कृषि रसायनों के अधिक एवं गलत उपयोग से कीटकों में कीटनाशक रसायन के प्रति प्रतिरोधन क्षमता विकसित हो सकती है। जो एक गंभीर स्थिति पैदा कर सकती हैं। इन सब दुष्प्रभावों के बाद भी हम कृषि मे रसायनों का उपयोग बन्द नहीं कर सकते है, परन्तु सुरक्षित रूप से और प्रभावी ढंग से इनका इस्तेमाल करके इनके द्वारा होने वाले जोखिमों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। अतः कृषि रक्षा रसायनों का प्रयोग पूर्ण सावधानी से करना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

सौर ऊर्जा

विजय राज सिंह व्याख्याता
महाराजा अग्रसेन कृषि महाविद्यालय सूरतगढ़ (राजस्थान)
नेहा शर्मा छात्र बीएससी कृषि

सौर ऊर्जा परमाणु विखंडन प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप सूर्य में उत्पन्न होने वाली विकिरण ऊर्जा है। यह अंतरिक्ष या विद्युत चुम्बकीय विकिरण के माध्यम से पृथ्वी पर प्रसारित होता है ऊर्जा के क्वांटा को 'फोटॉन' कहा जाता है जो पृथ्वी के वातावरण और सतह के साथ परस्पर क्रिया करता है।

पृथ्वी पर पड़ने वाली सौर ऊर्जा जीवों के लिए वरदान है। बायोमास या हरे और अन्य रूपों में देखी जाने वाली सभी प्रकार की वनस्पतियां सूर्य के प्रकाश के अप्रत्यक्ष उपयोगकर्ता हैं। कई रासायनिक प्रतिक्रियाएं होती हैं जो पौधों की वृद्धि के लिए जिम्मेदार प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में जाती हैं। जीवमंडल 290 और 3000 um के बीच तरंग दैर्ध्य की सीमा में सौर ऊर्जा प्राप्त करता है। इसका लगभग 40-45% 400-700 um की सीमा में होता है और इसे प्रकाश संश्लेषक रूप से सक्रिय विकिरण के रूप में जाना जाता है। भारत में प्राप्त कुल सौर ऊर्जा का लगभग 78% बायोमास उत्पादन में परिवर्तित हो जाता है और दक्षता 0.023% हो जाती है।

हालाँकि, भारतीय गाँवों और विकास केंद्रों में सौर ऊर्जा का प्रत्यक्ष अनुप्रयोग इस अवधि में है:

• कृषि और पशु उत्पादों का सूखना • घरेलू उपभोग और विपणन के लिए मूल्यवर्धित उत्पादों को सुखाना। • सुखाने वाली इमारती लकड़ी, ईंधन आदि • घरेलू और व्यावसायिक अनुप्रयोगों के लिए पानी को गर्म करना • वाष्पीकरण द्वारा नमक का उत्पादन • मछली सुखाने • कृषि लाभ उत्पाद सुखाने

भारत में सौर ऊर्जा एक वर्ष में औसतन लगभग 275 दिन उपयोग के लिए उपलब्ध है। दुनिया के उष्णकटिबंधीय और शुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध सौर ऊर्जा फसलों, सब्जियों, फलों, फूलों, मछलियों, अनाज आदि को सुखाने के लिए ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। उत्पादों को सौर ऊर्जा के प्रत्यक्ष अनुप्रयोगों द्वारा सुखाया जाता है। सुखाने की प्रथागत तकनीक में गीली सामग्री को सीधे सूर्य और हवा के संपर्क में जमीन पर एक पतली परत में फैलाना शामिल है। भारतीय उपमहाद्वीप में ताजी कटी हुई फसल, अनाज, खोपरा, रेशेदार पौधों का सूखना सबसे आम है। समुद्र के किनारे छोटी मछलियों को सुखाने की प्रथा मानव सभ्यता से चली आ रही है। धूप में सुखाने का व्यावसायिक उपयोग हल्के उबले चावल, 'लाख' रंगे और बिना रंगे कपड़े आदि को सुखाने के लिए भी किया जाता है। आमतौर पर यह माना जाता है कि गर्म हवा में यांत्रिक सुखाने की तुलना में इन वस्तुओं का धूप में सुखाना किफायती है। पिछले तीन

दशकों के दौरान, कुछ उपयोगी उपकरण और प्रक्रियाएं विकसित की गई हैं कि सौर ऊर्जा का औद्योगिक और सामुदायिक अनुप्रयोग के लिए सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है और सूखे उत्पादों की गुणवत्ता सीधे सौर ऊर्जा के संपर्क में आने वाले उत्पाद से बेहतर पाई जाती है। चट्टानों, पक्की सतह, पतली चादर आदि पर उत्पादों को सुखाने में, सौर विकिरणों के संपर्क में आने पर, बेहतर गुणवत्ता वाले सूखे उत्पाद संदूषण से मुक्त हो जाते हैं। इस विधि से बेहतर है सोलर ड्रायर, ग्रीन हाउस और कॉम्बिनेशन कलेक्टर ड्रायर का उपयोग करना, जिन्हें भारतीय उपमहाद्वीप में सफलतापूर्वक आजमाया जा चुका है।

सोलर ड्रायर

सोलर ड्रायर एक ऐसा उपकरण है जिसका उपयोग सौर सुखाने वाले उत्पादों जैसे अनाज, फलों और कई लाभकारी उत्पादों के लिए किया जाता है। सौर ड्रायर के अंदर सौर प्रकाश में प्रवेश करने के लिए 150-200 um पॉलिथीन का उपयोग किया जाता है और इन दिनों ड्रायर के अंदर सौर प्रकाश की तीव्रता बढ़ाने के लिए परावर्तक का भी उपयोग किया जाता है।

जल आसवन

बैकरश पानी को पोटेंबल पानी में बदलने के लिए उपयोग किए जाने वाले सौर उपकरण को सोलर स्टिल के रूप में जाना जाता है। एक सौर में अभी भी काले रंग का उथले पानी का बेसिन होता है और आमतौर पर कांच से बना एक पारदर्शी वाष्प प्रकाश चंदवा होता है। काले रंग का उपयोग सौर विकिरण अवशोषण के लिए किया जाता है और पारदर्शी कांच का उपयोग सौर विकिरण में प्रवेश करने के लिए किया जाता है। सौर ऊर्जा बेसिन में पानी को गर्म करती है और वाष्पीकरण होता है। कांच के आवरण से टकराने वाले वाष्प कांच के आवरण के निचले हिस्से पर संघनित होते हैं और अंत में आसुत संग्रह चैनलों में प्रवाहित होते हैं। सामान्य तौर पर लगभग 3 लीटर प्रति वर्ग मीटर। उपज की पैदावार तब प्राप्त की जा सकती है जब स्थिर धूप में पर्याप्त धूप पड़ रही हो। सतह क्षेत्र के आधार पर, जल उपज की विभिन्न क्षमता प्राप्त की जा सकती है

सौर्य संग्राहक

यह एक उपकरण है जिसका उपयोग पानी गर्म करने, खाना पकाने के लिए सौर विकिरण एकत्र करने के लिए किया जाता है। उपयोगी कार्यों के लिए सौर ऊर्जा एकत्र करने के दो तरीके हैं फ्लैट प्लेट और सांद्रण प्रकार संग्राहक। फ्लैट प्लेट प्रकार के संग्राहकों की क्षमता लगभग 50न होती है और वे 100 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान तक सौर ऊर्जा एकत्र करने में सक्षम होते हैं, हालांकि अधिकांश फ्लैट प्लेट कलेक्टर 60 डिग्री सेल्सियस-70 डिग्री सेल्सियस के बीच सौर ऊर्जा एकत्र करते हैं। हालांकि 100 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान पर सौर ऊर्जा एकत्र करने के लिए सांद्रण संग्राहकों का उपयोग करना वांछनीय है। परवलयिक गर्त परवलयिक गर्त प्रकार संग्राहकों में सबसे आम प्रकार की इकाइयाँ हैं, सौर ऊर्जा को अपनी फोकल लाइन पर एक पतली लंबी पट्टी के रूप में केंद्रित किया जाता है जहाँ इस ऊर्जा को इकट्ठा करने के लिए अवशोषक पाइप रखा जाता है, सौर ऊर्जा को एकत्र किया जा सकता है तापमान लगभग 100-400 डिग्री सेल्सियस भिन्न होता है, इसलिए इसे प्रशीतन और एयर कंडीशनिंग सिस्टम आदि की भाप शक्ति के उत्पादन के लिए अपनाया जा सकता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

सहजन के फूलों का सेवन करने से शरीर को मिलने वाले फायदे व डाइट में शामिल करने का तरीका

डॉ. शीतल टॉक (सहायक प्रोफेसर)
भगवंत विश्वविद्यालय अजमेर (राजस्थान)

सहजन की फलियों की तरह इसके फूलों का सेवन भी सेहत के लिए बहुत फायदेमंद होता है, जानें सहजन के फूलों के सेवन से शरीर को मिलने वाले फायदों के बारे में। अच्छी सेहत के लिए रोजाना संतुलित और पौष्टिक आहार लेना जरूरी होता है। अगर आपका खानपान संतुलित है तो आपके शरीर में कई बीमारियां नहीं पनपती हैं। शरीर में पोषक तत्वों की कमी के कारण तमाम तरह की समस्याओं से जूझना पड़ता है। प्रकृति ने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए तमाम तरह के खाद्य पदार्थ हमें दिए हैं। इन्हीं में से एक है सहजन। सहजन को मोरिंगा ओलीफेरा के नाम से भी जाना जाता है और यह भारत में बहुत आम सब्जी है। बहुत से लोग सहजन के फल की सब्जी का सेवन करते हैं लेकिन तमाम लोग ऐसे भी हैं जिन्हें इसके फूल के सेवन के बारे में जानकारी नहीं है। दरअसल सहजन के फूल सेहत के लिए बहुत फायदेमंद होते हैं और इनमें बहुत से पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा मौजूद होती है। सहजन के फूलों में प्रोटीन, विटामिन और सेहत के लिए उपयोगी तमाम पोषक तत्व पाए जाते हैं। आइये जानते हैं सहजन के फूलों का सेवन करने से शरीर को मिलने वाले फायदे और इनमें मौजूद पोषक तत्वों के बारे में।

सहजन के फूल में पाए जाने वाले पोषक तत्व

आमतौर पर सहजन की फली का इस्तेमाल सबसे ज्यादा किया जाता है लेकिन सहजन के फूल भी उसकी फली जितने ही फायदेमंद होते हैं। सहजन के फूलों में एंटी-बैक्टीरियल गुण पाया जाता है जो हमारे शरीर की संक्रमण से रक्षा करता है। इसके अलावा इसमें प्रोटीन और विटामिन प्रचुर मात्रा में होते हैं जिसका सेवन सेहत के लिए बहुत उपयोगी माना जाता है। सहजन के फूलों का सेवन करने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है। सहजन के फूलों में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बेहद कम होती है और फैट भी बहुत कम मात्रा में पाया जाता है इसलिए इनका सेवन दिल के लिए भी उपयोगी माना जाता है। आइये जानते हैं सहजन के फूलों में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्वों के बारे में। • विटामिन ए • विटामिन बी1 • विटामिन बी 2 या राइबोफ्लेविन • विटामिन बी3 या नियासिन • विटामिन बी-6 • फोलेट और एस्कॉर्बिक एसिड • विटामिन सी • कैल्शियम • पोटैशियम • लोहा • मैग्नीशियम • फास्फोरस • जस्ता

सहजन के फूलों का सेवन करने से शरीर को मिलने वाले फायदे

तमाम पौष्टिक गुणों से युक्त सहजन के फूलों की सब्जी या चाय बनाकर उनका सेवन किया जा सकता है। इनका सेवन शरीर के लिए बहुत फायदेमंद होता है। सहजन में मौजूद एंटीफंगल, एंटीवायरल, एंटी डिप्रेसेंट और एंटी इंफ्लेमेटरी गुण शरीर के लिए बहुत फायदेमंद होते हैं। आइये जानते हैं सहजन के फूलों का सेवन करने से मिलने वाले फायदों के बारे में।

स्किन और बालों के लिए बेहद फायदेमंद

सहजन के फूलों का सेवन स्किन और बालों के लिए बहुत फायदेमंद होता है। बालों को फ्री रेडिकल्स से बचाने के लिए सहजन के फूलों का सेवन किया जाता चाहिए। सहजन के फूल में मौजूद प्रोटीन स्किन और बाल दोनों के लिए बहुत फायदेमंद होता है। सहजन के फूल की सब्जी का सेवन आपको स्किन की कोशिकाओं को होने वाले नुकसान से भी बचाता है। इसके साथ ही सहजन के फूल में हाइड्रेटिंग और डिटॉक्सीफाइंग गुण

होते हैं जो बालों को घना और मजबूत बनाये रखने का काम करते हैं। स्किन के इंफेक्शन और घाव आदि को भरने में भी सहजन के फूलों का सेवन काफी कारगर माना गया है। पेट और पाचन से जुड़ी कई समस्याओं में सहजन के फूलों का इस्तेमाल बहुत फायदेमंद होता है। कब्ज, गैस्ट्राइटिस और अल्सरेटिव कोलाइटिस जैसी पेट की समस्या में सहजन के फूलों का अर्क और इसके फूलों की सब्जी या साग का सेवन करना चाहिए। इसके फूलों की सब्जी का सेवन करने से पाचन तंत्र भी मजबूत होता है। इसमें मौजूद विटामिन बी की प्रचुर मात्रा पेट की समस्याओं को दूर करने और पाचन तंत्र को मजबूती देने का काम करती है।

हड्डियों के लिए बहुत फायदेमंद

सहजन के फूलों का सेवन हड्डियों के लिए बहुत फायदेमंद होता है। सहजन के फूल में कैल्शियम और फॉस्फोरस की पर्याप्त मात्रा होती है जो हड्डियों के लिए सबसे जरूरी तत्व माने जाते हैं। इसके अलावा सहजन के फूल की सब्जी का सेवन गठिया की समस्या में भी बहुत उपयोगी माना जाता है। हड्डियों से जुड़ी कई समस्याओं में सहजन के फूल का सेवन करने से फायदा मिलता है।

मेमोरी पॉवर और एकाग्रता बढ़ाने में उपयोगी

सहजन के फूलों का सेवन करने से आपकी याददाश्त और एकाग्रता बढ़ती है। सहजन के फूलों में ग्लूटामिक एसिड नामक तत्व पाया जाता है जो अमोनिया के नशे को रोकने में फायदेमंद होता है। ग्लूटामिक एसिड को एक्टिव न्यूरोट्रांसमीटर कंपाउंड भी माना जाता है जो आपकी एकाग्रता और याददाश्त को तेज करने में फायदेमंद होता है। सहजन का सेवन करने से आपकी सीखने की क्षमता भी बढ़ती है। मोमोरी पॉवर को बूस्ट करने के लिए सहजन के फूलों का सेवन करना चाहिए।

वजन कम करने में बहुत फायदेमंद: सहजन के फूलों का सेवन वजन कम करने के लिए बहुत फायदेमंद माना जाता है। आज के समय में वजन बढ़ने की समस्या से लाखों लोग पीड़ित हैं उनके लिए सहजन के फूलों की सब्जी का सेवन बहुत फायदेमंद हो सकता है। सहजन के फूलों में फैट की मात्रा बिलकुल न के बराबर होती है और इसमें कैलोरी भी बहुत कम होती है। इसलिए इसका सेवन वजन कम करने के लिए उपयोगी होता है। इसके अलावा सहजन के फूलों में क्लोरोजेनिक एसिड नाम का एंटीऑक्सीडेंट पाया जाता है जो शरीर से अतिरिक्त फैट को बर्न करने का काम करता है।

सहजन को फूलों को डाइट में शामिल करने के टिप्स: सहजन के फूलों को आप अपनी डाइट में कई तरीके से शामिल कर सकते हैं। इनके फूलों की सब्जी का सेवन सेहत के लिए बहुत फायदेमंद होता है। आप इसे सब्जी के रूप में अपनी डाइट में शामिल कर सकते हैं। सहजन के फूलों की सब्जी कई तरीके से बनाई जा सकती है। इसे आप अन्य सब्जियों के साथ मिलाकर भी तैयार कर सकते हैं। इसके अलावा आप सहजन के फूलों का काढ़ा, चाय और इसके फूलों के अर्क का नियमित रूप से सेवन कर सकते हैं।

सहजन की पत्तियों के साथ हल्दी लेना कितना फायदेमंद है, जानिए

क्या आप जानते हैं कि सहजन के पत्ते और हल्दी का मिश्रण आपको 5 तरह की स्वास्थ्य समस्याओं से बचने में मदद करता है, आइए जानें कैसे। अच्छा स्वास्थ्य सही मायने में किसी वरदान की तरह होता है क्योंकि जब हमारा स्वास्थ्य अच्छा होता है तो हमारी आधी समस्याएं ऐसे ही हल हो जाती है। सोचो अगर आप अक्सर बीमारियों से पीड़ित रहेंगे तो आपको भी अच्छा नहीं लगेगा। जब हम दर्द और परेशानी के साथ विभिन्न बीमारियों और विकारों से प्रभावित होते हैं, तो हम डॉक्टरों के पास बहुत सारा समय और धन खर्च करते है। अगर आप नियमित आधार पर आपको प्रभावित करने वाली इन बीमारियों का इलाज ढूढ़ रहे हैं तो घर में मौजूद इस प्राकृतिक उपचार की मदद से इसका रोक सकते हैं। हम सभी जानते हैं कि हमारी किचन और गार्डन में कई तरह के प्राकृतिक तत्व मौजूद है जो पर्याप्त शक्तिशाली होने के कारण कई बीमारियों का इलाज करता है। क्या आप जानते हैं कि सहजन के पत्ते और हल्दी का मिश्रण आपको 5 तरह की स्वास्थ्य समस्याओं से बचने में मदद करता है, आइए जानें कैसे।

सहजन की पत्तियों के साथ हल्दी लेने का तरीका: सहजन और हल्दी के फायदों के बारे में तो आप जानते ही होगें और अगर इन दोनों को एक साथ मिला लिया जाये तो यह किसी चमत्कार से कम होगा। इस उपाय को बनाने के लिए 10 सहजन के पत्ते को लेकर प्रेशर कुकर में नर्म होने तक पकाये और फिर इसमें आधा चम्मच हल्दी मिला लें। इसे हर सुबह नाश्ते के बाद 2 महीने तक लें।

डायबिटीज का उपचार करें: सहजन के पत्ते राइबोफ्लेविन में समृद्ध होने के कारण ब्लड शुगर के स्तर को नियंत्रित करने में मदद करता है। इस तरह से वह डायबिटीज के लक्षणों का प्रभावी ढंग से इलाज करता है।

भ्रूण स्वास्थ्य में सुधार करें: यह प्राकृतिक उपचार फोलेट और फोलिक एसिड में समृद्ध होता है, यह भ्रूण को पोषण देता है। जब गर्भवती महिला इसे ग्रहण करती है तो बच्चा स्वस्थ रहता है।

इम्यूनिटी को मजबूत बनाएं: हल्दी और सहजन के पत्ते का मिश्रण विटामिन सी से भरपूर होने के कारण आपकी इम्यूनिटी को मजबूत बनाता है और रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है।

कब्ज का इलाज: आहार फाइबर से भरपूर होने के कारण यह मल को नर्म बनाा है जिससे आंतों से मल आसानी से निकल जाता है और आप कब्ज की समस्या से बच जाते हैं।

उच्च कोलेस्ट्रॉल से बचाएं: सहजन के पत्ते में मौजूद एंजाइम अतिरिक्त कोलेस्ट्रॉल प्रभावी ढंग से आपके पेट के अंदरुनी हिस्से में अतिरिक्त कोलेस्ट्रॉल को अवशोषित करने में मदद करता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

खीरे की उन्नत खेती एवं कीट प्रबंधन

प्रीति देवतवाल
डॉ. श्रवण कुमार यादव, सरिता
सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर
सस्य विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि. उदयपुर

वानस्पतिक नाम: कुकुमिस स्टीव्स, **मूल स्थान:** भारत

यह एक बेल की तरह लटकने वाला पौधा है जिसका प्रयोग सारे भारत मे गर्मियो मे सब्जी के रूप् मे किया जाता है। खीरे के फल को कच्चा, सलाद या सब्जियो के रूप मे प्रयोग किया जाता है। खीरे के बीजो का प्रयोग तेल निकालने के लिए किया जाता है जो शरीर और दिमाग के लिए बहुत बढ़िया है। खीरे मे 96: पानी होता है।, जो गर्मी के मौसम मे अच्छा होता है। इस पौधे का आकार बड़ा, पत्ते बालो। वाले और त्रिकोणीय आकार के होते है और इसके फूल पीले र।ग के होते है। खीरा एम बी (मोलिब्डेनम) और विटामिन का अच्छा स्त्रोत है। खीरे का प्रयोग त्वचा, किडनी और दिल की समस्याओ के इलाज और अल्कालाइजर के रूप मे किया जाता है।

मिट्टी: इसको मिट्टी की अलग-अलग किस्मे जैसे की रेतली दोमट से भारी मिट्टी मे उगाया जा सकता है। खीरे की फसल के लिए दोमट मिट्टी मे जिसमे जैविक तत्वो की उच्च मात्रा हो और पानी का अच्छा निकास हो, उचित पैदावार देती है। खीरे की खेती के लिए मिट्टी का 6-7 होना चाहिए।

प्रसिद्ध किस्मे और पैदावार

पंजाब खीरा-1: यह किस्म 2018 मे जारी की गई। इस किस्म के फल हरे गहरे रग के होते हैं जिनका स्वाद कम कड़वा और औसतन भार 125 ग्राम होता है। इस किस्म के खीरो की औसतन लंबाई 13-15 सैमी. होती है। इसकी तुड़ाई सितंबर और जनवरी महीने मे फसल बोने से 45-60 दिनो के बाद की जा सकती है। सित।बर महीने मे बोयी फसल का औसतन पैदावार 304 क्विं. प्रति एकड़ और जनवरी महीने मे बोयी फसल की उपज 370 क्विं. प्रति एकड़ होता है।

पंजाब नवीन: यह किस्म 2008 मे तैयार की गई है । इस किस्म के पौधे के पत्तो। का र।ग गहरा हरा, फलो। का आकार बराबर बेलनाकार और तल मुलायम और फीके हरे र।ग का होता है। इसके फल कुरकुरे और कड़वेपन रहित और बीज रहित होते है। इसमे विटामिन सी की उच्च मात्रा पायी जाती है और सूखे पदार्थ की मात्रा ज्यादा होती है। यह किस्म 68 दिनो मे पक जाती है। इसके फल स्वादिष्ट, रग और रूप आकर्षित, आकार और बनावट बढ़िया होती है। इस किस्म की औसतन पैदावार 70 क्विं. प्रति एकड़ होती है ।

जमीन की तैयारी: खीरे की खेती के लिए, अच्छी तरह से तैयार और नदीन रहित खेत की जरूरत होती है। मिट्टी को अच्छी तरह से भुरभुरा बनाने के लिए, बिजाई से पहले 3-4 बार खेत की जोताई करे। रूड़ी की खाद, जैसे गाये के गोबर को मिट्टी मे मिलाये, ताकि खेत की उपजाऊ शक्ति बढ़ जाये। फिर 2.5 मीटर चौड़े और 60 सै.मी. के फासले पर नर्सरी बैड तैयार करे।

बिजाई

बिजाई का समय: इसकी बिजाई फरवरी-मार्च के महीने मे की जाती है।

फासला: 2.5 मीटर चैड़े बैड पर हर जगह दो बीज बोये और बीजो के बीच 60 सैमी. का फासला होना चाहिए।

बीज की गहराई: बीज को 2-3 सै.मी. गहराई पर बोये।

बिजाई का ढंग: छोटी सुर।गी विधि: इस विधि का प्रयोग खीरे की जल्दी पैदावार लेने के लिए किया जाता है। यह विधि फसल को दिस।बर और जनवरी की ठा।ड से बचाती है। दिस।बर के महीने मे 2.5 मीटर चैड़े बैडो। पर बिजाई की जाती है। बीजो। को बैड के दोनो। तरफ 45 सै।.मी. के फासले पर बोये। बिजाई से पहले, 45-60 सै।.मी. लम्बे और सहायक डा।डो। को मिट्टी मे गाढ़े। खेत को प्लास्टिक की शीट (100 गेज मोटाई वाली) को डा।डो। की सहायता से ढक दे। फरवरी महीने मे तापमान सही होने पर प्लास्टिक शीट को हटा दे।

गड्ढे खोद कर बिजाई करना: खालिया। बनाकर बिजाई करना, गोलाकार गड्ढे खोद कर बिजाई करना

बीज: बीज की मात्रा- एक एकड़ खेत के लिए 1.0 किलोग्राम बीज की मात्रा काफी है।

बीज का उपचार: बिजाई से पहले, फसल को कीटो और बीमारियो से बचाने के लिए और जीवनकाल बढ़ाने के लिए, अनुकूल रासायनिक के साथ उपचार करे बिजाई से पहले बीजो का 2 ग्राम कप्तान के साथ उपचार करे।

खाद

खाद	(किलोग्राम प्रति एकड़)	
यूरिया-90	एसएसपी 125	एमओपी-35
तत्व	(किलोग्राम प्रति एकड़)	
नाइट्रोजन-40	फॉस्फोरस-20	पोटाश-20

खरपतवार नियंत्रण: रासायनो। द्वारा निय।त्रित किया जा सकता है ग्लाइफोसेट 1.6 लीटर को प्रति 150 लीटर पानी मे मिलाकर स्प्रे करे। ग्लाइफोसेट की स्प्रे सिर्फ नदीनो पर ही करे मुख्य फसल पर ना करे।

सिंचाई: गर्मी के मौसम मे इसको बार-बार सिंचाई की जरूरत होती है और बारिश के मौसम मे सिंचाई की जरूरत नही। होती है। इसको कुल 10-12 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। बिजाई से पहले एक सि।चाई जरूरी होती है, इसके बाद 2-3 दिनो। के अ।तराल पर सि।चाई करे। दूसरी बिजाई के बाद, 4-5 दिनो के अ।तराल पर सि।चाई करे।

पौधे की देखभाल

बीमारिया और रोकथाम

एन्थ्राक्नोस/फल का गलना: यह बीमारी खीरे के लगभग सारे हिस्सो पर हमला करती है, जो जमीन से ऊपर होते है। पुराने पत्तो पर पीले र।ग के धब्बे और फलो। पर गहरे गोल धब्बे दिखाई देते है।

रोकथाम: फसल को इस बीमारी से बचाने के लिए फ।गसनाशी क्लोरोथैलोनिल और बेनोमाइल डाले।

मुरझाना: यह बीमारी इर्विनिया ट्रेकईफिला के कारण होती है। यह पौधे नाड़ी टिशुओ को प्रभावित करती है, जिस कारण पौधा सूख जाता है।

रोकथाम: इस बीमारी की रोकथाम के लिए पत्तो। पर कीटनाशक की स्प्रे करे।

पत्तों के सफेद धब्बे: पत्तो। के ऊपर की तरफ सफेद पाउडर वाले धब्बे दिखाई देना, इस बीमारी के लक्षण है, जिसके कारण पत्ते सूखने लग जाते है।

रोकथाम: इस बीमारी की रोकथाम के लिए 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम को 1 लीटर पानी मे मिला कर स्प्रे करे। इसको क्लोरोथैलोनिल, बैनोमाइल या डिनोकैप जैसी फ।गसनाशी स्प्रे द्वारा रोका जा सकता है।

चितकबरा रोग: पौधो। का विकास रुक जाना, पत्ते मुरझाना और फल के निचले हिस्से का पीला दिखाई देना इस बीमारी के मुख्य लक्षण है।

रोकथाम: इसकी रोकथाम के लिए डियाजीनॉन डाली जाती है। इसके लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एसएल 7 मि.ली. को 10 लीटर पानी में मिलाकर प्रयोग करे।

कीटो की रोकथाम

फल की मक्खी: यह खीरे की फसल मे पाये जाने वाला ग।भीर कीट है। मादा मक्खिया। नए फल की परत के नीचे की ओर अ।डे देती है। फिर यह फल के गुद्दे को भोजन बनाते है।, जिस कारण फल गलना शुरू हो जाता है और फिर टूट कर नीचे गिर जाता है।

रोकथाम: इसकी रोकथाम के लिए 3.0: पत्तो। पर नीम के तेल की स्प्रे करे।

फसल की कटाई: बिजाई से 45-50 दिनों बाद पौधे पैदावार देनी शुरू कर देते है। इसकी 10-12 तुड़ाईयां की जा सकती हैं। खीरे की कटाई मुख्य तौर पर बीज के नर्म होने और फल हरे और छोटे होने पर करें। कटाई के लिए तेज चाकू या किसी और नुकीली चीज का प्रयोग करें। इसकी औसतन पैदावार 33-42 क्विंटल प्रति एकड़ होता है।

बीज उत्पादन: भूरे रोग के फल बीज उत्पादन के लिए सबसे बढ़िया माने जाते हैं। बीज निकालने के लिए, फलो। के गुद्दे को 1-2 दिनो। के लिए ताजे पानी में रखा जाता है ताकि बीजों को आसानी से अलग किया जा सके। फिर इनको हाथो। से रगड़ा जाता है और भारी बीज पानी मे नीचे बैठ जाते हैं और इनको कई और कार्यों के लिए रखा जाता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

मूंग की खेती अधिक लाभदायक

आदर्श शर्मा, डॉ. शुभम मिश्रा
गोवर्धन लाल कुम्हार
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रोधोगिकी
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

मूंग भारत में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें 24 प्रतिशत प्रोटीन के साथ-साथ रेशे एवं लौह तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। मूंग की जल्दी पकने वाली एवं उच्च तापमान को सहन करने वाली प्रजातियों के विकास के कारण जायद में मूंग की खेती लाभदायक हो रही है। मूंग की उन्नत तकनीक अपनाकर जायद ऋतु में फसल का उत्पादन 10-15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक लिया जा सकता है। वैसे तो, मूंग की फसल लगभग तीनों मौसम जैसे-बसंत कालीन, वर्षा कालीन एवं ग्रीष्म कालीन आदि में उगाई जाती है। परंतु ग्रीष्मकालीन मौसम में मूंग की खेती करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है । मूंग की खेती उत्तर भारत में प्रायः खरीफ के मौसम में की जाती है। वर्षा ऋतु होने के कारण पीला मोजेक रोग इस फसल को अधिक मात्रा में क्षतिग्रस्त करता है। अतः मूंग की खेती ग्रीष्मकालीन (जायद) के मौसम में करने से भी अच्छी उपज मिलती है, साथ ही साथ भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़ाई जा सकती है।

बोने का समय

ग्रीष्मकालीन मूंग की बुआई का अनुकूल समय 10 मार्च से 10 अप्रैल होता है ग्रीष्मकाल में मूंग की खेती करने से अधिक तापमान तथा कम आर्द्रता के कारण बीमारियों तथा कीटों का प्रकोप कम होता है। परंतु इससे देरी से बुआई करने पर गर्म हवा तथा वर्षा के कारण फल्लियों को नुकसान होता हैं। अप्रैल में शीघ्र पकने वाली प्रजातियों को लगाना उत्तम होता है ।

भूमि और तैयारीः

मूंग को रेतीली से काली कपास वाली सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है परंतु इसकी खेती के लिये अच्छे जलनिकास वाली दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है। क्षारीय एवं अम्लीय भूमि मूंग की खेती के लिये उपयुक्त नहीं होती है। जायद की फसल के लिये पलेवा देकर खेत की तैयारी करनी चाहिये। 2-3 जुताई देशी हल से करने के बाद पाटा लगाना चाहिये जिससे मृदा भुरभुरी हो जाये और भूमि में नमी संरक्षित रहे।

बीजदर एवं बीजोपचार

ग्रीष्मकालीन मूंग की बुआई हेतु 20-25 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की दर से पर्याप्त होता है। बीजों को 2.5 ग्राम थायरम एवं 1.5 ग्राम कार्बेन्डाजिम या 4-5 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। फफूंदनाशी से बीजोपचार के पश्चात् बीज को राइजोबियम एवं पीएसबी कल्चर से उपचारित करें। राइजोबियम कल्चर से उपचारित करने के लिये 25 ग्राम गुड़ तथा 20 ग्राम राइजोबियम एवं पीएसबी कल्चर को 50 मिलीलीटर पानी में अच्छी तरह से मिलाकर 1 किलोग्राम बीज पर हल्के हाथ से मिलाना चाहिये एवं बीज को 1-2 घंटे छायादार स्थान पर सुखाकर बुआई के लिये उपयोग करना चाहिये।

बुआई का तरीका

मूंग को 25-30 सेमी कतार से कतार तथा 5-7 सेमी पौधे से पौधे की दूरी पर बुआई करें एवं बीज को 3-5 सेमी गहराई पर बोना चाहिये जिससे अच्छा अंकुरण प्राप्त हो सके।

प्रमुख किस्मों के नाम, पकने की अवधि एवं उनकी उपज

किस्में	पकने की अवधि (दिन)	उपज (कि./है.)
नरेंद्र मूंग-1	65-70	12-15
PDN&54	70-75	10-12
पन्त मूंग-4	65-70	12-15
PS&16	60-65	10-12
मेहिनी (8)	70-75	10-12
K&851	60-65	10-12
RMG&62	60-65	10-12
पूसा बैसाखी	60-65	10
वर्षा	55-60	10
सुनैना	60	60
G&15	65	12-15

ग्रीष्मकालीन मूंग की बुवाई से कटाई तक की अवस्थाएं

तीव्र वृद्धि अवस्था: बुवाई से 15-25 दिन बाद
पत्तियाँ बनने की अवस्था : बुवाई से 25-30 दिन बाद
फूल आने की अवस्था : बुवाई से 40-45 दिन बाद
फलियाँ बनने की अवस्था : बुवाई से 45-70 दिन बाद
पकने की अवस्था : बुवाई से 80-90 दिन बाद

पोषक तत्व प्रबंधन

सामान्य रूप से मूंग की फसल में 15-25 किलोग्राम नत्रजन, 40-60 किलोग्राम स्फुर तथा 20-30 किलोग्राम पोटाश एवं 20 किलोग्राम गंधक प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। सभी उर्वरकों को बुआई के समय डालना चाहिए।

जल प्रबंधन

जायद में हल्की भूमि में 4-5 बार सिंचाई की जबकि भारी भूमि में 2-3 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि शाखायें बनते समय तथा दाना भरते समय भूमि में नमी पर्याप्त रहे।

खरपतवार प्रबंधन

जायद की फसल में पहली सिंचाई के पश्चात् हस्तचालित हो या हाथ से निंदाई करके खरपतवार निकालें। दूसरी निंदाई फसल में आवश्यकतानुसार की जा सकती है।

रोग प्रबंधन

मूंग में फफूंदजनित रोगों में चूर्णी कवक, मैक्रोफोमिना झुलसन, सरकोस्पोरा पर्ण दाग तथा एन्थ्रेक्नोज प्रमुख हैं। इन रोगों की रोकथाम के लिये रोगरोधी किस्मों का चयन करें उचित बीजोपचार करें, समय पर नींदा नियंत्रण करें तथा खेत में उचित जल निकास रखें। तथा बुआई के 30 दिन बाद फसल पर कार्बेन्डाजिम दवा की 500 ग्राम मात्रा 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आवश्यकता अनुसार 15 दिन बाद छिड़काव दोबारा कर सकते हैं। इसके अलावा मूंग में पीला मोजेक या पीली चितेरी रोग अधिक लगता है यह एक विषाणुजनित रोग है जिसका एक पौधे से दूसरे पौधे में संक्रमण सफेद मक्खी द्वारा होता है। सर्वप्रथम नई पत्तियों की नसों के बीच में पीले और हरे रंग के कोणीय धब्बे पड़ते हैं बाद में प्रभावित पत्तियों का पीलापन धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और पूरी पत्ती पीली पड़ जाती है। इसकी रोकथाम के लिये रोगरोधी प्रजातियां लगायें। खेत में ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रारंभ में कुछ ही रोगी पौधे होते है जिन्हें लक्षण दिखते ही उखाड़कर नष्ट कर दें और सफेद मक्खी की रोकथाम करें। सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिये इमिडाक्लोप्रिड की 150 मिली या डाइमिथिएट की 400 मिली प्रति हेक्टेयर मात्रा 400 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें और 12-15 दिन में छिड़काव दोहरायें। सफेद मक्खी के पोषक खरपतवारों को खेत की मेड़ों पर या आसपास न रहने दें ।

कीट प्रबंधन

मूंग की फसल पर काटने वाले एवं रसचूसक दोनों प्रकार के कीटों का प्रकोप होता है। भेदक कीटों में पिस्सू भृंग, फली भेदक कीट तथा पत्ती मोड़क कीट प्रमुख हैं जिनके नियंत्रण के लिये प्रोफेनोफॉस की 1 लीटर या क्लोरेन्ट्रानिलिट्रोल की 500 मिली या स्पाइनोसैड की 125 ग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से दो बार छिड़काव करें। रस चूसक कीटों जैसे सफेद मक्खी, थ्रिप्स या जैसिड्स के नियंत्रण के लिये इमिडाक्लोप्रिड की 150 मिली या डाइमिथिएट की 400 मिली प्रति हेक्टेयर मात्रा का छिड़काव करें। भेदक एवं रसचूसक दोनों प्रकार के कीटों का प्रकोप होने पर प्रोफेनोसाइपर दवा की 1 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव कर कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है ।

कटाई, गहाई एवं भंडारण

जब मूंग की 85 प्रतिशत फलियां परिपक्व हो जायें तब फसल की कटाई करें। अधिक पकने पर फलियां चटक सकती हैं अतः कटाई समय पर किया जाना आवश्यक होता है। कटाई उपरांत फसल को गहाई करके बीज को 9 प्रतिशत नमी तक सुखाकर भंडारण करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

प्रोम खाद क्या है

रोशन कुमावत
अंजू बिजारणियाँ शस्य विज्ञान विभाग
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

प्रोम (फॉस्फोरस रिच आर्गेनिक मेन्योर) एक फॉस्फोरस युक्त जैविक खाद है जिसे उच्च श्रेणी के रॉक फॉस्फेट एवं कार्बनिक पदार्थो जैसे कि कृषि अपशिष्टों, गोबर, करंज की खली, प्रेसमड, फल उद्योगों से प्राप्त कचरा इत्यादि के सम्मिश्रण से तैयार किया जाता है। इसमें 15-18 प्रतिशत फॉस्फोरस, 15-16 प्रतिशत जैविक कार्बन, 4-5 प्रतिशत सल्फर, 15 प्रतिशत नमी एवं 20:1 कार्बन नाईट्रोजन का अनुपात होता है। करीब सौ दिन बाद तैयार इस खाद को खेत में डाल दिया जाता है।

इस खाद के उपयोग से खेतों की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। कृषि अपशिष्ट के द्वारा बनने की वजह से यह पूरा जैविक होता है। उच्च गुणवता युक्त प्रोम मृदा सुधारक का कार्य करता है। प्रोम फॉस्फोरस की आवश्यकता की पूर्ति ही नहीं करता बल्कि अन्य पोषक तत्व जैसे कि पोटाश, कैल्शियम, गन्धक, जस्ता, मैग्नीशियम एवं लोहा प्रचुर मात्रा में प्रदान करता है। इस खाद में कार्बन एवं नत्रजन का अनुपात सही होने की वजह से मृदा की वायु संचारता एवं जल संग्रहण क्षमता भी अच्छी बनी रहती है। प्रोम सभी प्रकार की मृदाओं जैसे अम्लीय, उदासीन एवं कम क्षारीय के लिए काफी उपयोग सिद्ध हुआ है । देश के विभिन्न भागों में विभिन्न फसलों पर प्रयोग करने से यह सिद्ध हो चुका है कि यह खाद गेहूँ, चावल, सोयाबीन सरसों, मूगंफली, चना, कपास, चंवला, मिर्ची एवं पान जैसी फसलों के लिए बहुत लाभकारी है। यह खाद अन्य रासायनिक उर्वरकों की तुलना में काफी सस्ता पड़ता है यह फॉस्फोरस का सस्ता एवं सुलभ स्त्रोत है। इसमें उपलब्ध फॉस्फोरस के फसलों पर परिणाम दीर्ध अवधि तक देखे जा सकते है। इससे एग्रो-इण्डस्ट्रीज के उप-उत्पादों का उचित सदुपयोग हो जाता है । इसे किसान घर पर ही आसानी से तैयार कर सकते है।

प्रोम खाद हेतु आवश्यक सामग्री: प्रोम बनाने के लिए कई कृषि अपशिष्टों को प्रयोग में लाया जाता है । इनमे से प्रैसमड महत्वपूर्ण एवं सस्ता अपशिष्ट है जो आसानी से प्राप्त हो जाता है। प्रोम निर्माण में निम्न सामग्री प्रयोग में लायी जाती है, जिन्हें देश के विभिन्न प्रदेशों से एकत्रित किया जा सकता है।

- **प्रैसमड:** यह गन्ने से चीनी निर्माण के दौरान बनने वाला उप उत्पाद है।
- **मधुशाला कचरा (डिस्टलेरी वेस्ट):** शुगर मील में मीथेन गैस निर्माण के पश्चात् प्राप्त होने वाला पदार्थ मधुशाला कचरा कहलाता है।

- **रॉक फॉस्फेट:** उच्च श्रेणी के रॉक फास्फेट में 34 प्रतिशत फॉस्फोरस होता है जिसे राजस्थान राज्य खान एवं खनिज लिमिटेड, उदयपुर से आसानी से एवं सस्ती दर 3100 रूपये प्रति टन पर प्राप्त किया जा सकता है।
- **रॉक फास्फेट एवं प्रेसमड का अनुपात (1:3):** प्रोम उत्पादन के लिए 100 मैट्रिक टन के मिश्रण में रॉक फास्फेट एवं प्रैसमड को क्रमशः 30 प्रतिशत एवं 70 प्रतिशत के अनुपात में मिलाया जाता है।
- **सूक्ष्म जीवीय संवर्धन:** यह संवर्धन जाइगोट इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड से प्राप्त किया जा सकता है। इस संवर्धन में संवर्ध ट्राईचूरूस स्पाईरेलिस, एग्रोबैक्टीरियम रेडियोबेक्टर, यूरोमाइसीज फेसियोजी, क्लोरोस्पोरियम रेसीनी इत्यादि सूक्ष्म जीव होते है।
- फॉस्फेट एवं एजोटोबेक्टर कल्चर।

प्रोम बनाने की विधियां: प्रोम बनाने के लिए निम्न तरीका/विधि को अपनाया जाता है ।

- **प्रेसमड से प्रोम खाद का निर्माण:** प्रोम निर्माण बायो कम्पोस्टिंग के सिद्धांत पर आधारित है। इसके उत्पादन में किण्वण प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । प्रोम खाद बनाने के लिए प्रैसमड में निर्धारित मात्रा में रॉक फॉस्फेट मिलाया जाता है। यह सामान्यतया 100 मैट्रिक टन के मिश्रण में 70 मैट्रिक टन प्रैसमड एवं 30 मैट्रिक टन रॉक फॉस्फेट होता है। इस मिश्रण को थर्मोफिलिक बेक्टीरिया एवं मिजोफाइलिक कवक से युक्त जैव संवर्धन के साथ संरोपण किया जाता है। इस मिश्रण को जूट या प्लास्टिक से ढ़क दिया जाता है व नियमित रूप से समय-समय पर प्रतिदिन डिस्टेलेरी वेस्ट का छिड़काव करके सड़ाया जाता है। प्रतिदिन इस मिश्रण को पलटा जाता है, साथ ही 60 प्रतिशत नमी भी कायम रखी जाती है। थर्मोफाइलिक बैक्टीरिया गुणन के दौरान ऊर्जा उत्पन्न करते हैं जिससे बायोमास के तापमान में वृद्धि होती है। उत्पन्न उच्च तापमान से वाष्पीकरण होता है जिससे बायोमास का वजन कम हो जाता है और कार्बनिक खाद के विघटन के दौरान उत्पन्न कार्बन डाई ऑक्साइड गैस कार्बनिक अम्ल का निर्माण करती है जो रॉक फॉस्फेट को घोलकर फॉस्फोरस की उपलब्धता को बढ़ा देता है । इस प्रकार तैयार अन्तिम उत्पाद में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा अधिक होती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में लगभग 60-90 दिन का समय लगता है और लगभग 1,25,000 लीटर डिस्टलेरी वेस्ट की आवश्यकता होती है । इस प्रकार 100 मेट्रिक टन के मिश्रण से 39.25 मैट्रिक टन प्रोम का निर्माण होता है।
- **गोबर से प्रॉम खाद बनाना:** प्रॉम खाद बनाने के लिए 8 फीट लंबा, 6 फीट चौड़ा, 3 फीट गहरा गड्ढा बनाते है या आवश्यकता अनुसार छोटा एवं बड़ा गड्ढा बना सकते है। प्रॉम खाद बनाने के लिए 100 किलो रॉक फॉस्फेट के साथ 1600 किलो ताजा गोबर, 1 किलो फॉस्फेट कल्चर एवं 1 किलो एजोटोबेक्टर की आवश्यकता होती है (एक भाग रॉक फॉस्फेट के साथ तीन भाग शुष्क कार्बनिक पदार्थ), ताजा गोबर, पशु मूत्र एवं रॉक फॉस्फेट को अच्छी तरह मिला कर पानी छिड़क कर गीला कर देते है। इसके पश्चात् गड्ढे में भर देते है और नमी बनाये रखते है। खाद में नमी बनाये रखने के लिए प्लास्टिक की चादर/फसल अवशेष से खाद के ढेर को ढक देते है। 50-60 दिन बाद खाद को अच्छी तरह पलटी देकर मिला देते है और पानी छिड़कर नम बनाये रखते है। 100 दिन बाद खाद में एक किलो फॉस्फेट एवं एक किलो एजोटोबक्टर कल्चर अच्छी तरह मिला देते है और नम बना देते है। इस प्रकार से प्रॉम खाद 110-120 दिन में बनकर तैयार हो जाता है ।
- **फसल अवशेष एवं पौधे के पत्तियों से प्रॉम खाद बनाना:** एक भाग उच्च श्रेणी का रॉक फॉस्फेट (34/74) के साथ दो भाग शुष्क पदार्थ के आधर पर फसल अवशेष(सरसों, गेहूँ, धान, मक्का, ज्वार, तिल एवं दलहनी फसल आदि) या पौधों की पत्तियों की आवश्यकता होती है। फसल अवशेषों को छोटे-छोटे टुकड़े बना लेते है। 8 फीट लम्बा, 6 फीट चैड़ा, 3 फीट गहरा गड़ढा बनाते है। गड़ढे में फसल अवशेष के छोटे-छोटे टुकडे बनाकर या पौधो के अवशेष को रॉक फॉस्फेट के साथ अच्छी तरह मिला देते है एवं पानी का छिड़काव कर गीला कर देते है इसके पश्चात् गड़ढे में भर देते है और पानी का छिड़काव कर नम बना देते है। खाद के ढ़ेर को नम बनाये रखने के लिए पानी डालते रहते है। खाद में नमी बनाये रखने के लिए प्लास्टिक की चादर/फसल अवशेष से खाद के ढ़ेर को ढ़क देते है। 30-40 दिन बाद खाद को अच्छी तरह मिला देते है एवं पानी डालकर गीला कर देते है। 100 दिन बाद एक किलो फॉस्फेट कल्चर एवं एक किलो एजोटोबेक्टर कल्चर मिलाकर खाद के ढ़ेर को अच्छी तरह मिला देते है और पानी का छिड़काव कर गीला कर देते है। 110-120 दिन में खाद सड़कर प्रॉम खाद के रूप में तैयार हो जाता है।

वर्मी प्रोम: प्रॉम खाद को जल्दी बनाने के लिए केचुओं का उपयोग कर वर्मी प्रॉम भी बनाया जा सकता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

सरंक्षित खेती में ऐसे करें प्रमुख रोगों का एकीकृत प्रबंधन

शिप्रा शर्मा (विद्यावाचस्पति छात्रा)
आनंद चौधरी (छात्र) पादप व्याधि विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि वि.वि.)
अर्जुन लाल यादव (सहायक आचार्य) पादप रोग विज्ञान, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय)
रामावतार यादव (सहायक आचार्य) कीट विज्ञान, सुरेन्द्र कौर मेमौरियल कृषि महाविद्यालय, 24 बी.बी. पदमपुर

ग्रीन हाउस खेती संरक्षित खेती का एक रूप है। आधुनिक कृषि में, संरक्षित संरचनाओं में अधिक उत्पादन की अत्यधिक क्षमता होती है। उपज की मात्रा और गुणवत्ता भी खुले मैदान में उत्पादित उत्पादों की तुलना में काफी बेहतर होती है। खुली स्थितियों की तुलना में इन संरचनाओ में शुद्ध रिटर्न अधिक है। संरक्षित की प्रारंभिक लागत संरचनाएँ अधिक होती हैं लेकिन इसकी भरपाई 3.5 वर्षों में फसलों के अच्छे उत्पादन के साथ की जाती है।

परन्तु आजकल सरंक्षित खेती में बढ़ते रोगों के कारण किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है। इसलिये उत्पादकता बनाये रखने के लिये रोगों का नियंत्रण व पौधों का सरंक्षण अति आवश्यक है। संरक्षित खेती अथवा पॉलीहाउस में उगाने वाली फसलेंरू इसमें मुख्यतः बैंगन, टमाटर, लौकी, शिमला मिर्च, खीरा, कद्दू मिर्च, गोभी जैसी सब्जियों का उत्पादनकियाजाताहै। सब्जियों के अलावा फूलों व फलों का उत्पादन भी किया जाता है।

पॉलीहाउस में फसलों में लगने वाले प्रमुख रोग एव रोग नियंत्रण व रोकथाम: टमाटर व शिमला मिर्च का उत्तर भावी अंगमारी रोगरू यह बहुत विनाशकारी रोग होता है । यह रोग टमाटर या शिमला मिर्च के पत्तों पर गोलाकार या अनियमित, बल्कि बड़े, हरे-काले घाव के रूप में दिखाई देना शुरू होता है। ये घाव तेजी से बढ़ते हैं और काले अथवा भूरे से बैंगनी-काले हो जाते है। जब रोग हरे टमाटर पर विकसित होता है तब टमाटर के फल पर, बड़े, भूरे, चमड़े के जैसे दिखने वाले घाव बनते है, जो अक्सर फल के ऊपरी सतह पर केंद्रित होते हैं। घाव के बाहरी किनारे के पास व पत्तियों के नीचे कवक का विकास दिखाई देता है। तने पर संक्रमित क्षेत्र भूरे रंग के दिखाई देते हैं।

एकीकृत प्रबंधन

- हरी खाद के बाद ट्राइकोडर्मा का प्रयोग जुताई के एक सप्ताह के भीतर पाउडर @ 5 किग्राध्हेक्टेयर करना चाहिए।
- प्रमाणित और स्वस्थ बीजों का प्रयोगकरें। प्रत्यारोपण से पहले बीजों को थीरम @ 2-3 ग्राम/किलो ग्राम बीज से उपचारित करना चाहिए।
- ग्रीन हाउस में प्रभावी ढंग से की गई मल्चिंग रोग की गंभीरता को कम करता है क्योंकि इससे मिट्टी की सतह से नमी कम मिलती है। साथ ही सभी सवंमित फसलों, मलबे और फलों को ग्रीन हाउस से बाहर एकत्र किया जाना चाहिए और जला देना चाहिए। ● कॉपर हाइड्रोक्सी क्लोराइड 50% **WP@ 3g** लीटर या मेटलैक्सिल एम जेड 72% **WP@ 2g**/लीटर या मैनकोजेब 75%WP@ 2 ग्राम/ली. पानी का छिड़काव करना चाहिए। ● गंभीर रूप से प्रभावित नेट-हाउस में शिमला मिर्च की खेती से बचना ही बेहतर है।

ग्रेमोल्ड रोग: ये मुख्यतः टमाटर, शिमला मिर्च, खीरा, बैंगन इत्यादि में होता है। हल्के भूरे या भूरे रंग के धब्बे सबसे पहले पत्तियों या फूलों की पंखुड़ियों पर दिखाई देते हैं, जो भूरे-भूरे रंग के कवक विकास से आच्छादित हो जातेहैं। सवंमित पत्तियां और फूल मुरझा जाते है और बाद में झड़ जाते हैं।तना भी सवंमित हो सकता हैं, जहाँ सवंमित पत्ती तने से मिलती है वँहा अंडाकार धब्बे बन जाते है। पुराने फूलों की पंखुड़ियाँ विशेष रूप से अति संवेदनशील होतीहैं। फल की त्वचा आमतौर पर सड़े हुए क्षेत्र से टूट जाती है एवं कवक का विकास स्थान दिखाई देता है।

एकीकृत प्रबंधन

- अच्छे वायु परिसंचरण के लिए पौधों के बीच पर्याप्त दूरी एवं खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। अत्यधिक नमी और पर्ण समूह पर पानी नहीं बनने देना चाहिए। ● पत्तियों पर पानी के संघनन को

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

रोकने के लिए रात में ग्रीनहाउस तापमान को बाहर के तापमान से अधिक बनाए रखें। ● पंजीकृत कवकनाशी अर्थात क्लोरोथालोनिल 75% **WP** या मैनकोजेब 75% **WP @ 2g**/लीटर या डाईफेनकोनाजोल 25% **WP @ 0.5ml**/लीटर या इप्रोडिओन 50% **WP @ 2g**लीटर या अजोक्सिस्टरोबिन 23% **SC @ 0.5ml**लीटर या डायथोफेन कार्बथियोफानेट-मिथाइल 65% **WP @** 0.5 **ml**/लीटर का 5-7 दिनों के अंतराल में छिड़काव करना चाहिए।

एन्थाक्नोज या डाईबैक: विकसित पौधे में शाखाएं ऊपर से नीचे की और सूखना शुरू होती है व सूखे भाग की पत्तियां भी झड़ जाती हैं। फलों पर आक्रमण उनके पकने की अवस्था मे होता है। जब फल लाल होने लगते हैं, उस समय उन पर छोटे-छोटे काले तथा गोल धब्बे दिखाई पड़ते हैं जो कि अन्दर की ओर धंसे हुए होते हैं, ये धब्बे बाद में गुलाबी रंग के हो जाते हैं। मिट्टी, फसलों के अवशेष व सर्वमित बीज इस कवक के प्रसार के साधन हैं। यह रोग वर्षा ऋतु समाप्त होने पर जब दिन का तापमान अधिक होता है व रात्री में काफी नमी होती है, तब प्रारम्भ होता है। यह रोग भी आमतौर पर शिमला मिर्च पर आता है।

एकीकृत प्रबंधन

- फील्ड फॉर्मूलेशन के 10 प्रतिशत सांद्रता वाले घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करते रहें। रोग का प्रकोप दिखने पर इण्डोफिल एम- 45 (2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) का एक छिड़काव करें तथा उसके बाद फील्ड फॉर्मूलेशल का छिड़काव करें। ● प्रमाणित और स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें।

फ्यूजेरियम विल्ट: यह रोग 'फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम उपजाति कैप्सीसी द्वारा होता है। यह कवक मिट्टी तथा सर्वमित बीज द्वारा फैलता है। पौधे पर इस रोग के लक्षण सब से पहले ऊपर की पत्तियों पर आते हैं जो पीली होकर मुरझाने लगती है। कुछ दिनों बाद पूरा पौधा पीला होकर मुरझा जाता है । यह रोग भी मुख्यतरू शिमला मिर्च पर आता है।

एकीकृत प्रबंधन

- पॉलीहाउस में शिमला मिर्च व टमाटर फसल हेतु स्वस्थ पौध का ही चयन करें। पॉलीहाउस में शिमला मिर्च व टमाटर फसल की आवश्यकता से अधिक सिंचाई न करें।
- फील्ड फॉर्मूलेशन के 10 प्रतिशत सांद्रता वाले घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करते रहें।
- रोग का प्रकोप दिखने पर पंजीकृत कवकनाशी अर्थात क्लोरोथालोनिल 75% **WP** या मैनकोजेब 75% **WP @ 2g** लीटर या डाईफेनकोनाजोल 25% **WP @ 0.5ml**/लीटर का 5-7 दिनों के अंतराल में छिड़काव करना चाहिए।

चर्णी फफूंद रोग: यह रोग टमाटर व शिमला मिर्च दोनों पर आता हैं। पत्तों की निचली सतह पर हल्के सफेद रंग के धब्बे पड़ जाते हैं और उनकी ऊपरी सतह पर पीले रंग के धब्बे बन जाते हैं, जिनका केन्द्र भूरे रंग का हो जाता हैं।रोग ग्रस्तपत्तियॉ समय से पहले गिर जाती हैं।

एकीकृत प्रबंधन

- सदैव प्रमाणित और स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें। रोग का प्रकोप दिखने पर सल्फेक्स (2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) या कैराथेन (1 मिली लीटर प्रति लीटर पानी) के घोल का एक छिड़काव करे और उसके बाद फील्ड फॉर्मूलेशन का छिड़काव जारी रखें।

- प्रत्यारोपण से पहले बीजों को थीरम @ 2-3 ग्राम/किलोग्राम बीज से उपचारित करना चाहिए।

झुलसा रोग: ये मुख्यतः खीरे में होता है, जो कि विषाणु जनित रोग है। खीरे पर मोजैक विषाणु का आक्रमण मुख्य रूप से होता है। रोग के प्रभाव से पत्तियों पर पीले धब्बे पड़ जाते है और पत्तियां सिकुड़ जाती है अंत में पत्तियां पीली होकर सुख जाती है फलों पर हल्की कर्बुरण से लेकर मस्सेदार वृद्धि तक दिखाई पड़ती है फल आकार में छोटे टेढ़े-मेढ़े, सफेद और कम संख्या में बनते है। यह रोग मुख्य रूप से एफिड व सफेद मक्खियों द्वारा फैलता है।

एकीकृत प्रबंधन

- इसके रोकथाम के लिए दो से तीन के बीच मे सिंचाई करते रहना चाहिए, फसल के चारों के आरे ट्राईकोकार्ड लगाए, प्रकाश प्रपंच का प्रयोग करें।
- प्रभावित पौधे को उखाड़ कर खेत से दूर मिट्टी में दवा दे। ● 15 दिन के अतंराल में कीटनाशक रोगर या मैटासिस्टाक्स दो मिली लीटर प्रति ली की दर से छिड़काव करें। सदैव प्रमाणित और स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें।
- विषाणु जनित रोगों में बचाव ही उपचार है।

म्लानि एवं जड़ विगलन रोग

आमतौरपर यह रोग खीरा व खरबूज मे पाया जाता है। बीजपत्र सड़ने लगता है। बीजपत्र व नए पत्ते हल्के पीले होकर मरने लगते हैं, रोग ग्रसित पत्तियां एवं पूरा पौधा मुरझा जाता है। नई पौधे का तना अंदर की तरफ भूरा होकर सड़ने लगता है। पौधे की जड़ भी सड़ जाती हैं।

एकीकृत प्रबंधन

- खेत की गर्मी में जुताई करें, साथ ही खाद का प्रयोग करें. ट्राइकोडर्मा 3-5 कि. ग्रा.ध्हे की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर खेत में प्रयोग करें।
- रोग ग्रसित पौधों को खेत से निकालकर जला देना चाहिए। ● बीज को कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।

जड़ गाठ रोग

यह बैंगन में होने वाला प्रमुख रोग है। यह रोग सूत्रकृमि से होता है। इस रोग से जड़ों की गांठ वाले सूत्रकृमि से ग्रस्त पौधे पीले पड़ जाते है। पौधों की जड़ों में गाठे बन जाती है या वह फूल जाती है। पौधों की बढवार रूक जाती है।

एकीकृत प्रबंधन

- मई और जून में खेत की दो से तीन गहरी जुताई यां करने से सूत्रकृमियों की संख्या बहुत कम हो जाती है। ● ट्रैप क्रॉप जैसे गेंदे के पौधे आस पास लगाने से सूत्रकृमियों की संख्या कम हो जाती है।

छोटीपत्ती व मौजेक रोग

यह बैंगन में होने वाला प्रमुख रोग है। इस रोग में पौधा पूरी तरह से बौना रह जाता है और पत्ते छोटे और काफी पीले भी हो जाते है। इसमें फल बहुत ही कम मात्रा में लगते है।

एकीकृत प्रबंधन

- इस रोग को फैलने से रोकने के लिए प्रांरभिक अवस्था में रोगी पौधे निकाल कर नष्ट कर दें।
- पौधे के रोपण से पहले पौधों की जड़े को आधे घंटे तक ट्रेट्रासिकिलन के घोल में 500 मि. ग्राम प्रति लीटर पानी में डुबोएं। ● नर्सरी और खेत में तेला एवं सफेद मक्खी के बचाव के लिए 400 मिली. मैलाथियान ईसी को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतराल पर जरूर छिड़के।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

गाजरघास का फसलों, मानव और पशुओं पर दुष्प्रभाव व रोकथाम

बीरम सिंह गुर्जर
श्री कर्ण नरेन्द्र एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी, जोबनेर (राजस्थान)

गाजर घास/चटक चांदनी एक घास है जो बडे आक्रमक तरीके से फैलती हैं भारत में इस खरपतवार का प्रवेश तीन दशक पूर्व अमेरिका या कनाडा से आयात किये गये गेहूँ के साथ हुआ। पष्चिम उत्तर प्रदेश में इस घास को चिडियाबाडी के नाम से भी जाना जाता है। इसके बीज अत्यधिक सुक्ष्म होते है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहूच जाते है।

प्रत्येक पौधा 1000 से 50000 अत्यन्त सुक्ष्म बीज पैदा करता है जो शीघ्र ही जमीन पर गिरने के बाद प्रकाश और अंधकार में नमी पाकर अकुंरित हो जाते है। इसका प्रकोप खाध्यान फसलों जैसे धान, ज्वार, मक्का, सोयबीन, मटर फसलों में देखा गया है। पार्थेनियम घास (गाजर घास) पर लगातार किये जा रहे शोधकार्य किये जा रहे है जिनसे पता चला है कि यह खरपतवार मानव तथा पशुओं के अलावा फसलों को भी नुकसान पहुचाता है। इसका सर्वाधिक प्रभाव दलहनी फसलों पर पड़ रहा है। यह खरपतवार सभी मौसम और सभी फसलों के साथ उपजने में सक्षम है। जिससे दलहनी फसलों की उत्पदान की मात्रा पर असर डालना शुरू कर दिया है।

दुष्प्रभावः- गाजर घास मनुष्य, पशुओ और फसलों के लिए गंभिर समस्या है इससे खाद्धान फसलों की पैदावार में 40 प्रतिषत तक की कमी पायी गयी है। गाजर घास में विषाक्त पदार्थ होता है जिसके कारण फसलों के अकुरंण व वृद्वि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दलहनी फसलों यह खरपतवार जड़ग्रथियों के विकास को प्रभावित करता है। तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की क्रियाषिलता को कम करता है। इनके परागकण बैंगन, टमाटर, मिर्च आदि सब्जियों के पौधे पर आकर उनके परागण अकुरंण एवं फल विन्यास को प्रभावित करता हैं तथा पत्तियों में क्लोरोफिल की कमी एवं पुष्पशिर्षो में असामान्यता पैदा कर देता हैं ।

इस खरपतवार की लगातार सम्पर्क में आने से मनुष्यों में डरमेटाइसिस एक्जिमा, एलर्जि, बुखार, दमा आदि बीमारीयां हो जाती है। पशुओं के लिए भी यह खतरनाक है इससे उनमें कई रोग हो जाते है। एवं दुधारू पशुओं में कडवाहट आने लगती है अधिक मात्रा इसे खा लेने से उनकी मृत्यु भी हो सकती है। गाय या भैस अगर इसे खाती है तो उनके थनों में सुजन आ जाती है जिससे उन्हे अल्सर की बीमारी हो जाती है जो की मृत्यु का कारण बन सकती है। यह घास लीवर व कीडनी पर भी असर करती है।

रोकथाम

इसकी रोकथाम के लिए वैधानिक, यांत्रिक, रसायनिक एवं जैविक विधियों का उपयोग किया जाता है।

- खरपतवारों के दूसरे देशों से प्रवेश एवं फैलाव को रोकने के लिए कानुन बनाये जाये व उनका सख्ती से पालन हो।
- गाजर घास के नियंत्रण के लिए इसमें फुल आने से पहले ही उखाड कर जला देना चाहिए।
- अनउपजाऊ भूमी पर उगी गाजर घास पर 20 प्रतिषत साधारण नमक का घोल बनाकर छिडकाव करें ।
- शाकनाषी के प्रयोग से भी गाजर घास को नियंत्रित किया जा सकता हैं शाकनाषी जैसे 2-4 डी, गलाइकोसेट, मेट्रीब्यूजिन, एट्राजिन, सिमाजिन आदि के उपयोग से भी इसे नियंत्रित किया जा सकता हैं
- मैक्सिकन बीटल (जाइगोग्रामा बाइक्लोराटा) जो इस खरपतवार को नियंत्रित करने मे सहायक है उपयोग में लेना चाहिए।
- अकृषित क्षेत्रों में प्रतिस्पर्दा फसलों (केसीया सिरेसिया, केसीया टोटा) को उगाकर इसे नष्ट कर सकते है।
- मक्का, ज्वार, बाजरा की फसलों में एट्राजिन 1 - 1.5 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर बुवाई के तुरन्त बाद (अकुंरण से पूर्व) किया जाना चाहिए।
- गलाइकोसेट और मेट्रीब्यूजिन 2 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर पुष्पन से पूर्व उपयोग में लें।

****

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

कृषि में जैव उर्वरकों की महत्ता एवं उपयोग

सोनाली मीणा (पीएच.डी.)
पादप रोग विज्ञान, कृषि महाविद्यालय बीकानेर (राजस्थान)

हंसा कुमारी जाट (पीएच.डी.)
कीट विज्ञान, राजस्थान एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट दुर्गापुरा, जयपुर (राजस्थान)

त्रिभुवन सिंह राजपुरोहित
पीएच.डी. प्रसार शिक्षा, सी.एस.एस.आर.आई. करनाल

राइजोबियम

यह एक नमी धारक पदार्थ एवं जीवाणु का मिश्रण है, जिसके प्रत्येक एक ग्राम भाग में 10 करोड़ से अधिक राइजोबियम जीवाणु होते हैं। यह जैव उर्वरक केवल दलहनी फसलों में ही प्रयोग किया जा सकता है तथा यह फसल विशिष्ट होती है, अर्थात अलग-अलग फसल के लिए अलग-अलग प्रकार राइजोबियम जैव उर्वरक का प्रयोग होता है। राइजोबियम जैव उर्वरक से बीज उपचार कर लें पर ये जीवाणु खाद से बीज पर चिपक जाते हैं। बीज अंकुरण पर ये जीवाणु जड़ मूल रोम द्वारा पौधों की जड़ों में प्रवेश कर जड़ों पर गन्थियों का निर्माण करते हैं। ये ग्रन्थियां नत्रजन स्थिरीकरण इकाईयां तथा पौधों की बढ़वार इनकी संख्या पर निर्भर करती है। अधिक ग्रन्थियों के होने पर पैदावार भी अधिक होती है।

किन फसलों में प्रयोग किया जा सकता है ?

अलग-अलग फसलों के लिए राइजोबियम जैव उर्वरक के अलग-अलग पैकेट उपलब्ध होते है तथा निम्न फसलों में प्रयोग किये जाते है। मूंग, उर्द, अरहर, चना, मटर, मसूर,तिलहनी, मूँगफली, सोयाबीन,अन्य रिजका, बरसीम, एवं सभी प्रकार की वीन्स।

कैसे प्रयोग करें ?

200 ग्राम राइजोबियम कल्चर से 10 कि.ग्रा. बीज उपचारित कर सकते है। एक पैकेट को खोले तथा 200 ग्राम राइजोबियम कल्चर 50 ग्राम गुड़ एवं 500 मि.ली. पानी में डालकर अच्छी प्रकार घोल बना लें। बीजों को किसी साफ सतह पर इकट्ठा कर जैव उर्वरक के घोल को बीजों पर धीरे-धीरे डालें और हाथ से तब तक उलटते पलटते जायें जब तक कि सभी बीजों पर जैव उर्वरक की समान परत न बन जाये। अब उपचारित बीजों को किसी छायादार स्थान पर फैलाकर 10-15 मिनट तक सुखा लें और तुरन्त बो दें।

राइजोबियम कल्चर के प्रयोग से लाभ

- इसके प्रयोग से 10 से 30 किलो रासायनिक नत्रजन की बचत होती है। ■ इसके प्रयोग से फसल की उपज 15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है। ■ राइजोबियम जीवाणु कुछ हारमोन एवं विटामिन भी बनाते हैं, जिससे पौधों की बढ़वार अच्छी होती है और जड़ों का विकास भी अच्छा होता है। ■ इन फसलों के बाद बोई जाने वाली

फसलों में भी भूमि की उर्वराशक्ति अधिक होने से पैदावार अधिक मिलती है।

एजोटोबैक्टर/एजोस्पाइरिलम/जैव उर्वरक: यह जैव उर्वरक स्वतंत्रजीवी नत्रजन स्थिरीकरण, एजोटोबेक्टर या एजोस्पाइरिलम जीवाणु का एक नम चूर्णरूप उत्पाद है। इसके एक ग्राम में लगभग 10 करोड़ जीवाणु होते है। यह जैव उर्वरक किसी भी फसल (दलहनी जाति की फसलों को छोड़कर) में प्रयोग किया जा सकता है।

एजोटोबेक्टर/एजोस्पाइरिलम जैव उर्वरक से लाभ

- फसलों की 10 से 20 प्रतिशत तक पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है तथा फलों एवं दानों का प्राकृतिक स्वाद बना रहता है। ■ इसके प्रयोग करने से 20 से 30 किग्रा. नत्रजन की बचत भी की जा सकती है। ■ इनके प्रयोग करने से अंकुरण शीघ्र और स्वस्थ होते हैं तथा जड़ों का विकास अधिक एवं शीघ्र होता है। ■ फसलें भूमि से फास्फोरस का अधिक प्रयोग कर पाती हैं जिससे किल्ले अधिक बनते है। ■ इन जैव उर्वरकों के जीवाणु बीमारी फैलाने वाले रोगाणुओं का दमन करते हैं, जिससे फसलों का बीमारियों से बचाव होता है तथा पौधों में रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती है। ■ ऐसे जैव उर्वरकों का प्रयोग करने से जड़ों एवं तनों का अधिक विकास होता है, जिससे पौधों में तेज हवा, अधिक वर्षा एवं सूखे की स्थिति को सहने की क्षमता बढ़ जाती है।

सावधानियां

- राइजोबियम जीवाणु फसल विशिष्ट होता है। अतः पैकेट पर लिखी फसल में ही प्रयोग करें। ■ जैव उर्वरक को धूप व गर्मी से दूर किसी सूखी एवं ठंडी जगह से रखें। ■ जैव उर्वरक या जैव उर्वरक उपचारित बीजों को किसी भी रसायन या रासायनिक खाद के साथ न मिलायें।
- यदि बीजों पर फफूंदी नाशी का प्रयोग करना हो तो बेक्स्टीन का प्रयोग करें, यदि ताँबा एवं पारायुक्त रसायन का प्रयोग करना हो तो बीजों को पहले फफूंदी नाशी से उपचारित करें तथा फिर जैव उर्वरक की दुगुनी मात्रा से उपचारित करें। ■ जैव उर्वरक का प्रयोग पैकेट पर लिखी अन्तिम तिथि से पहले ही कर लेना चाहिए।

एजोटोबेक्टर/ एजोस्पाइरिलम जैव उर्वरक की मात्रा एवं प्रयोग

एजोटोबेक्टर/ एजोस्पाइरिलम जैव उर्वरक की मात्रा एवं प्रयोग		
प्रयोगविधि	फसल	जैव उर्वरक मात्रा/एकड़
बीजोपचार: आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की मात्रा को लगभग 1.5 लीटर पानी प्रति एकड़ बीज के ढेर पर धीरे-धीरे डालकर हाथों से तक मिलायें जब तक कि जैव उर्वरक की बीजों पर समान रूप से परत न चढ़ जाये। उपचारित बीज को छाया में रखें अथवा तुरन्त बीजाई कर दें।	गेहूं, ज्वार मक्का, कपास सूरजमुखी, सरसों	2 किग्रा० 500 ग्राम
पौध जड़ उपचार: आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की मात्रा की 4 लीटर पानी प्रति 1 किलोग्राम के हिसाब से किसी चौड़े मुंह वाले बर्तन में घोल बनायें, इस घोल को पौधे की जड़ों को 2 से 3 मिनट तक डुबोकर पौध उपचार करे तथा फिर, उपचारित पौधे की तुरन्त खेत में रोपाई कर दें।	धान मिर्च, टमाटर, गोभी, बैगन, प्याज, आदि	1.5 किग्रा०
मृदा उपचार: आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक को 35 से 50 किग्रा० कम्पोस्ट खाद या भुरभुरी मिट्टी में मिश्रण बनाकर अन्तिम जुताई के समय अथवा फसल की पहली सिंचाई से पूर्व समान रूप से एक एकड़ खेत में छिड़क कर मिट्टी में मिला दें।	लम्बी अवधि वाली फसलों के लिए (अर्थात 6 माह से अधिक समय से पकने वाली)	3.5 किग्रा

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

कम्पोस्ट खाद का कृषि में महत्व तथा अपशिष्ट पदार्थो के सदपयोग द्वारा स्वच्छ भारत के निर्माण में योगदान

Mani Ram Jakhar

M.Sc(ag.) Agronomy +NET Assistant Professor,
Department of Agronomy at Apex Agriculture
College Chaiya Hanuman Garh, (Rajsthan)

कम्पोस्ट: कम्पोस्ट जैविक पदार्थो के अपघटन व पुनः चक्रण से प्राप्त खाद है।

या

कम्पोस्ट: यह कम्पोस्टिंग क्रिया द्वारा निर्मित एक खाद है जिसमे जैव रासायनिक क्रिया द्वारा अवायवीय जीवाणु कार्बनिक पदार्थो को विघटित कर बारीक ह्यूमस में बदल देते है । वह बारीक चूर्णनुमा पौष्टिक जैव पदार्थ हि कम्पोस्ट कहलाता है । यह पूर्ण सड़ा गला कार्बनिक पदार्थ होता है । जो पौधों में पोषक तत्वों कि उपलब्धता बढ़ाने के साथ - साथ मृदा में वायु संचार व जलधारण क्षमता को भी बढ़ाता है ।

कम्पोस्ट बनाने के लिए अवशिष्ट पदार्थो कि उपलब्धता: खेतों एवं गांवों से जो अपशिष्ठ पदार्थ प्राप्त होते है उनमें मुख्यतः पेड़ पौधो कि पतियाँ, फसलो का अवशेष, पशुओं का बचा हुआ चारा खरपतवार आदि का सदुपयोग तरीके से निपटान करके कम्पोटिंग किया द्वारा कम्पोस्ट खाद बना सकते है । तथा ग्रामीण क्षेत्र में ये अवशिष्ट मुख्य रूप से पाए जाते है। इसके साथ साथ शहरों व कस्बों में कूड़ा करकट कार्बनिक अवशिष्ट पदार्थ जैसे- शहर का कूड़ा-करकट कार्बनिक कचरा, शहर का गन्दा मल आदि का सुव्यवस्थित निपटान करके किसान अच्छी कम्पोस्ट खाद तैयार कर सकते है।

स्वच्छ मिशन का कृषि अपशिष्ट प्रबंधन पर प्रभाव तथा उपयोगिता: स्वच्छ भारत मिशन की शुरआत 2 oct 2014 को सम्पूर्ण देश में की गई जो की देश का सबसे बड़ा स्वच्छता अभियान बना इसका प्रभाव शहरी क्षेत्रों के साथ साथ ग्रामीण क्षेत्रो में भी देखने को मिला , देश का प्रत्येक युवा वर्ग तथा छात्रों ने इस अभियान को सफल बनाया तथा इसकी महत्त्व ता को भी अपने जीवन में उतरा। इसका प्रभाव कृषि क्षेत्र में भी सकारात्मक रहा क्योंकि किसानों एवं कृषि छात्रों एवं कृषि वैज्ञानिको ने कम्पोस्ट खाद की महत्व तथा उपयोगिता को बनाकर सिद्ध किया जिसमें ग्रामीण क्षेत्रो से प्राप्त गोबर, कच्ची लकड़ी, पेड़ पौधों की पत्तियां आदि अपशिष्ट पदार्थो के सरंक्षण होने से स्वच्छता में भी बढ़ोतरी हुई है इस तरह स्वच्छता मिशन शहरी कच्चे अपशिष्ट पदार्थो के निपटान में सहायक है। क्योंकि उस अपशिष्ट पदार्थ के साथ साथ गोबर व मूत्र आदि बिछावन बनाकर एक अच्छी कम्पोस्ट खाद तैयार की जा सकती है। इसी प्रकार हम सार्वजानिक क्षेत्रो से पत्तियां फूल ,लकड़ी का बुरादा, बचा हुआ भोजन, आदि प्राप्त करके सार्वजनिक स्थलों को सुन्दर बना सकते है। तथा साथ ही साथ कम्पोस्ट बनाने के लिए सामाग्री मिल जाती है तथा जैविक खेती को भी बढ़ावा मिलता है ।

कम्पोस्ट बनाने के लिए, कम्पोस्ट टैंक भरने की

विधि: टैंक भरने से पूर्व गोबर का गोल बनाकर टैंक की निचली सतह तथा दीवारों की अंदर सतह पर छिड़काव किया जाता है। तथा उसके बाद आगामी 2 दिन में टैंक को पूर्ण भरने की प्रक्रिया की जाती है।

प्रक्रिया

- टैंक की निचली सतह पर 6 इंच मोटि (फार्म पर उपलब्ध वानस्पतिक पदार्थ) वानस्पतिक अवशेषों की परत लगाई जाती है। जिसमे कृषि कृषि फसलो के अवशेष, पत्तियां, अपशिष्ट बागवानी का पदार्थ तथा अन्य पशुओं का पराली युक्त बिछावन हो सकता है।
- प्रथम 6 इंच मोटी वानस्पतिक अवशेषों की परत पर गोबर की परत या गोबर तथा पानी मिश्रित करके लेहि बनाई जाती है, उस लेहि की परत को दूसरी परत के रूप में ऊपर चढ़ाते हैं। (5-10 किलोग्राम गोबर तथा 120 से 150 लीटर पानी मिश्रित करके लेहि बनाते है।)
- दूसरी परत के ऊपर एक परत साफ सुथरी सुखी छन्नी मिटटी की परत बिछाई जाती है। तथा इसके ऊपर पानी का छिड़काव करके गिला कर देते है। इस तरह क्रमशः जब तक परतो की तह लगाते है, जब तक की टैंक पूर्ण रूप से भर नही जाता, टैंक पूर्ण भरने के बाद उसके ऊपरी भाग को झोपड़ीनुमा आकार देकर मिट्टि से ढक देते है। मिटटी से ढकने के बाद टैंक का अच्छी तरह से लेपन किया जाता है। ताकि अंदर की गैसे दरार बनाकर बाहर न निकले। इस तरह कम्पोस्ट बनाने में 3-4 माह लगता है।

लाभ

कम्पोस्ट से प्राप्त सूक्ष्म एवं वृहद पोषक तत्व एवं कार्बनिक पदार्थ का मृदा की उर्वरक क्षमता बढ़ाने में बहुत बड़ा योगदान है। कम्पोस्ट से मृदा में कार्बनिक पदार्थ का भंडार होती है। इसके विघटन से मृदा की सरंधरता में सुधार होता है। तथा मृदा की जल अवशोषण क्षमता बढ़ जाती है। तथा मृदा की सतह मुलायम होने के कारण सूर्य की किरणो का रन्ध्रों में प्रवेश करना जिससे कीटो व सूक्ष्म जीवो का नियंत्रण भी हो जाता है। फार्म कम्पोस्ट पर तैयार खाद में 8 से 1.2% नाइट्रोजन, 4 से 6% फॉस्फोरस इसके साथ - एवं 2-3% तक पोटेशियम प्राप्त होते है। साधारणतय कम्पोस्ट में नाइट्रोजन व फोस्फोरस की मात्रा बढ़ानेके लिए क्रमशः एजोटोबैक्टर तथा सुपेरफॉस्फेट डालते है। साथ हि जिप्सम , चुना , डोलोमाइट इत्यादि डालने से खाद की गुणवता बढ़ने के साथ साथ खाद मे पोषक तत्वों का नुकसान भी कम हो जाता है ।

कम्पोस्ट खाद की कृषि महाविद्यालय में उपलब्धता तथा स्वचछता में कृषि महाविद्यालय का योगदान

एपेक्स कृषि महाविद्यालय चईया के बी एस कृषि (ऑनर्स) तृतीय वर्ष का छात्र संजय साई ने शस्य विज्ञान विशेषज्ञ मनीराम जी जाखड़ न व अपेक्स संस्थान के विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में, कृषि में कम्पोस्ट खाद की आवश्यकता को देखते हुए तथा साथ ही साथ कॉलेज परिसर एवं आस-पास के 200 मीटर ग्रामीण क्षेत्र से कम्पोस्ट बनाने की सामग्री गोबर,पशुओं का बिछावन(पराली,भूसा), रेतीली मिटटी तथा अन्य गलन युक्त सामग्री ,नीम के अवशेष (पत्तियां, फूल, हरी घास इत्यादि) को इकट्ठा करके तकनीकी रूप से कम्पोस्ट खाद तैयार की जिसमे महाविद्यालय को 15-18 टन के करीबन जैविक खाद प्राप्त हुआ इसे महाविद्यालय परिसर मे स्थित एग्रोनॉमी फॉर्म, नर्सरी एवं सजावटी पौधों में डालकर इसकी महत्व को परखा, इस तकनीक ने अपशिष्ठ के निपटान व महाविद्यालय की जरूरतों को पूरा किया, आगामी समय में एपेक्स कृषि महाविद्यालय चईया ने इस तकनीकी को महाविद्यालय के ऊपरी स्तर बढ़ाने एवं आस-पास के किसानों को वैज्ञानिक तरीके से कम्पोस्ट बनाने की विधि बताकर अपने फील्ड पर शुद्ध जैविक खेती शुरू करने की एक मुहिम पहल की है। जिसमे कम लागत में अधिक मुनाफा प्राप्त हो सके और बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण के नियंत्रण एवं स्वच्छता में अपना योगदान दे सके।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

बीज उत्पादन हेतु ध्यान रखने योग्य बातें

डॉ. मुकुल (बीज अधिकारी)
रा.रा.बी.निगम, पंत कृषि भवन, जयपुर (राजस्थान)

खेत का चुनाव

गुणवत्ता पूर्ण बीज उत्पादन के लिये चयनित खेत में पिछले वर्ष उसी फसल की दूसरी प्रजाति की बीजोत्पादन न किया गया हो क्योंकि इससे मिश्रण की संभावना बनी रहती है। चयनित खेत अपने आप उगने वाले खरपतवार के पौधों, अन्य फसलों के पौधों, मृदा जन्य रोगों एवं कीटों से मुक्त होनी चाहिए।

बीज प्राप्त के स्त्रोत

बीज को बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा प्रमाणित स्त्रोत से ही लेना चाहिए। जैसेकि राष्ट्रीय बीज निगम, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, कृषि विश्वविद्यालयों बीज निगम, बीज प्रमाणीकरण संस्था प्रमाणित स्त्रोत है।

पृथक्करण दूरी

बीज फसल को उसी फसल के अन्न किस्मों से वांछित दूसरी पर ही लगायें ताकि फूल खिलने के समय होने वाले परागण से बीज की गुणवत्ता प्रभावित न हो तथा कटाई के समय एकफसल के बीज दूसरी फसल के बीज में नहीं मिल पायें और रोग भीन लग पाये। इस तरह से बीज की अनुवांशिक एवं भौतिक शुद्धता बनी रहती है। पृथक्करण की दूरी परागित फसलों में स्वपरागित फसलों की उपेक्षा ज्यादा रखी जाती है।

अवांछनीय पौधों का निष्कासन

बोयी गयी फसल की प्रजाति के अतिरिक्त खरपतवारों, अन्य किसम के पौधे तथा रोग व कीट से प्रभावित पौधे को फसल से उचित अवस्था पर निकाल देना चाहिए। यह कार्य फसल की विभिन्न अवस्थाओं पर करना चाहिए।

फसल सुरक्षा

गुणवत्ता पूर्ण स्वस्थ बीज के उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन के दौरान रोगों, हानिकारक कीटों एवं नाशकजीवों पर प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जाये। इसके लिए उपयुक्त समय पर खरपतवारनाशी, रोगनाशी व कीटनाशियों का प्रयोग करते रहना चाहिए।

प्रक्षेप निरीक्षण

प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु बीजका प्रमाणन संस्था द्वारा फसल की विभिन्न अवस्थाओं पर खेत का निरीक्षण अवश्य करा लें।

बीज फसल की कटाई एवं मड़ाई

बीज उत्पादन की कटाई का महत्व सर्वोपरि है इसमें असावधानी बरतने पर बीज की गुणवत्ता होता है। कटाई करने से पूर्व एक स्वच्छ स्थान तैयारकर लें। जिसमें किसी भी अन्य प्रकार की फसल/प्रजाति के बीज न मिलने पाये। फसल कटाई का सर्वोतम समय वह है जब बीज पूरी तरह

से पक जायें। यदि मशीन द्वारा मड़ाई करना है तब मशीन की अच्छी तरह से सफाई कर लेना चाहिए ताकि पूर्व मड़ाई की गई फसलें, प्रजाति की बीज न पड़े हो। सफाई करने से मिलावट की संभावना नहीं रहती है।

बीज सुखाना

बीजों को अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए, भंडारण के समय बीज वांछित नमी मानक के अनुरूप होने चाहिए अन्यथा नमी की मात्रा अधिक होने पर कवकों का आक्रमण, बीजों का सिकुड़ना, बीज सतह पर झुर्रिया पड़ जाती है।

बीज विधायन

बीज की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए बीज का विधायन एक महत्त्वपूर्ण चरण है। यह कार्य संसाधन संयंत्रों द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान बीज की नमी को एक निश्चित सीमा तक लाया जाता है तथा अवांछनीय बीज जैसे खरपतवार तथा अन्य फसलों, किस्मों के बीज, कटे-फटे बीज, सिकुड़े हुए बीज, भूसा तथा मिट्टी पत्थर के टुकड़े आदि को मशीन के द्वारा अलग किया जाता है।

बीज परीक्षण

नमी निर्धारण

बीज में वांछित नमी का होना, बीज विद्यायन एवं सुरक्षित भंडारण हेतु आवश्यक है।

भौतिक शुद्धता

अन्य जाति के बीजों, खरपतवार के बीजों एवं अक्रिय पदार्थों का वांछित मानक से कम होना चाहिए, ताकि भौतिक शुद्धता मानक अनुरूप हों।

अंकुरण

बीज में अंकुरित बीजों का प्रतिशत मानक के अनुरूप होना चाहिए।

बीज स्वास्थ्य

बीज, बीज जनित बीमारियों से मुक्त होना चाहिए।

बीज प्रमाणीकरण

गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन के लिए बीज का प्रमाणीकरण अतिआवश्यक हो जाता है। यह कार्य बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा फसल वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर बीजों की फसल का निरीक्षण कर निर्धारित मानकों के अनुरूप पाये जाने पर फसल क्षेत्र को प्रमाणित किया जाता है। इस संस्था द्वारा बीज फसल की विभिन्न शस्य क्रियाओं जैसे कटाई, मडाई व सफाईके दौरान भी जांचा जाता है। साधारणतः मानक दो प्रकार के है, क्षेत्र मानक एवं बीज मानक/विभिन्न फसलों के लिये प्रमाणीकरण मानक भिन्न-भिन्न होते हैं।

बीज भंडारण

हमारे देश में कुल उत्पादन का लगभग दसवां भाग गलत भंडारण, चूहों, घुन एवं नमी आदि कारणों से बर्बाद हो जाता है तथा बीज की गुणवता,जमाव क्षमता नष्टहोने से मूल्य में कमी हो जाती है। बीज की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए विशेष संरचना वाले ऐसे भंडारण गृहों में बीज को रखना चाहिए जिसमें नमी एवं तापक्रम नियंत्रित किया जा सके। जिससे कवकों एवं कीटों का आक्रमण न हो।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

सर्दियों में पशुओं का वैज्ञानिक रख रखाव

अनिता कुमारी मीणा
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)

दीपक कुमार
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि., कानपुर

अंजू शर्मा
सरदार वल्लभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि.,मेरठ

जिस प्रकार मनुष्य सर्दी से बचाव के लिए गर्म कपड़े पहनता है । इसी प्रकार के खाद्य पदार्थ खाता है जिनकी तासीर (प्रकृति) गर्म होती है इसी प्रकार पशुओं को भी सर्दी से बचाने के लिए उनकी खिलाई पिलायी, रहन-सहन आदि पर ध्यान देना चाहिए। ताकि पशुओं को सर्दी न लगे। अतः पशुओं से अधिक उत्पादन लेने के लिए, वृद्धि दर सुचारू बनाये रखने तथा स्वस्थ रखने के लिए जरूरी है कि पशुओं को सर्दी से बचाया जायें। इसके लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

पशुशाला की बनावट

पशुओं को लम्बाई पूर्व-पश्चिम दिशा में होनी चाहिए ताकि दिन में सूर्य की रोशनी ज्यादा पड़े, पशुशाला में दरवाजे दक्षिण मुखी हो तथा उत्तरी-पश्चिमी दीवार बन्द हो पशुशाला गर्म रहती है।

- पशुशाला की फर्श साफ सूथरी होना चाहिए।
- प्रतिदिन पशुशाला की साफ सफाई होनी चाहिए।
- यदि फर्श पक्का हो तो समय -समय पर बिछावन डालकर बदलते रहना चाहिए। बिछावन में बचा हुआ या खराब चारा, बाजरे की कडबी, धान की पराली आदि काम में लाना चाहिए।
- फर्श कच्चा होने पर समय समय पर उपर की 6 से 8 इंच मिट्टी हटाकर खेत में डाल देना चाहिए तथा उसकी जगह साफ एवं सूखी मिट्टी डाल देना चाहिए। बिछावन के लिए बालु मिट्टी सबसे उपयुक्त पाई जाती है।
- पशुशाला के उत्तरी दिशा के पेड छोडकर बाकी पेडों की छटाई कर देना चाहिए ताकि दिन में सूर्य की रोशनी पशुशाला में अधिक से अधिक पडें ।

ठण्डी हवा से बचाव

ठण्डी हवा से बचाव के लिए पशुशाला की खिडकी, रोशनदान, दरवाजे को अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिए। सर्दी के मौसम में अधिकतर उत्तरी हवा चलती है। इस कारण पशुशाला की उत्तरी दिवार पूरी तरह पैक होना चाहिए। पशुओं को दिन में पशुशाला से बाहर धुप में निकाल देना चाहिए।

पशुओं को झुल ओढ़ाना

अधिक सर्दी के दिनों में छोटे बछडे-बछडियों, बुढ़े तथा बीमार पशुओं के शरीर पर जुट की बोरी का झुल

बनाकर डाल देना चाहिए। झुल पशु के गर्दन से पूंछ तक लम्बा तथा दोनों साईड में लटका हुआ होना चाहिए । झोल दिन में उतारकर सूखा देना चाहिए ताकि उसमें पेशाब की सीलन सूख जाये।

पशुओं की खिलाई पिलाई: पशुओं की सन्तुलित खिलाई पिलाई करनी चाहिए । सूखे चारे के साथ हरा चारा व दाना बांट पशु के उत्पादन के अनुसार देना चाहिए खुराक में अधिक उर्जा पैदा करने वाला पदार्थ जैसे गुड़ आदि खिलाना चाहिए। जिससे पशु का शरीर गर्म रहें।

स्वच्छ एवं ताजा पानी पिलाना चाहिए: पशुओं को धुप के समय ताजा पानी से नहलाना या खरहरा करना चाहिए ताकि ष्शरीर साफ-सूथरा बना रहै। सर्दी लगने पर पशुओं को प्राथमिक उपचार करें।

- अजवायन - 50 ग्राम
- साजी - 2 ग्राम
- धनिया - 25 ग्राम
- मेथी - 25 ग्राम
- पानी - 1/2 लीटर

अजवायन, मेथी, धनिया कूट कर 1/2 लीटर पानी में उबाले जब कुछ ठण्डा हो जाये तो साजी मिला दे हल्का गर्म रहने पर पशु को पिला दो। सामान्य रूप से गाय और भैस के शरीर का तापमान 101.5 से 102 डिग्री फारेनाइट के बीच में रहता है जबकि पशु आवास का तापमान कभी 2 षुन्य डिग्री सेल्सियस से भी नीचे चला जाता है। ऐसी ठंड से पशुओं को बचाने के लिए आवास में बांधकर पशुओं को चारा खिलाना चाहिए।

- पशुशाला को ढलान युक्त बनाये ताकि मूत्र बहकर निकल जाये ताकि बिछावन सूखा बना रहे
- सर्दियों के समय में पशुओं को बाजरा कम मात्रा में खिलायें क्योंकि सर्दियों मे बाजरे का पाचन कम होता है। इसलिए किसी भी सन्तुलित राशन में बाजरे की मात्रा 20 प्रतिशत से ज्यादा नही होना चाहिए।
- सर्दियों के समय में बिनौला की मात्रा सन्तुलित आहार में ज्यादा होना चाहिए।
- सर्दियों में पशुओं के पास सेन्धा नमक डालना चाहिए ताकि पशु आवश्यकतानुसार चाटता रहे।

सर्दी लगने पर पशुओं में लक्षण

- शरीर का तापमान कम होना
- नाक से पानी कभी स्लेष्मा का आना
- स्वास व दिल की धडकन तेज होना
- दुध उत्पादन में कमी
- भूख कम या ना लगना
- शरीर को हमेशा सिकोड कर रखना
- अपच या आफरा होना
- पानी कम पीना

प्राथमिक उपचार

- अलाव जलाकर उसके शरीर को गर्मी प्रदान करें।
- पशु के नाक में अजवाइन का धुआ करने से सांस लेने में आसानी होती है।
- पशु को अपच या आफरा होने पर

तारपीन का तेल	-	50 एमएल
हींग	-	5-10 ग्राम
सरसों का तेल	-	500 एमएल

इन सब को मिलाकर पिलाये

उचित आहार व्यवस्था

सर्दी के मौसम में सभी पशुपालक अपने पशुओं को सन्तुलित आहार दे जिसमें उर्जा, प्रोटीन कार्बहाइटेऊट, वसा, खनिज लवण एवं विटामिन्स आदि पोषक तत्व समुचित मात्रा में मौजूद रहें इस मौसम में गर्म तासीर के खाद्य पदार्थ जैसे गुड़, तेल, अजवाइन एवं सोंठ को पशुओं के आहार में शामिल करें।

स्वास्थ सुरक्षा: सर्दी के मौसम में पशुओं के सामान्य सर्दी दुग्ध ज्वर, गलघोटू, खुरपका मुहपका, पीपीआर आंत विषाक्त आदि बिमारियों से पशुओं को बचाने के लिए पशुपालन विभाग द्वारा चलाये जा रहे विशेष टीकारण अभियान के अन्तर्गत समय समय पर रोग निरोधक टीके लगवाना चाहिए।

- दाल - 15 प्रतिशत
- चुरी - 20 प्रतिशत
- दलिया - 18 प्रतिशत
- चापड - 44 प्रतिशत
- खनिज लवण - 3 प्रतिशत

आफरा के लिए

- मैगसेल्फ - 200 ग्राम
- नमक - 200 ग्राम
- सोठ - 50 ग्राम
- हींग - 10 ग्राम
- ट्रेसकिल - 50 ग्राम
- पानी - 1 लीटर

पानी में मिलाकर थोडा गर्म कर पिलाएं

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

एकीकृत कृषि प्रणाली-छोटे किसानों के लिए आजिविका सुरक्षा का एक विकल्प

अंजू बिजारणियॉ, कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कृषि विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)

जे.पी. तेतरवाल कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कृषि विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है जिसमें 85 प्रतिशत किसान सीमान्त (1.0 है. से कम जोत) तथा लघु (1.0-2.0 है. जोत) के अंतर्गत आते है एवं मुख्यतः फसल आधारित एकल फसल प्रणाली पर निर्भर है। लगातार एकल फसल प्रणाली अपनाने के कारण मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में गिरावट, असंतुलित खाद्य आहार, मृदा स्वास्थ्य का ह्रास और कीट-रोगों व खरपतवारों की बढ़ती समस्या के साथ-साथ फसल उत्पादन लागत में बढ़ोतरी हुई है।

अतः उक्त कृषि समस्याओं के समाधान व छोटे किसानों की आजीविका सुरक्षा हेतु समेकित कृषि प्रणाली एक विकल्प है ।

क्या है समेकित कृषि प्रणाली ?

समेकित कृषि प्रणाली का मुख्य अभिप्राय है किसानों के कृषि क्षेत्र पर उपलब्ध संसाधन, आर्थिक स्थिति, परिवार की मूलभूत खाद्यान्न एवं पशु चारे आदि की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए स्थानीय किसानों द्वारा अपनाई जा रही प्रचलित कृषि पद्धति में सुधार लाने हेतु उपलब्ध उन्नत तकनीकी ज्ञान एवं कम लागत से अधिक लाभ देने वाले व्यवसायों का समन्वय कर प्रति इकाई कृषि भूमि व प्रति इकाई समय में अधिक से अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त करना है।

समेकित कृषि प्रणाली एक सम्पूर्ण जैविक कृषि प्रबंधन प्रणाली है जिसका लक्ष्य अधिक टिकाऊ खेती है। यह एक गतिशील दृष्टिकोण है जिसे दुनिया भर मे किसी भी कृषि प्रणाली पर लागू किया जा सकता है। लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मूल्य वृद्धि एंव मूल खाद्य पदार्थों की मांग में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है। संसाधनों के सीमित होने के कारण खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग की पूर्ति समन्वित कृषि प्रणाली से सम्भव हो सकती है। इस प्रणाली को पर्यावरण, मृदा स्वास्थ्य, कृषक की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखकर अपनाया जाता है। समेकित कृषि प्रणाली पारम्परिक प्रथाओं के साथ आधुनिक उपकरणों और तकनीकियों का सर्वोतम संयोजन करती है तथा इसमें कृषि व्यवसाय के सभी क्षेत्रों में विस्तार एवं निरंतर सुधार पर ध्यान देना भी शामिल है। सरल शब्दों में इसका मतलब है कि छोटी जगह या जमीन में खेती के कई तरीकों का उपयोग करके अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाना है।

समन्वित कृषि प्रणाली के निर्धारक कारक

भौतिक कारक: जलवायु, मृदा व स्थलाकृति मुख्य भौतिक कारक है जो कि समन्वित कृषि प्रणाली के मुख्य निर्धारक होते हैं। विभिन्न जलवायु की जलवायु मृदा व स्थलाकृति होती है जिसके अनुसार ही वहाँ के फसल चक्र व कृषि प्रणाली का चयन किया जाता है।

आर्थिक कारक

बाजार लागत, मजदूर उपलब्धता, पूंजी, भूमि मूल्य व उपभोक्ता मांग आदि आर्थिक कारक समन्वित कृषि प्रणाली में उद्यमों व फसलों के चयन को निर्धारित करते हैं। इन कारकों के आधार पर ही किसी क्षेत्र विशेष में फसलों व उद्यमों का चयन कर अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है।

सामाजिक कारक

सामाजिक कारक जैसे समुदाय का प्रमुख बाजार सुविधाएँ आदि समन्वित कृषि प्रणाली को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए सुअर पालन एक लाभकारी व्यवसाय है किन्तु वे विशेष समुदाय धार्मिक कारणों से इसका पालन नहीं कर सकता ।

पर्यावरणीय कारक

संसाधनों व घटकों की उपलब्धता भी समन्वित कृषि प्रणाली को निर्धारित करते हैं।

यह सभी कारक निम्न उपलब्धताओं पर निर्भर करते हैं:-

समेकित कृषि प्रणाली में उपरोक्त घटकों के अवशेषों का पुर्नचक्रण महत्वपूर्ण है। कृषि अवशेष विशेषकर बाजर, ज्वार की कड़वी, गेंहूँ व सरसों का भूसा तथा धान की पराली का उपयोग केंचुआ खाद बनाने में किया जा सकता है। गेंहूँ का भूसा व धान की पराली को खुम्भ उत्पादन में प्रयोग कर इनका पुर्नचक्रण कर सकते हैं। खेत के अन्य कृषि अवशेष भूमि संरक्षण में पलवार

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

के रूप में विशेषकर वर्षा आधारित खेती में प्रयोगकर किसान पानी की बचत कर सकते हैं। पशुओं द्वारा प्राप्त गोबर को उचित विधि अपनाकर गोबर की खाद बनाई जा सकती है। इस प्रकार इन कृषि अवशेषों को उचित तरह से खाद बनाकर किसान इन्हें खेत में मिलाकर भूमि की उर्वरा व उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है।

समेकित कृषि प्रणाली के विभिन्न घटक

- फसल उत्पादन
- सब्जी उत्पादन
- फल एवं पुष्प उत्पादन
- पशुपालन
- मुर्गीपालन
- मछली पालन
- मधुमक्खी पालन
- मशरूम उत्पादन
- केंचुआ खाद

समेकित कृषि प्रणाली के लिए विभिन्न घटकों का चयन

किसी क्षेत्र विशेष के लिए समेकित कृषि प्रणाली के घटकों का चयन उस क्षेत्र विशेष के किसानों को जोतों का आकार, परिवार में सदस्यों की संख्या, पशुओं की संख्या, उनकी खाद्य आवश्यकता, आर्थिक स्तर व बाजार मांग पर निर्भर करता है। विभिन्न क्षेत्रों के लिए समेकित कृषि प्रणाली के अलग-अलग मापदण्ड होते हैं जिसके आधार पर किसी क्षेत्र विशेष कि लिए हम समेकित कृषि प्रणाली मॉडल तैयार कर सकते हैं। इनमें से कुछ जलवायु खण्डों के लिए समेकित कृषि प्रणाली में निम्न घटकों का समायोजन कर सकते हैं। एक अच्छा समेकित कृषि मॉडल वह है जिसमें किसान अपनी जोत के अनुसार विभिन्न उद्यमों को शामिल करके संसाधनों और समय का भरपूर उपयोग कर अधिक कृषि उत्पाद प्राप्त कर सके साथ ही बाजार में विक्रय कर अधिक लाभ प्राप्त कर सके। भारत की कृषि पारिस्थितिकी को दृष्टिगत रखते हुए कई कृषि प्रणाली मॉडल उपलब्ध है।

शुष्क क्षेत्रों के लिए विभिन्न घटक

खरीफ फसल उत्पादन/सूखा प्रतिरोधी घास .बकरी पालन/भेड़ पालन/ऊंट पालन

- बहुवर्षीय वृक्ष (केर, खेजड़ी)/ बकरी पालन/मुर्गी पालन

अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों हेतु उद्यमों का समायोजन

फसल + पशुपालन (गाय/भैंस)+ मुर्गी पालन . फल उत्पादन (अनार/अमरूद/नींबू) + सीमा वृक्षारोपण (सेंजना/अरडू/करौंदा)

आर्द क्षेत्रों के लिए उद्यम समायोजन

फसल (धान) +पशुपालन (गाय/भैंस/बकरी) . मछली पालन + बतख पालन + मशरूम उत्पादन + फल उत्पादन

समेकित कृषि प्रणाली में ध्यान में रखी जाने वाली बातें

- **खाद्यान्न एवं चारा:** परिवार खाद्यान्न, पशुओं हेतु चारा एवं अन्य दैनिक मांगों के अनुसार कृषि भूमि का अलग-अलग उद्यमों के लिए तिरण निर्धारित करें। कृषक फसल चुनाव के समय घर की आवश्यकताओं के साथ-साथ स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान अवश्य रखें।
- **लाभ एवं गुणवत्ता:** दलहन, तिलहन, फल, सब्जी, मशरूम, शहद, मुर्गी, अण्डा आदि के उत्पादन से कृषक अपने परिवार के सदस्यों व पशुओं को भोजन व चारे की पोषकता एवं गुणवत्ता में सुधार करता है। अतः 1.0 से 2.0 हैक्टर भूमि वाले कृषक अपनी कुल भूमि से 0.4 हैक्टर जमीन खाद्यान्न एवं चारा फसलों को छोड़कर बाकी जमीन को फल, सब्जी आदि अधिक लाभ व पोषक उत्पाद पैदा करने में उपयोग करें। एक एकड़ या कम जमीन वाले कृषक भैंस पालन, मधुमक्खी पालन व केंचुआ खाद जैस कम जमीन चाहने वाले व्यवसायों को अपनाकर अपनी आमदनी में बढ़ोतरी कर सकते हैं।
- **फसल अवशेषों का पुनःचक्रण एवं टिकाऊ खेती को बढ़ाना:** कृषक प्रक्षेत्र पर उपलब्ध सभी उत्पाद (दाने, फल, दूध, शहद, फसल आदि), उप उत्पाद (गोबर, मूत्र, दाल, छिल्के), मेढ़ों पर उगने वाली घास एवं खरपतवार आदि सभी का उपभोग एवं उपयोग इस प्रकार किया जाता है कि बाजार आधारित सामग्री को कम से कम क्रय किया जावे। केंचुआ और नेडेप कम्पोस्ट के माध्यम में न केवल रसायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, बल्कि खेती को लाभदायक व टिकाऊ बनाने में मदद मिलती है।
- **वृक्षारोपण:** कृषक प्रक्षेत्र पर जहां भी खाली व अनुपयोगी स्थान हो वहां वृक्षोरोपण का कार्य अवश्य करें इससे अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है एवं प्रक्षेत्र की सुरक्षा भी बढ़ती है। जैसे बागवानी में बाहरी मेढ़ों पर करौंदा, सीताफल व नीम्बू के वृक्षारोपण के अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त होता है और तेज हवाओं व जंगली जानवरों से सुरक्षा होती है।
- **प्रशिक्षण व अनुदान:** शिक्षा एवं जानकारी के अभाव में लघु एवं सीमान्त कृषक राज्य एवं केन्द्र सरकारी द्वारा कृषकों को दिया जाने वाले प्रशिक्षणों एवं अनुदानों का लाभ नहीं उठा पाते। अतः कृषक अपने विकासखण्ड के कार्यालयों में जाकर योजनाओं की जानकारी अवश्य लें एवं फायदा उठावें।

समेकित कृषि प्रणाली के लाभ

- हमारे देश में बढ़ती आबादी की मांग को समान बनाने के लिए उच्च खाद्य उत्पादन।
- उचित फसल अवशेष पुनर्चक्रण और संबद्ध घटकों के माध्यम से कृषि आय में वृद्धि।
- जैविक अपशिष्ट पुनर्चक्रण के माध्यम से मिट्टी उर्वरता और उत्पादकता में वृद्धि।
- संबद्ध गतिविधियों में एकीकरण के परिणामस्वरूप प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, वसा, खनिज तत्वों और विटामिन से समृद्ध पौष्टिक भोजन की उपलब्धता।
- फसल-पशु गतिविधियों जैसे कि गाय, भैंस, मुर्गी और बकरी पालन से प्राप्त अपशिष्ट के प्रभावी पुनर्चक्रण के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण।
- समेकित खेती से जुड़ी गतिविधियों जैसे अण्डा, दूध, मशरूम, सब्जियाँ, शहद और रेशम जैसे उत्पादों के माध्यम से नियमित स्थिर आय।
- समेकित कृषि प्रणाली में बायोगैस और कृषि वानिकी शामिल करने से ऊर्जा संकट का समाधान।
- छोटे और सीमांत किसान परिवारों के लिए नियमित रोजगार।
- शुद्ध लाभ वृद्धि और निश्चित आय
- कृषि में सतत् विकास एवं किसानों के जीवन में सुधार का मानक।
- भूमि का उचित उपयोग एवं प्रदुषण मुक्त पर्यावरण।
- जीवन के उच्च मानक।
- फसलोपरांत प्रौद्योगिकरण।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

चना फसल में रोग प्रबंधन

बीरम सिंह गुर्जर

श्री कर्ण नरेन्द्र एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी, जोबनेर (राजस्थान)

चना : (Chickpea, Bengal gram)
वैज्ञानिक नाम : साइसर एरिटीनम
कुल: लेग्यूमिनेसी

चने की खेती सभी क्षैत्रो मे की जाती है। यह एक रबी की फसल है जो कि सर्दियो मे उगाई जाती है। चने की खेती सिंचित व असिचित दोनो क्षैत्रो मे की जा सकती है। चना की गुणवत्ता एवं व्याधियो के प्रकोप से बहुत प्रभावित होती हैं यह प्रोटीन का बहुत अच्छा स्रोत होने के कारण चना की खेती रोग व व्याधियो के प्रति बहुत सवेदनषिल होती हैं। सिंचाई की अविरिल सुविधाओं के कारण धान व गैहू जैसी फसलो को ज्यादा उगाने से खेतो मे उर्वरता मे कमी आई है, साथ ही धान की खेती के बाद चने की बुवाई देर से हो पाती है शुष्क मूल विगलन रोग का प्रकोप अधिक होता है इसलिए इसके उपाय हेतु समेकित नाषी जीव प्रबधन जैसे उपायो का अपनाकर ऐसे रोगो से फसल को बचाया जा सकता है। आम तौर पर उत्तर, उत्तर पूर्व व पूर्वी भाग पत्ति वाले रोग का प्रकोप रहता जबकि मध्य और मैदानी भागों में जल वाले रोग चना की फसल को हानि पहुचाते है।

यहा चने की खेती के कुछ रोग और उनका निदान कैसे करें की जानकारी दि गयी है। जिसको संज्ञान में लाकर किसान भाई चने की खेती को इन रोगो से बचा सकते है।

चने की फसल के प्रमुख रोग

1. सुखी जड़ गलन **(dry root rot)**

कारण

राइजोक्टोमिया बटाटीकोला: चना के यह मिट्टी जनित रोग है यह बिमारी वातावरण का तापमान 30 डिग्री से अधिक व मिटटी में कम नमी होने पर अधिक गंभिर रूप् से प्रकट होती है।

लक्षण

इस बीमारी का प्रकोप फली बनते समय व फुल आने पर होता हैं जडे काले रंग में बदलती है व सड़ जाती है तथा आसानी से टुट जाती हैं अधिक सक्रमंण होने पर पुरा पौधा सुख जाता हैं यह रोग फसल के शेष बचे अवशेष और भूमि में उपस्थित बीजाणुओं द्वारा फैलता है इसके नियंत्रण 1. भूमि की गहरी जुताई 2. दीर्घ फसल चक्र 3. फसल की बुवाई समय पर करे 4. रोगरोधी किस्में लगाए जैसे पूसा-372, आईसीसीवी-37, जे.जी.11, 63, सदभावना 5. बीज उपचारः- ट्राइकोड्रमा विरिडी जेविक नियत्रण फफुद का प्रयोग 4.10 ग्राम/किग्रा बीज के हिसाब से करें।

फफूंदनाशक: कार्बेन्डाजिम 1.0 ग्राम/किग्रा बीज को उपचारित करें। 6. सिंचाई द्वारा इस रोग नियंत्रित किया जा सकता हैं

उक्टा रोग (फयूज़ेरियम विल्ट)

यह चने की खेती के प्रमुख रोग है यह मृदा तथा बीजो की बीमारी जिसकी वजह से 10-12 प्रतिषत तक पैदावार में कमी आती है यह रोग सभी क्षैत्रो में फैल सकता है। परन्तु जहां ठ्ड अधिक व लम्बे समय तक पडती हैं वहा कम होती है।

लक्षण

1. यह रोग फसल की किसी भी अवस्था मे हो सकता है 2. ग्रसित चने के पौधे, उपरी हिस्से की पत्तिया और डठंल झुक जाते है। 3. जडों को तने के पास से काटने पर भुरी काली धारियों का पाया जाना और सुखने के बाद पत्तियों का रंग भुरा या तने जैसे हो जाता है। 4. चने का पौधा सुखना शुरू कर देता है। और मरने के लक्षण दिखाई देने लगते है।

नियत्रण

1. सही समय पर बुवाई, 2. भूमि की गहरी जुताई (मई-जून) मे जिससे रोग के कारक की छुपी हुई अवस्थाएं गर्मी के वजह से पूर्णत समाप्त हो जावें। 3. दीर्ध फसल चक्र (3 साल), 4. 5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से कम्पोस्ट उपयोग में ले 5. रोगरोधी किस्मों को लगाऐ जैसे जे.जी. 315, 11, 37, 74, विजय, विषाल, पीजी-5 (देषी किस्म) 6. बिजोपचारः- थाइरम . कार्बेन्डाजिम (23 ग्राम/किग्रा बीज) ट्राइकोड्रमा विरिडी फफुद 4-10 ग्राम प्रति किग्रा बींज 7. अन्तर फसल ले सरसों के साथ और अलसी के साथ 8. बीजो को मिटटी मे 8-10 बउ गहराई मे गिराने से प्रभाव कम होता है

कॉलर सड़न (कॉलर रोट)

चने में यह रोग सिंचित क्षैत्रों या बुवाई के समय मिटटी में नमी की बहुतयात, भूसतह पर कम सडे हुऐ कार्बिनिक पदार्थ की उपस्थिति, कम पीच मान, अधिक तापमान 25-30 डिग्री होने पर होता हैं

लक्षण: 1. अंकुरण से लेकर एक से डेढ महिने की अवस्था तक पौधे पीले होकर मर जाते हैं 2.जमीन से लगा तना का भाग सड़ जाता है 3. तने के सडे हुऐ भाग से जड़ तक सफेद फफूंद और कवक के जाल पर सरसों के दाने के आकार के स्केलेरोसिया दिखाई देते है

नियंत्रण: बुवाई से पहले पिछली फसल के बचे हुऐ अवशेषो को साफ करें 2. गर्मी में गहरी जुताई करे। 3. अनाज वाली फसलों जैसे गेहूं, बाजरा को लम्बी अवधि तक फसल चक्र अपनाये 4. बुवाई के समय अधिक नमी नही होनी चाहिए 5. कार्बेन्डाजिम 0.5 प्रतिषत या बेनोमिल 0.5 प्रति घोल का छिडकाव करें 5. बीजोपचार कार्बोडिजम 2-3 ग्राम/किग्रा बीज, ट्राईकोड्रमा विरिडी 4-10 ग्राम/किग्रा बीज 6. रोग आने पर हल्की सिंचाई करें।

अल्टरनेरिया अंगमारी (अल्टरनेरिया ब्लाइट)

कारण: अल्टरनेरिया फफूंद

लक्षण: 1. यह रोग बीज व भुमि जनित रोग है प्रारम्भ में पौधे की निचे की पत्तियों में पीलापन दिखाई देता है तने पर लम्बे व भुरे काले धब्बे बन जाते है ग्रसित पौधों के बीज सिकूड जाते हैं फूल तथा फली बनने के समय फसल बढवार अधिक होने पर इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

नियंत्रण: 1. नाइट्रोजन युक्त उर्वरको का प्रयोग कम करे जिससे कि फसल बढवार कम हो। 2. सर्वमित पौधो को उखाड कर जमीन मे दबा दें या जला दें। 3.रोगरोधि किस्मों की बुवाई करें मैन्कोजेब का 0.3 प्रतिषत कीदर से खडी फसल मे छिडकाव करें। 4. थाइरम 75 डब्लूपी का 2.0 ग्राम/लीटर की दर से छिडकाव करें।

एस्कोकाईटा ब्लाईट (चांदनी): उच्च आद्रता व कम तापमान की स्थिति में यह रोग फसल को क्षती पहुचाता हैं

कारण: एस्कोकाइटा रेबि फफुद

लक्षण: 1. पत्तियो पर धब्बे बन जाते है। 2. पौधे के निचले हिस्से पर गेरूई रंग के भूरे या हल्के काले रंग के धब्बे बन जाते है। 3. सक्रमित पौधा मुरझाकर सुख जाता है। 5. पौधे के धब्बे वाले हिस्सो मे फफूद के फलनकाय (बीजाणु) देखे जा सकते है।

रोकथाम

1. फसल चक्र अपनाएं 2. सक्रमित बीजो को नही उगाएं 3. गर्मियों मे भूमि की गहरी जुताई करें तथा खेत का साफ रखें 4. कार्बएडाजिम 50 प्रतिषत और थाईरम 50 प्रतिषत 1:2 के अनुपात में तीन ग्राम प्रति किग्रा के हिसाब से उपचारित करें या ट्राइकोड्रमा 4 ग्राम प्रति किग्रा के दर से बीज शोधन करे। डब्लुपी या केप्टान 50 डब्लुपी 3 ग्राम/किग्रा बीज को उपचरित करें। 5. केप्टान या मेन्कोजेब 2-3 ग्राम/लीटर पानी का 2-3 बार छिडकाव करने सेरोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

***

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

मृदा संकेतकों का मृदा स्वास्थ्य एवं मृदा गुणवत्ता में योगदान

पंकज कुमार कसवाँ
वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर, (राजस्थान)

गुलाब चौधरी, पिन्टु चॉवला
विद्यावाचस्पति उद्यान विज्ञान, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर, राज (राजस्थान)

सुमन ढाका (स्नातकोत्तर छात्र)
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केषवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

कृषि में उपयोग होने वाली निवेशित उत्पादक सामग्री (इनपुट) के गैर-विवेकपूर्ण उपयोग व प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण फसल की उत्पादकता और मिट्टी की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए एक बड़ा खतरा बन गया है। मृदा के क्षरण के कारण विभिन्न प्रकार की हानिया होती है पर पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमताए मृदा की उत्पादन क्षमता और मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में बहुत कमी आती है।

पर्याप्त मात्रा में फसल या पशु अवशेषों को पुनर्चक्रण किए बिना निरंतर फसल उत्पादन करते रहने के कारण मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा के स्तर में लगातार गिरावट आ रही है जिसके कारण मृदा का स्वास्थ्य खराब होता जा रहा हैं और फसल की उत्पादकता में गिरावट आ रही है। अतः हमें आवश्यक है की सतत् कृषि अनापते हुए मृदा गुणवत्ता और मृदा स्वास्थ्य का प्रभंद किया जाये।

मृदा गुणवत्ता क्या है दृ मृदा की वह क्षमता जो प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में पौधों और पशओ की उत्पादकता को बनाए रखने के साथ साथ पानी और वायु की गुणवत्ता को या तो उसको बढ़ाना या बनाए रखने और साथ ही मानव स्वास्थ्य एवम उनके निवास स्थान को स्वच्छ बनाये रखना। मृदा स्वास्थ्य क्या है दृ मृदा के पारिस्थितिकी तंत्र में सूक्ष्म जीवो व पादपो के जीवन को सतत बनाये रखना ही मृदा स्वास्थ्य कहलाता है।

एक स्वस्थ व गुणवत्ता युक्त मृदा के लक्षण

मृदा की भोतिक दशा: मृदा की भोतिक दशा फसल उत्पादन के अनुसार होनी चाहिए जिसमे मिट्टी भुरभुरी होनी चाहिए अच्छी संरंचना के साथ-साथ कार्बनिक पधार्थ युक्त व बड़े और सख्त ढेले नहीं होना चाहिए।

मृदा की पर्याप्त गहराई: पर्याप्त गहराई से तात्पर्य मिट्टी प्रोफाइल की वह गहराई जिसमें पादप का अंकुरण सही ढंग से हो सके एवम उसकी

जड़ो का सही से विकाश हो सके जिससे वह मृदा में उपस्थित नमी व पादप पोषक तत्वों को ग्रहण करने में सक्षम हो सके अगर उथली गहराई वाली मृदा होती है तो एक संघनन परत का निर्माण होता है जिसके कारण पानी मृदा के अन्दर प्रवेश नहीं करता है जिसके कारण विभिन्न प्रकार की व्याधिया उत्पन्न होती है जेसे पानी मृदा की सतह पर एकत्रित हो जाता है जिससे मृदा क्षरण तो होता ही है साथ ही साथ रोगों और हानिकारक कीटो का आक्रमण भी बढता है इसलिये मृदा की पर्याप्त गहराई आवश्यक है।

मृदा की जल भंडारण क्षमता और जल निकासी की व्यवस्था: जब भारी बारिश होती है तो एक स्वस्थ मृदा में पानी को ग्रहण करने के लिए बड़े व स्थिर छिद्रो का होना आवश्यक है क्योकि इन बड़े छिद्रो के माध्यम से पानी का संचालन होता है और छोटे छिद्रो में जो जल संग्रहीत किया जाता है उसका उपयोग पादप बाद में करता है। जब बारिश नहीं होती है तब यह छिद्र खाली रहते है और पौधों और मिट्टी के लिए ताजी हवा का आवागमन होता रहता है पौधों और मिट्टी को तो फायदा होता ही है साथ ही साथ मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवो के लिए भी लाभदायक है द्य

मृदा की पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमता: मृदा की पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमता इस प्रकार से होनी चाहिए की पादपो की वृद्धि व विकास के लिए पोषक तत्वों को संतुलित बनाए रखने के साथ.साथ पर्याप्त और सुलभ आपूर्ति के साथ पौधो को उपलभ्ध कराये द्य पोषक तत्वों की अधिकता हो जाने से निक्षालनए भूजल को प्रदूषित करनाए पोषक तत्व का अपवाहए विषाक्तता पौधों और माइक्रोबियल समुदायों के लिए भी हानिकारक है ।

रोगजनक और कीट: कृषि उत्पादन प्रणालियों में फसलों में रोगो और कीटों के कारण बहुत अधिक नुकसान होता है द्य स्वस्थ मृदा में रोगजनकों व हानिकारक कीटो की आबादी या तो कम होती है या इनकी सक्रियता कम होती है अगर इन रोगजनकों व हानिकारक कीटो की आबादी अधिक होने से यह फसल को नुकसान पहुचाने के साथ.साथ पोषक तत्वों अन्य लाभदायक मृदा के सूक्ष्म जीवों से या निवास स्थानए अतिपरजीविता आदि के साथ प्रतिस्पर्धा करते है जिससे लाभदायक मृदा के सूक्ष्म जीवों व फसल को सीधा नुकसान होता है

खरपतवार: फसल उत्पादन में खरपतवार एक प्रमुख बाधा है जो की पानीए पोषक तत्वोंए सूरज की रोशनी तथा अंकुरण के लिए आवश्यक स्थान के लिए फसलों से प्रतिस्पर्धा करते है जिससे फसल उत्पादन प्रभावित होता है साथ ही साथ जब खरपतवारो के बीज फसल के बीजो के साथ मिल जाते है तो फसल की गुणवत्ता को खराब करता है अतरू एक स्वस्थ व गुणवत्ता युक्त मृदा में खरपतवारों की समस्या बहुत ही कम आती आती है।

लाभदायक सूक्ष्म जीव : एक स्वस्थ व गुणवत्ता युक्त मृदा में मृदा के सूक्ष्म जीवों की संख्या बहुत अधिक पाई जाती है जो की मृदा में विभिन्न कार्य करते है जैसे पोषक तत्वों के पुनरूचक्रण करने मेंए कार्बनिक खाद के अपघटन मेंए मृदा संरंचना को सुधारना व नियमित बनाये रखना तथा हानिकारक सूक्ष्म जीवों व कीटो को भी पनपने नही देते है।

क्षरण के लिए प्रतिरोधी: एक स्वस्थ मृदा प्रतिकूल घटनाओं अत्यधिक हवा और बारिश से कटावए अधिक वर्षाए अत्यधिक सूखाए रोगों के प्रकोप से और अन्य संभावित प्रतिकूल घटनाएं से प्रतिरोधी होती है।

स्वस्थ व गुणवत्ता मृदा के संकेतक

मृदा संकेतक क्या है : मृदा की भौतिकए रासायनिक और जैविक गुणों की विशेषताओ के बारे में बताने वाले कारक जिन्हें मिट्टी में परिवर्तन की निगरानी के लिए मापा जा सकता है मृदा संकेतक कहलाते है ।

दृश्य सूचक: ऐसे सूचक जो खेत में सीधे देखे जा सकते है दृश्य सूचक कहलाते है जैसे मृदा का रंगएखेत में बनी नालियाए खरपतवारो की आबादीए पादपो की अनुक्रियाए मिट्टी का उड़ाना आदि को खेत में सीधे देखा जा सकता है द्य

भौतिक सूचक : ऐसे सूचक जो मृदा के कणों व कणों की संरचना के ऊपर निर्भर करते है भौतिक सूचक कहलाते है यह सूचक मुख्य रूप से मृदा की जल धारण क्षमता व जड़ के विकास का निर्धारण करती है यह मापदंड इस प्रकार हैं जैसे स्थूल घनत्वए सतह मृदा की गहराईए सरंध्रताए मृदा कणों की स्थिरताए मृदा कणाकार व भू पपड़ी का निर्माण आदि भोतिक सूचकों के अंतर्गत आते है द्य

रासायनिक सूचक: ऐसे सूचक जो पादप की वृद्धि एवं विकास में सहायक मृदा पोषक तत्वों व मृदा की स्थति के बारे में बताते है रासायनिक सूचक कहलाते है जैसे मृदा पीण् एचण्ए लवणताए कार्बनिक पधार्थ की मात्राए उपलब्ध नत्रजनए फास्फोरसएपोटाशियमए सल्फरए आयरनए ताम्बाए जिंकए मेगनिज व बोरोन आदि रासायनिक सूचकों के अंतर्गत आते है

जैविक सूचक : ऐसे सूचक जो मृदा में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्म जीवों के बारे में सूचना देते है जैविक सूचक कहलाते है जैसे मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों ; मुख्यतया फंजाईए एक्टिनोमायसीटीस व बैक्टीरियाद्ध की आबादीए मृदा एंजायम की क्रियाविधि आदि जैविक सूचकों के अंतर्गत आते है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

मृत पशु एवं शव का निपटारा कैसे करें?

डॉ. श्वेता जैन (सहायक प्राध्यापक)
दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

जब कोई पशु मरता है या वध किया जाता है, उसका शव और शरीर के विभिन्न भाग जो खाद्य पदार्थ के रूप में उपयुक्त नहीं है, उन्हें उचित ढंग से निपटान करना चाहिए। एक पशु का शव हो या समूह में उनकी मृत्यु हुई हो- दोनों ही स्थितियों में उनका उचित निपटारा करना चाहिए। यह किसी संक्रामक या विषैले पदार्थ द्वारा वातावरण, पशुओं और मनुष्यों के लिए हानि होने से बचाता है।

सावधानी के तौर पर जो व्यक्ति शव को ले जाता है और संक्रमणरहित करने आदि में भाग लेता है उसे सुरक्षित वस्त्र आदि पहनने चाहिए। निपटारे की क्रिया में मिट्टी, वायु और पानी को प्रदुषित होने से बचाना चाहिए। शव को निपटारा करने की विधियों में दफनाना और जलाना- ये दो विधियाँ प्रमुख हैं।

दफनाना

जो जगह स्थानीय पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी के द्वारा मान्य हो, वहीं शव को दफनाना चाहिए। यह विधि अधिकांशतः अपनाई जाती है। इस विधि को उपयोग करते समय कई बातों का ध्यान रखना चाहिए, जैसे- मिट्टी की गहराई पर्याप्त हो, अंडरग्राउंड बिजली के तार, पानी की पाइपलाइन और गैस पाइप आदि को कोई क्षति न पहुंचे और इनसे पर्याप्त दूरी हो। जिससे किसी भी प्रकार का संक्रमण भूमिगत जल में या पाइप के जल से न फैले। इसके अतिरिक्त पशु आदि शव को खोद न सकें। शव को दफनाने के लिए गड्ढे की चैड़ाई कम से कम ढाई मीटर तथा गहराई तीन मीटर होनी चाहिए। इतनी जगह में एक गाय, चार से पांच भेड़/बकरी/सूकर या 100 मुर्गियां दफनाई जा सकती हैं। दूषित बिछावन, मिट्टी, खाद, आहार आदि को संक्रमणरहित करके, गड्ढे में शव के साथ दफनाना चाहिए और ऊपर से कम से कम दो मीटर मिट्टी की परत से ढक देना चाहिए।

जलाना

जलाने के लिए सबसे अच्छी विधि भस्मकारी यंत्र/इंसीनरेटर का उपयोग करना है। इसके उपलब्ध न होने पर खुली जगह में शव को जलाने के लिए कानूनी अनुमति लेना अनिवार्य होता है। जलाने का स्थान जनसामान्य से उचित दूरी पर होना चाहिए, समतल होना चाहिए और उसके आसपास इमारतें, हे, सूखी घास, भूसा आदि के ढेर नहीं होना चाहिए। शव को जलाने के लिए पर्याप्त मात्रा में ईंधन होना चाहिए, जिससे कि वह पूर्ण रूप से जलकर राख हो जाए। अनुकूल परिस्थितियों में 48 घंटो में दहन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। अगर आवश्यक हो तो और ईंधन का उपयोग करके उसे पूरी तरह जलाना चाहिए।

भस्मीकरण

जलाने के लिए यह सबसे अच्छी विधि है। इस विधि के द्वारा भस्मकारी यंत्र की सहायता से अति उच्च तापमान (850 डि.से.) पर शव को जलाकर राख कर दिया जाता है। यह विधि सभी प्रकार के संक्रमण को नष्ट कर देती है तथा शव को उसके मूल आयतन का 1 से 5 प्रतिशत तक कम कर देती है।

कम्पोस्ट बनाना

यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में सूक्ष्मजीव जैसे जीवाणु एवं फफूँदी द्वारा शव को ऑर्गेनिक तत्वों में विघटित कर दिया जाता है। फार्म पर इस प्रक्रिया को मुख्यतः अपनाया जाता है, क्योंकि इसमें कम लागत आती है। कम्पोस्टिंग के अंतिम उत्पाद का उपयोग खेतों में फर्टिलाइजर के रूप में किया जा सकता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

श्वानों में हुकवर्मस की समस्या-कारण एवं बचाव

डॉ. सविता बिसेन, डॉ. दुर्गा चौरसिया
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, अंजोरा
दाऊ श्री वासुदेव चन्द्राकर कामधेनु वि.वि. दुर्ग (छ.ग.)

हुकवर्मस, पशुओं की छोटी आँत में पाए जाने वाले परजीवी हैं जो कि विश्व भर में पाए जाते हैं। हुकवर्मस की कई प्रजातियाँ, श्वानों को प्रभावित करती हैं जिनमें *एनकाइलोस्टोमा कैनाइनम, एनकाइलोस्टोमा ब्रजिलियन्से, अन्सीनेरिया स्टेनोसिफला* इत्यादि प्रमुख हैं। हुकवर्मस की समस्या भारत के श्वानों में बहुत आम है। हुकवर्मस का अग्रिम भाग हुक के आकार में मुड़ा हुआ होता है।

एनकाइलोस्टोमा कैनाइनम, श्वानों में पाई जाने वाली हुकवर्मस की सबसे प्रमुख प्रजाति है। *ए. कैनाइनम* 1-2 से.मी. लम्बे होते हैं एवं इनका मुँह काफी बड़ा होता है जिसके उदर भाग में तीन-तीन दाँतों के दो सेट मौजूद होते हैं।

***एनकाइलोस्टोमा कैनाइनम* का जीवन चक्रः** पशु की छोटी आँत में नर एवं मादा कृमि संभोग करते हैं जिसके उपरांत मादा कृमि प्रतिदिन बड़ी संख्या में अंडे देती हैं। श्वान के मल के माध्यम से ये अंडे वातावरण में निष्कासित होते रहते हैं। 24-48 घंटों के उपरांत, इन अंडों में से में प्रथम लार्वा चरण निकलते हैं जो कि 05-10 दिनों में तृतीय लार्वा चरण में परिवर्तित होते हैं। अंतर्ग्रहण के माध्यम से या त्वचा में प्रवेश के माध्यम से तृतीय लार्वा श्वान को संक्रमित करते हैं। संक्रमित मादा श्वान के दूध के सेवन से पिल्लों द्वारा संक्रमण ग्रहण किया जा सकता है। संक्रमित गर्भवती मादा श्वान, आजन्मे पिल्लों को गर्भनाल के माध्यम से रोग ग्रसित कर सकती है।

एनकाइलोस्टोमा कैनाइनम द्वारा रोगजनन

- हुकवर्मस अपने दाँतों की मदद से पशु के छोटी आँत की श्लेष्मा झिल्ली को पकड़ते हैं और उसे नुकसान पहुँचाते हैं जिस कारण पशु को खूनी दस्त होते हैं।
- प्रत्येक हुकवर्म प्रतिदिन तकरीबन 0.1 मि.ली. रक्त चूसता है जिस कारण संक्रमित श्वान में रक्त-अल्पता हो जाती है।
- *ए. कैनाइनम* के तृतीय-लार्वा चरण श्वान की अंगुलियों के बीच एक्जिमा और अल्सर उत्पन्न कर सकते हैं।

श्वान में हुकवर्म रोग की गंभीरता निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती हैः-

- संक्रमण की तीव्रता
- श्वान की उम्र
- श्वान की नस्ल
- शरीर में पोषक तत्वों का स्तर
- शरीर में लौह भंडार की स्थिति

हुकवर्म रोग के लक्षण

- रोग की गंभीर अवस्था अधिकांशतः नवजात पिल्लों में देखी जाती है जो कि संक्रमित मादा श्वान के दूध पीने से रोग-ग्रस्त होते हैं। इन पिल्लों मे रक्त-अल्पता गंभीर रूप ले सकती जिससे उनकी जान भी जा सकती है।
- हुकवर्म संक्रमण के प्रति व्यस्क श्वान अधिक प्रतिरोधी होते हैं एवं इनमें दीर्घकालिक अवस्था के रोग लक्षण दिखाई देते हैं।
- रक्त-अल्पता एवं खून मिश्रित दस्त, रोग की गंभीर अवस्था के लक्षण हैं।

रोग की दीर्घकालिक अवस्था में लक्षण

- शुष्क एवं कड़ी त्वचा
- रक्त अल्पता
- वजन में कमी
- कमजोरी
- भूख न लगना
- त्वचा में खुजली

हुकवर्मस की जूनोटिक क्षमता

- त्वचा भेदन द्वारा हुकवर्मस के लार्वा चरण मनुष्य में खुजली वाले घाव उत्पन्न करते हैं।
- हुकवर्मस के लार्वा, मनुष्य के फेफड़ों में पहुँचकर, खाँसी और निमोनिया उत्पन्न करते हैं।

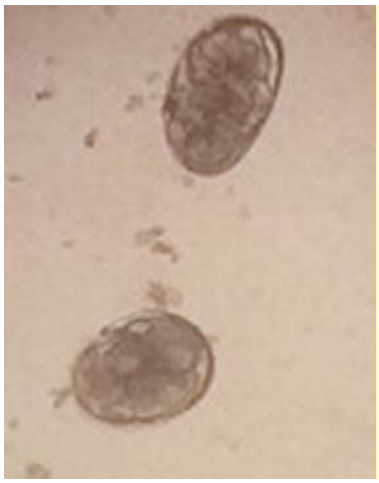

***एनकाइलोस्टोमा कैनाइनम* (हुकवर्म) के अंडे**

हुकवर्म रोग का निदान

- श्वान में नैदानिक लक्षण द्वारा
- श्वान की मल जाँच द्वारा हजारों की संख्या में *(ए. केनाइनम)* हुकवर्मस के अंडों की पहचान।

रोग नियंत्रण

- श्वान को रखने वाली जगह को जितना संभव हो उतना सूखा रखना चाहिए।
- केनेल के फर्श को साधारण नमक या सोडियम बोरेट (2 कि.ग्रा./10 मी.2) से उपचारित करना चाहिए ताकि हुकवर्मस के लार्वा को खत्म किया जा सके।
- श्वान के मल को उठाकर उपर्युक्त जगह पर निष्कासित करें। यदि हुकवर्मस के अंडे/लार्वा पर्यावरण में नहीं होंगें, तो अन्य पशु को संक्रमित होने से बच सकेंगे।
- पशु चिकित्सक की सलाह पर प्रस्तावित कृमिनाशक द्वारा श्वानों की नियमित डीवर्मिंग करें। 2, 4, 6, और 8 सप्ताह की आयु में अनुमोदित कृमिनाशक पिल्लों को पिलाएँ एवं तत्पश्चात् मासिक अंतराल पर दवा दें।

दिनेश शिवहरे Mob. : 98263-55396
मध्य प्रदेश का पहला
श्री दयाल बन्धु केन्द्र
(हिनौतिया वालों की दुकान)
सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता
गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66yahoo.com

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

जैविक खेती की विधियां और लाभ

ब्रिजबिहारी पाण्डे
पादप कार्यिकी विज्ञान विभाग, इं.गा.कृ.वि.वि., रायपुर

राहुल गुर्जर कृषि विज्ञान विभाग, डॉ. pdkv अकोला

आरती सिंह कृषि विज्ञान विभाग RVSKVV ग्वालियर

प्रियांश राहंगडाले (सहायक प्रोफ़ेसर) सेज वि.वि. इंदौर

प्रशांत श्रीवास्तव (सहायक प्रोफेसर) सेज वि.वि. इंदौर

जैविक खेती (ऑर्गेनिक फार्मिंग) कृषि की वह विधि है जो संश्लेषित उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों के अप्रयोग या न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है तथा जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बचाये रखने के लिये फसल चक्र हरी खाद कम्पोस्ट आदि का प्रयोग करती है। सन् 1990 के बाद से विश्व में जैविक उत्पादों का बाजार आज तक काफी बढ़ता रहा है।

प्राचीन काल में मानव स्वास्थ्य के अनुकुल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप खेती की जाती थी जिससे जैविक और अजैविक पदार्थों के बीच आदान-प्रदान का चक्र निरन्तर चलता रहा था जिसके फलस्वरूप जल, भूमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता था। भारत वर्ष में प्राचीन काल से कृषि के साथ-साथ गौ पालन किया जाता था जिसके प्रमाण हमारे ग्रंथो में प्रभु कृष्ण और बलराम हैं जिन्हें हम गोपाल एवं हलधर के नाम से संबोधित करते हैं अर्थात कृषि एवं गोपालन संयुक्त रूप से अत्याधिक लाभदायी था जो कि प्राणी मात्र व वातावरण के लिए अत्यन्त उपयोगी था। परन्तु बदलते परिवेश में गो पालन धीरे-धीरे कम हो गया तथा कृषि में तरह-तरह की रसायनिक खादों व कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है जिसके फलस्वरूप जैविक और अजैविक पदार्थों के चक्र का संतुलन बिगड़ता जा रहा है, और वातावरण प्रदूषित होकर मानव जाति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। अब हम रसायनिक खादों जहरीले कीटनाशकों के उपयोग के स्थान पर जैविक खादों एवं दवाईयों का उपयोग कर, अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं जिससे भूमि जल एवं वातावरण शुद्ध रहेगा और मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ रहेंगे।

यह एक सर्वविदित तथ्य हैं की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि हैं और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती हैं। हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक हैं। अधिक उत्पादन के लिए खेती में अधिक मात्रा में रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता हैं जिससे सामान्य एवं छोटे कृषक के पास कम जोत में अत्यधिक लागत लग रही हैं और जल, भूमि, वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहें हैं। साथ ही खाद्य पदार्थ जहरीले हो रहे हैं।

जैविक खाद बनाने की विधियां: अब हम खेती में इन सूक्ष्म जीवाणुओं का सहयोग लेकर खाद बनाने एवं तत्वों की पूर्ति हेतु मदद लेंगे। खेतों में रसायनों से ये सूक्ष्म जीव क्षतिग्रस्त हुये हैं अतः प्रत्येक फसल में हमें इनके कल्चर का उपयोग करना पड़ेगा जिससे फसलों को पोषण तत्व उपलब्ध हो सकें। दलहनी फसलों में प्रति एकड़ 4 से 5 पैकेट राइजोबियम कल्चर डालना पड़ेगा । एक दलीय फसलों में एजेक्टोबेक्टर कल्चर इतनी ही मात्रा में डालें। साथ ही भूमि में जो फास्फोरस है उसे घोलने हेतु पी.एस.पी. कल्चर 5 पैकेट प्रति एकड़ डालना होगा। खाद बनाने के लिये कुछ तरीके नीचे दिये जा रहे हैं इन विधियों से खाद बनाकर खेतों में डालें। इस खाद से मिट्टी में सुधार होगा सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या भी बढ़ेगी एवं हवा का संचार बढ़ेगा पानी

सोखने एवं धारण करने की क्षमता में भी वृध्दि होगी और फसल का उत्पादन भी बढ़ेगा। फसलों एवं झाड पेड़ों के अवशेषों में वे सभी तत्व होते हैं जिसकी उन्हें आवश्यकता होती है।

नाडेप विधि: इस विधि में 12 फीट लम्बा, 5 फीट चैड़ा एवं 3 फीट गहरा गड्ढा खोदकर उसमे 75 प्रतिशत वनस्पति के सूखे अवशेष, 20 प्रतिशत हरी घास, गाजर घास, पुवाल, 5 प्रतिशत गोबर, 2000 लिटर पानी । में डालकर अच्छे से मिलाते हैं। इस गड्ढे में कुछ छेद करके उनमे पीएसबी एवं एजेक्टोबेक्टर कल्चर गड्ढे के अंदर डालकर उन छिद्रों को बंद कर देते हैं। 15 से 20 क्विंटल प्रति एकड़ की दर से इस खाद का उपयोग करें। हर 21 दिन बाद इस खाद को डाल सकते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ खाद): फसल में पोषक तत्वों का संतुलन बनाने में वर्मी कम्पोस्ट खाद की महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं। वर्मी कम्पोस्ट खाद को विशेष प्रकार के केंचुओ से बनाया जाता हैं। इन केंचुओं के माध्यम से अनुपयोगी जैविक वानस्पतिक जीवांशों को अल्प अवधि में मुल्यांकन जैविक खाद का निर्माण करके इसके उपयोग से मृदा के स्वास्थ्य में सुधार होता हैं एवं मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती हैं जिससे फसल उत्पादन में स्थिरता के साथ गुणात्मक सुधार होता हैं। वर्मी कम्पोस्ट में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश के अतिरिक्त में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाये जाते हैं। वर्मी कम्पोस्ट पोषक तत्व भी पाये जाते हैं। वर्मीकपोस्ट पोषण पदार्थों से भरपूर एक उत्तम जैव उर्वरक हैं। यह केंचुआ आदि कीड़ों के द्वारा वनस्पतियों एवं भोजन के कचरे आदि को विघटित करके बनाई जाती हैं। वर्मी कम्पोस्ट में बदबू नहीं होती हैं और मक्खी एवं मच्छर नहीं बनते हैं तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता हैं। तापमान नियंत्रित रहने से जीवाणु क्रियाशील तथा सक्रिय रहते हैं। वर्मी कम्पोस्ट डेढ़ से दो माह के अंदर तैयार हो जाता हैं। इसमें 2.5 से 3 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.5 से 2 प्रतिशत सल्फर तथा 1.5 से 2 प्रतिशत पोटाश पाया जाता हैं।

हरी खाद: हरी खाद उस सहायक फसल को कहते हैं, जिसकी खेती मुख्यतः भूमि में पोषक तत्वों को बढ़ाने तथा उसमे जैविक पदार्थों की पूर्ति करने के उद्देश्य से की जाती हैं। प्रायः इस तरह की फसल को इसके हरी स्थिति में ही हल चलाकर मिट्टी में मिला दिया जाता हैं। हरी खाद से भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती हैं और भूमि की रक्षा होती हैं। मृदा में लगातार दोहन से उसमे उपस्थित पौधे की बढ़वार के लिये आवश्यक तत्व नष्ट होते जा रहे हैं। इनकी क्षतिपूर्ति हेतु व मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिये हरी खाद एक उत्तम विकल्प हैं। बिना गले-सड़े हरे पौधे (दलहनी एवं अन्य फसलों अथवा उनके भाग) को जब मृदा की नत्रजन या जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिये खेत में दबाया जाता हैं तो इस क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं।

मटका खाद: इस विधि में गौ मूत्र 10 लीटर, गोबर 10 किलो, गुड़ 500 ग्राम, बेसन 500 ग्राम सभी को मिलाकर मटके में भरकर 10 दिन सड़ाएं फिर 200 लीटर पानी में घोलकर गीली जमीन पर कतारों के बिच छिड़क दें। 15 दिन बाद पुनः इसका छिड़काव करें।

बायोगैस स्लरी: गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद बायोगैस सयंत्र में 25 प्रतिशत ठोस पदार्थ रूपांतरण गैस के रूप में होता हैं और 75 प्रतिशत ठोस पदार्थ का रूपांतरण सयंत्र में 50 किलोग्राम प्रतिदिन या 18-25 टन गोबर एक वर्ष में डाला जाता हैं। उस गोबर में 80 प्रतिशत नमी युक्त करीब 10 टन बायोगैस स्लेरी का खाद प्राप्त होता हैं। ये खेती के लिये अति-उत्तम खाद होता हैं। इसमें 1.5 से 2 प्रतिशत नत्रजन, 1 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 1 प्रतिशत पोटाश होता हैं। बायोगैस सयंत्र में गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद 20 प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनियम नाइट्रेट के रूप में होता हैं। अतः यदि इसका तुरंत उपयोग खेत में सिंचाई नाली के माध्यम से किया जाये तो इसका लाभ रसायनिक खाद की तरह फसल पर तुरंत होता हैं और उत्पादन में 10-20 प्रतिशत बढ़त हो जाती हैं। स्लरी के खाद में नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषण तत्व एवं ह्यूमस भी होता हैं जिससे मिटटी की सरंचना में सुधार होता हैं तथा जल धारण क्षमता बढ़ती हैं। सुखी खाद असिंचित खेती में 5 टन एवं सिंचित खेती में 10 टन प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होगी। ताजी गोबर गैस स्लरी सिंचित खेती में 3-4 टन प्रति हेक्टेयर में लगेगी। सुखी खाद का उपयोग सिंचाई के दौरान करें। स्लरी के उपयोग से फसलों को तीन वर्ष तक पोषक तत्व धीरे-धीरे उपलब्ध होते रहते हैं।

जैविक खेती के लाभ: किसान एवं पर्यावरण के लिए जैविक खेती लाभ का यह हैं। जैविक खेती से किसानों को कम लागत में उच्च गुणवत्ता पूर्ण फसल प्राप्त हो सकती हैं। इसके अन्य लाभ निम्नलिखित हैं।

- जैविक खेती से भूमि की गुणवत्ता में सुधार होता हैं। रासयनिक उर्वरक के उपयोग से भूमि बंजरपन की और बढ़ रही हैं। जैविक खादों से उसमे जिन तत्वों की कमी होती हैं वह पूर्ण हो जाती हैं एवं उसकी गुणवत्ता में अभूतपूर्ण वृद्धि हो सकती हैं। • जैविक खादों एवं जैविक कीटनाशकों के उपयोग से जमीन की उपजाऊपन में वृद्धि होती हैं। • सिंचाई की कम लागत जैविक खेती में आती हैं क्योंकि जैविक खाद जमीन में लम्बे समय तक नमी बनाये रखते हैं जिससे सिंचाई की आवश्यकता रसायनिक खेती की अपेक्षा कम पड़ती हैं। • रसायनिक खादों के उपयोग से जमीन के अंदर फसल की उत्पादकता बढ़ाने वाले जीवाणु नष्ट हो जाते हैं जिस कारण फसल की उत्पादकता कम हो जाती हैं। जैविक खाद का उपयोग कर पुनः उस उत्पादकता को प्राप्त किया जा सकता हैं। • जैविक खेती से भूमि की जल धारण शक्ति में वृद्धि होती हैं। रसायनिक खाद भूमि के अंदर के पानी को जल्दी सोख लेते हैं जबकि जैविक खाद जमीन की ऊपरी सतह में नमी बनाकर रखते हैं जिससे जमीन की जल धारण क्षमता बढ़ती हैं। • किसान की खेती की लागत रसायनिक खादों की कीमते आसमान छू रही हैं। जैविक खाद बहुत ही सस्ते दामों में तैयार हो जाता हैं। • जैविक खेती से प्रदूषण में कमी आती हैं। रसायनिक खादों एवं कीटनाशकों से पर्यावरण प्रदूषित होता हैं। खेतों के आसपास का वातावरण जहरीला हो जाता हैं जिससे वहां के वनस्पति, जानवर एवं पशु पक्षी मरने लगते हैं। जैविक खादों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से वातावरण शुद्ध होता हैं। • जैविक खेती से उत्पादों की गुणवत्ता रसायनिक खेती की तुलना में कई गुना बेहतर होती हैं एवं उच्चे दामों में बाजार में बिकते हैं। • स्वास्थ्य की दृष्टि से जैविक उत्पाद सर्वश्रेष्ठ होते हैं एवं इनके प्रयोग से कई प्रकार के रोगों से बचा जा सकता हैं। • जैविक उत्पादों की कीमते रसायनिक उत्पादों से कई गुना ज्यादा होती हैं जिससे किसानों की औसत आय में वृद्धि होती हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

कुसुम उत्पादन की उन्नत तकनीक

डॉ. ब्रिजबिहारी पाण्डे
डॉ. रत्ना कुमार पसाला
पादप कार्यिकी विज्ञान विभाग, इं.गा.कृ.वि.वि., रायपुर
डॉ. आरती गुहे
वरिष्ठ वैज्ञानिक पादप कार्यिकी आई.सी.ए.आर.-आई. आई.ओ.आर. राजेन्द्र नगर हैदराबाद
डॉ. पप्पू लाल बैरवा
सब्जी विज्ञान विभाग, इं.गा.कृ.वि.वि., रायपुर (छ.ग.)

कुसुम एक औषधीय गुणों वाली तिलहनी फसल है। भारत विश्व में कुसुम का मुख्य उत्पादक देश है। इसके दानों में 30 से 32 प्रतिशत तेल पाया जाता है। यह तेल उच्च रक्तचाप तथा हृदय रोगियों के लिए लाभदायक है अन्य खाद्य तेलों की अपेक्षा कुसुम तेल में असंतृप्त वसीय अम्ल की मात्रा अधिक होती है। इसके तेल में पाये जाने वाले असंतृप्त वसीय अम्ल में 76 प्रतिशत लिनोलिक अम्ल तथा 14 प्रतिशत ओलिक अम्ल पाया जाता है।

अंकुरण के बाद प्रारम्भिक अवस्था में यह फसल तापमान-सहनशील होती है। इस अवस्था में पौधे की ऊपरी बढ़वार धीमी होती है, परन्तु जड़े काफी तेज गति से वृद्धि करती है। जिससे आगे की नमी की अवस्था में भी पौधों को पर्याप्त पानी उपलब्ध हो पाता है। इसी लिए कुसुम की खेती सिमित सिंचाई अवस्था में की जाती है। कर्षक यदि कुसुम की खेती आधुनिक तकनीक से करें, तो इसकी फसल से अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इस लेख में कुसुम की खेती वैज्ञानिक तकनीक से कैसे करें की जानकारी का उल्लेख किया गया है।

भमि की तैयारी: कुसुम की खेती करने के मध्यम काली भूमि से लेकर भारी काली भूमि उपयुक्त मानी जाती है। कुसुम की उत्पादन क्षमता का सही लाभ लेने के लिये इसे गहरी काली जमीन में ही बोना चाहिये। इस फसल की जड़ें जमीन में गहरी जाती है। कुसुम की खेती करने के लिए जल निकास का होना बेहद जरूरी होता है ज्यादा समय तक खेत में पानी ठहरने के बाद फसल खराब होने लगती है। सिंचाई पर आधारित इसकी खेती के लिए अगर मिट्टी भारी हो तो अतिरिक्त जल निकास की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए।

कुसुम की उन्नत किस्में

के 65: यह कुसुम की अच्छी प्रजाति है, जो 180 से 190 दिन में पकती है इसमें तेल की मात्रा 30 से 35 प्रतिशत होती है और औसत उपज 14 से 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

मालवीय कुसुम 305: यह भी कुसुम की अच्छी किस्म है जो 160 दिन में पकती है। इस किस्म में तेल की मात्रा 36 प्रतिशत तक पाई जाती है।

ए 300: यह किस्म 160 से 170 दिनों में पककर 8 से 9 क्विं. प्रति हेक्टेयर की औसत पैदावार देती है। इस किस्म के पुष्प पीले रंग के होते हैं तथा बीज मध्यम आकार एवं सफेद रंग के होते हैं। बीजों में 31.9% तेल पाया जाता है।

ए 1: यह किस्म भी ए- 300 के समान 160 दिनों में पककर 8 से 10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत पैदावार देती है इसके बीज सफेद रंग के होते हैं तथा इसके बीजों में 30.8 प्रतिशत तेल पाया जाता है।

अक्षागिरी 59-2: इस किस्म की औसत पैदावार 4 से 5 क्विंटल प्रति हेक्टर है यह किस्म 155 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसके पुष्प पीले रंग और बीज सफेद रंग के होते हैं। इसके दानों में 31 प्रतिशत तेल पाया जाता है।

जे.एस.एफ -1: यह जाति सफेद रंग के फूल वाली है। इसके पौधे काँटेदार होते हैं। इसका दाना बड़ा एवं सफेद रंग का होता है। इस जाति के दानों में 30 प्रतिशत तेल होता है।

जे.एस.आई.-7: इस जाति की विशेषता यह है कि यह काँटें रहित हैं। इसके खिले हुये फूल पीले रंग के होते है और जब सूखने लगते हैं, तो फूलों का रंग नारंगी लाल हो जाता है। इसका दाना छोटा सफेद रंग का होता है। दानों में 32 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है।

जे.एस.आई -73: यह जाति भी बिना काँटें वाली है। इसके भी खिले हुये फूल पीले रंग के रहते हैं और सूखने पर फूलों का रंग नारंगी लाल हो जाता है। इसका दाना जे.एस.आई -7 जाति से थोड़ा बड़ा सफेद रंग का होता है। इसके दानों में तेल की मात्रा 31 प्रतिशत होती है।

बुआई का समय एवं विधि: कुसुम की बुआई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवंबर के पहले सप्ताह तक अवश्य कर दें अन्यथा अधिक ठंड पड़ने से अंकुरण पर बुरा असर पड़ता है। पौधे से पौधे की दूरी 15 सेमी और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेमी रखें। बीज को 5-7 सेमी की गहराई पर बोयें। बुवाई ड्रिलिंग विधि से की जाती है।

बीज दर: 18-20 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

बीजोपचार: मिट्टी से होने वाली बीमारियों से बचाव के लिए बुवाई से पहले प्रति एक किलोग्राम बीजों को थायरम 3 ग्राम या कैप्टन 2 ग्राम या कार्बडाजिम 2 ग्राम की दर से बीजोपचार करना चाहिए।

खाद और उर्वरक: सही और संतुलित रूप में उर्वरक देने के लिए बुवाई के 2-3 सप्ताह पहले 2 टन प्रति एकड़ के हिसाब से सड़ी गोबर की खाद को खेत में डालना चाहिए। उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर करें अन्यथा 40 किलोग्राम नाइट्रोजन, 20 किलोग्राम फास्फोरस, 20 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टर की दर से अधिक लाभकारी होता है।

सिंचाई प्रबंधन: यह एक सूखा सहनशील फसल है अतः यदि फसल का बीज एक बार उग आये तो इसे फसल कटने तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन जहाँ सिंचाई उपलब्ध हो, वहां, अधिकतम दो सिंचाई कर सकते हैं। प्रथम सिंचाई 50 से 55 दिनों पर (बढ़वार अवस्था) और दूसरी सिंचाई 80 से 85 दिनों पर (शाखायें आने पर) करना उचित होता है।

निराई-गुड़ाई: कुसुम की फसल में एक या दो बार आवश्यकतानुसार हाथ से निराई-गुड़ाई करें। निराई-गुड़ाई करने से जमीन की उपरी सतह की पपड़ी टूट जायेगी। यदि दरारे पड़ रहीं हो तो वह भर जायेगी और नमीं के ह्रास की बचत होगी। निदाई-गुड़ाई अंकुरण के 15-20 दिनों के बाद करना चाहिये एवं हाथ से निराई-गुड़ाई करते समय पौधों का विरलन भी हो जायेगा। एक जगह पर एक ही स्वस्थ पौधा रखना चाहिये।

फसल कटाई: कांटेवाली जाति में काँटो के कारण फसल काटने में थोड़ी कठिनाई जरुर आती है। काँटेवाली फसल में पत्तों पर काँटें होते हैं। तने कांटे रहित होते हैं। बाँये हाथ में दास्ताने पहनकर या हाथ में कपड़ा लपेटकर या तो दो शाखा वाली लकड़ी में पौधों को फंसाकर दराती से आसानी से फसल कटाई कर सकते हैं। काँटे रहित जातियों की कटाई में कोई समस्या नहीं हैं। कुसुम फसल की कटाई हार्वेस्टर से भी करते हैं

उपज

असिंचित अवस्था: 1100 से 1200 किलोग्राम प्रति हे.
सिंचित अवस्था: 1500 से 1600 किलोग्राम प्रति हे.

भण्डारण: कुसुम क0 सुखाने के बाद बीजों का भण्डारण करना चाहिए। कुसुम के औषधीय गुण कुसुम का बीज, छिलका, पत्ती, पंखुड़ियाँ, तेल, शरबत सभी का उपयोग औषधि के रूप में किया जा सकता है। कुसुम का तेल भोजन में उपयोग करने पर कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम रहती है एवं तेल से सिर दर्द में भी आराम मिलता है। इसके शरबत का उपयोग बदन दर्द में किया जाता है मांसपेशियों की चोट, कलाई में दर्द, हड्डियों में दर्द, घुटने में दर्द में भी इससे इलाज किया जाता है कुसुम की पंखुड़ियों से बनी चाय का उपयोग औषधि के रूप में तथा शक्तिवर्धन के रूप में किया जाता है मानसिक रोगों में भी कुसुम के रस से उपचार किया जाता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

अलसी बीज के फायदे, नुकसान व उपयोग

विवेक कुमार सांडिल्य
रोहित कुमार, गजाला
आमीन एवं देवार्चन
पीएच.डी. (कृषि) (अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग)
कृषि महाविद्यालय रायपुर छत्तीसगढ़ 492012

अलसी का प्रयोग हम रोज घर में करते होंगे। कई घरेलू व्यंजनों में अलसी का इस्तेमाल किया जाता है। वैसे तो असली के बीज बहुत ही छोटे-छोटे होते हैं, लेकिन इसमें इतने सारे गुण होते हैं, जिसका आप अंदाजा नहीं लगा सकते। क्या आपको यह जानकारी है कि जिस अलसी के बीज को आप सभी केवल खाद्य पदार्थ के रूप में इस्तेमाल में लाते हैं, उससे रोगों का इलाज भी किया जा सकता है? जी हां, अलसी के फायदे और भी हैं। अलसी का उपयोग कर, अनेक रोगों की रोकथाम कर सकते हैं।

अलसी: अलसी का दूसरा नाम तीसी है। यह एक जड़ी-बूटी है, जिसका इस्तेमाल औषधि के रूप में भी किया जाता है। स्थानों की प्रकृति के अनुसार, तीसी के बीजों के रंग-रूप, और आकार में भी अंतर पाया जाता है। देश भर में तीसी के बीज सफेद, पीले, लाल, या थोड़े काले रंग के होते हैं। गर्म प्रदेशों की तीसी सबसे अच्छी मानी जाती है। आमतौर पर लोग तीसी के बीज, तेल को उपयोग में लाते हैं। तीसी के प्रयोग से सांस, गला, कंठ, कफ, पाचनतंत्र विकार सहित घाव, कुष्ठ आदि रोगों में लाभ लिया जा सकता है। अलसी की खेती पूरे भारत में की जाती है। भारत में अलसी की खेती शरद ऋतु की फसल के साथ की जाती है। हिमाचल प्रदेश में भी 1800 मी. की ऊंचाई तक तीसी बोई जाती है।

अन्य भाषाओं में अलसी के नाम : तीसी का वानस्पतिक नाम (लाइनम यूसीटैटीसिमम) है, और यह लाइनेसी कुल की है। दुनिया भर में तीसी को कई नामों से जाना जाता है, तीसी, अलसी, लिनसीड, फ्लैक्स प्लान्ट, कॉमन फ्लैक्स, अतसी, नीलपुष्पी, नीलपुष्पिका, उमा, क्षुमा, मसरीना, पार्वती, क्षौमी, पेसू (च्मेन), अगसीबीज सेमीअगासे, सोत्रबीअम, अलिविराई अलसीविराई, अविसि, उछुसुलू, मदनजिन्जालु, मसीना, असिना, अलीश, जवस, अगासी, चार्म, चेरुकाना, अकासी, केट्टन, बाजरुलकटन, तुख्म-ए-कटन।

अलसी खाने के फायदे : अलसी या तीसी का औषधीय प्रयोग इस तरह से किया जा सकता है:-

नींद ना आने की बीमारी में अलसी का प्रयोग: नींद ना आने की बीमारी में अलसी का सेवन फायदेमंद होता है। इसके लिए अलसी, तथा एरंड तेल को बराबर-बराबर मात्रा में मिलाकर, कांसे की थाली में अच्छे से पीस लें। इसे आंखों में काजल की तरह लगाने से नींद अच्छी आती है।

अलसी के फायदे आंखों के रोग में : अलसी के गुण आँख संबंधी बीमारियों में बहुत फायदेमंद होता है। आंखों की बीमारी, जैसे- आंख आना, आंखों की लालिमा खत्म होने आदि को ठीक करने के लिए अलसी के बीजों को पानी में फूला लें। इस पानी को आंखों में डालें। इससे आंख आने की परेशानी में फायदा होता है।

अलसी के इस्तेमाल से दर्द और सूजन में लाभ : तीसी के इस्तेमाल से दर्द, और सूजन में भी बहुत फायदा होता है। इसमें अलसी से बनाई हुई गीली दवा बहुत काम करती है। एक भाग कुटी हुई अलसी को, 4 भाग उबलते हुए पानी में डालकर धीरे-धीरे मिलाएं। यह गीली होनी चाहिए, लेकिन बहुत गाढ़ा नहीं होना चाहिए। इसे दर्द, या सूजन वाले अंग पर तेल की तरह चुपड़ कर लगाएं। इसके प्रयोग से सूजन, और दर्द दूर होती है।

कान की सूजन को ठीक करने में: कान की सूजन को ठीक करने के लिए अलसी के गुण उपचार स्वरुप बहुत काम आते हैं। इसके लिए अलसी को प्याज के रस में पकाकर, छान लें। इसे 1-2 बूंद कान में डालें। इससे कान की सूजन ठीक हो जाती है।

सिर दर्द में अलसी के फायदे: आजकल सिरदर्द की समस्या से एक आसान घरेलू उपाय से इस समस्या से निजात पा सकते हैं। सिरदर्द से आराम पाने के लिए अलसी का सही तरह से प्रयोग करने पर अलसी के लाभ पूरी तरह से मिल सकता है। इसके लिए अलसी के बीजों को ठंडे पानी में पीसकर लेप करें। इससे सूजन के कारण होने वाले सिर दर्द, या अन्य तरह के सिर दर्द, या फिर सिर के घावों में फायदा मिलता है।

जुकाम से राहत पाने के लिए अलसी का सेवन: जुकाम से परेशान हैं, तो तीसी का इस्तेमाल कर सकते हैं। महीन पिसी अलसी को साफ कर धीमी आंच से तवे पर भून लें। जब यह अच्छी तरह भून जाय, और गंध आने लगे, तब पीस लें। इसमें बराबर मात्रा में मिश्री मिला लें। अलसी खाने का तरीका यह है कि आप इसे 5 ग्राम की मात्रा में गर्म पानी के साथ, सुबह और शाम सेवन करें। इससे जुकाम में लाभ होता है।

अलसी के फायदे खांसी और दमा में: मौसम के बदलाव के समय खांसी और दमे से अगर बार-बार परेशान रहते हैं तो इसका सही तरह से प्रयोग कर अलसी के लाभ से पूरा फायदा उठा सकते हैं। अलसी के बीज खाने के फायदे खांसी और दमा रोग में भी मिलते हैं। अलसी के बीजों से काढ़ा बना लें। इसे सुबह और शाम पीने से खांसी, और अस्थमा में लाभ होता है। ठंड के दिनों में मधु, तथा गर्मी में मिश्री मिलाकर सेवन करना चाहिए। इसी तरह 3 ग्राम अलसी के चूर्ण को, 250 मिली उबले हुए पानी में डालें। इसे 1 घण्टे तक छोड़ दें। इसमें थोड़ी चीनी मिलाकर सेवन करें। इससे सूखी खांसी तथा अस्थमा में लाभ होता है। इसके अलावा, 5 ग्राम अलसी के बीजों को 50 मिली पानी में भिगोकर रखें। 12 घंटे बाद छानकर पानी को पी लें। सुबह भिगोआ हुआ पानी शाम को, और शाम को भिगोया हुआ पानी सुबह को पिएं। इस पानी के सेवन से खांसी, और दमा में फायदा होता है। इस दौरान ऐसा कुछ नहीं खाना, या पीना चाहिए, जो बीमारी को बढ़ाने वाला हो। आप खांसी, या दमा के इलाज के लिए 5 ग्राम अलसी के बीजों को कूटकर छान लें। इसे जल में उबाल लें। इसमें 20 ग्राम मिश्री मिला लें। यदि ठंड का मौसम हो तो मिश्री के स्थान पर शहद मिलाएं। इसे सुबह और शाम सेवन करें। इससे खांसी, और अस्थमा में लाभ होता है। आप खांसी, और दमा के उपचार के लिए यह तरीका भी आजमा सकते हैं। 3 ग्राम अलसी के बीजों को मोटा कूट लें। इसे 250 मिली उबलते हुए पानी में भिगो दें। इसे एक घंटा ढक कर रख दें। इसे छानकर, थोड़ी चीनी मिला लें। इसका सेवन करने से भी सूखी खांसी, और दमा की बीमारी ठीक हो जाती है। इसके अलावा, अलसी के बीजों को भूनकर शहद, या मिश्री के साथ चाटें। इससे खांसी, और दमा का इलाज होता है। अलसी के औषधीय गुण से खांसी को ठीक किया जा सकता है। आप तीसी के भूने बीज से 2-3 ग्राम चूर्ण बना लें। इसमें मधु, या मिश्री मिलाकर सुबह और शाम सेवन करें। इससे खांसी ठीक हो जाती है।

वात-कफ दोष में अलसी के फायदे: अलसी के औषधीय गुण का फायदा वात-कफ विकार में भी ले सकते हैं। 50 ग्राम भूनी अलसी के चूर्ण में बराबर-बराबर मात्रा में मिश्री, और एक चैथाई भाग मरिच मिला लें। इसे 3-5 ग्राम की मात्रा में सुबह, मधु के साथ सेवन करने से वात-कफ दोष विकार ठीक होते हैं।

थायराइड में अलसी का उपयोग लाभदायक: आप थायराइड का उपचार करने के लिए भी अलसी का प्रयोग कर सकते हैं। अलसी के लाभ का पूरा फायदा उठाने के लिए बराबर-बराबर मात्रा में अलसी के बीज, शमी, सरसों, सहिजन के बीज, जपा के फूल, तथा मूली की बीज को छाछ से पीसकर पेस्ट बना लें। इस पेस्ट को गले की गांठों आदि पर लेप करने से थायराइड में लाभ होता है।

घाव सुखाने के लिए अलसी का उपयोग फायदेमंद: अलसी के चूर्ण को दूध, और पानी में मिला लें। इसमें थोड़ी हल्दी का चूर्ण डालकर खूब पका लें। यह गाढ़ा हो जाएगा। इस गर्म गाढ़े औषधि को आप जहां तक सहन कर सकें, गर्म-गर्म ही गांठ पर लेप करें। ऊपर से पान का पत्ता रख कर बांध दें। इस प्रकार कुल 7 बार बांधने से घाव पककर फूट जाता है। घाव की जलन, टीस, पीड़ा आदि दूर होती है। बड़े-बड़े फोड़े भी इस उपाय से पककर फूट जाते हैं। यह लाभ कई दिनों तक लगातार बांधने से होता है। इसी तरह अलसी को पानी में पीसकर, उसमें थोड़ा जौ का सत्तू, तथा खट्टी दही मिला लें। इसे फोड़े पर लेप करने से भी फोड़ा पक जाता है। वात रोग के कारण होने वाले फोड़े में अगर जलन, और दर्द हो रहा हो, तो तिल और तीसी को भून लें। इसे गाय के दूध में उबाल लें। ठंडा होने पर इसी दूध में पीसकर फोड़े पर लेप करें। इससे लाभ होता है। पके फोड़े के दर्द को ठीक करने के लिए यह उपाय भी कर सकते हैं। बराबर-बराबर मात्रा में अलसी, गुग्गुल, थूहर का दूध लें। इसके साथ ही मुर्गा, तथा कबूतर की बीट, पलाशक्षार, स्वर्णक्षीरी, तथा मुकूलक का पेस्ट लें। इनका लेप घाव पर करें। इससे घाव ठीक हो जाता है। घाव को पकाने के लिए तिल की बीज, अलसी की बीज, खट्टा दही, सुगाबीज, कूठ, तथा सेंधा नमक को पीसकर चूर्ण चूर्ण बना लें। इसे घाव पर लेप करने से घाव ठीक हो जाता है।

आग से जलने पर अलसी का प्रयोग: शुद्ध अलसी का तेल, और चूने का निथरा हुआ जल को बराबर-बराबर मात्रा में लेकर अच्छी प्रकार मिला लें। यह सफेद मलहम जैसा हो जाता है। इसको आग से जले हुए स्थान पर लगाएं। इससे तुरंत आग से जले हुए घाव का दर्द ठीक हो जाता है। रोज 1 या दो बार लेप करते रहने से घाव ठीक होता है।

कामोत्तेजना बढ़ाने और वीर्य (धातु रोग) रोग में अलसी से लाभ: कई लोगों की शिकायत होती है कि उनकी सेक्स करने की ताकत में कमी आ गई है। इसी तरह अनेक लोग वीर्य, या धातु रोग से पीड़ित रहते हैं। इन सभी परेशानियों को तीसी, या अलसी का प्रयोग ठीक कर सकता है। काली मिर्च और शहद के साथ अलसी का सेवन करें। इससे सेक्स करने की ताकत बढ़ती है, और वीर्य दोष दूर होता है।

मूत्र विकार (पेशाब संबंधित रोग) में अलसी के फायदे: पेशाब संबंधित रोगों को ठीक करने के लिए भी अलसी का इस्तेमाल करना बहुत अच्छा फायदा देता है। इसके लिए 50 ग्राम अलसी, 3 ग्राम मुलेठी को कूट लें। इसे 250 मिली पानी के साथ मिट्टी के बर्तन में हल्की आंच पर पकाएं। जब 50 मिली पानी रह जाए तो, इसे छानकर 2 ग्राम कलमी शोरा मिला लें। इसे 2 घंटे के अंतर से 20-20 मिली की मात्रा में पिएं। इससे मूत्र रोग जैसे, पेशाब करने में दिक्कत, पेशाब की जलन, पेशाब में खून आना, पेशाब में मवाद आने संबंधी दिक्कतें दूर हो जाती हैं। इसके अलावा 10-12 ग्राम अलसी की बीज के चूर्ण में 5-6 ग्राम मिश्री मिला लें। इसे 3-3 घंटे पर सेवन करने से पेशाब संबंधित बीमारी ठीक होती है।

तिल्ली या प्लीहा के बढ़ने पर अलसी के बीज के उपयोग से लाभ

प्लीहा के बढ़ने पर अलसी के बीज (2-5 ग्राम) को भूनकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में मधु मिलाकर सेवन करें। इससे प्लीहा की वृद्धि नहीं होगी।

बवासीर में अलसी अलसी के तेल के सेवन से फायदा: बवासीर के लिए 5-7 मिली अलसी के तेल का सेवन करें। इससे कब्ज ठीक होता है, और बवासीर में लाभ होता है।

टीबी में अलसी के बीजों के सेवन से लाभ: टीबी के लिए 25 ग्राम अलसी के बीजों को पीसकर, रात भर ठंडे पानी में भिगोकर रखें। इस पानी को सुबह कुछ गर्म करें, और इसमें नींबू का रस मिलाकर, पिएं। इससे टी.बी. के रोगी को बहुत लाभ होता है।

जोड़ों के दर्द से राहत पाने के लिए अलसी का इस्तेमाल: जोड़ों के दर्द या गठिया में भी अलसी जड़ी-बूटी बहुत काम करता है। अलसी तेल या अलसी की बीजों को इसबगोल के साथ पीसकर लगाने से जोड़ों के दर्द में लाभ होता है। इसी तरह अलसी के तेल को गर्म कर, शुंठी का चूर्ण मिला लें। इससे मालिश करने से कमर दर्द, तथा गठिया में लाभ होता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण व पोषक तत्व कमी के लक्षण एवं उपचार

योगिता बाली और मीनू
कृषि विज्ञान केन्द्र, भिवानी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गाँव में रहती है और मुख्यता कृषि पर निर्भर है अगर आकड़ों पर ध्यान दिया जाये तो राज्य में गेहू का उत्पादन 6 गुना बढ़ा है पर इसके साथ साथ कृषि सम्बन्धी गंभीर समस्याऐ भी उत्पन हो गई है।

गेहूँ रबी की एक मुख्य फसल है इसमे लगातार नई किस्मे आने से पैदावार प्रति एकड़ तो बढ़ी है पर साथ ही खरपरवार की समस्या भी अधिक बढ़ गई है। लगातार धान गेहूँ फसल चक्र वाले क्षेत्रों में गुल्ली डंडा कनकी एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है। इसके अलावा जंगली मटर, कंडाई, हिरनखुरी, जंगली पालक आदि खरपतवारों का नियंत्रण न किया गया तो पैदावार में भरी गिरावट आंकी जा सकती है।

गेहूँ के मुख्य खरपतवार

घास जाति के खरपतवार कनकी या गुल्ली डंडा, जंगली जई

- **चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार:** बाथू, जंगली पालक, मेथा, हिरनखुरी, कृष्णनील, चटरी मटरी, प्याजी, गजरी व कंडाई आदि

खरपतवार नियंत्रण: गेहूँ की फसलों में खरपतवार नियंत्रण निम्न तरीको से किया जा सकता है

- **निराई गुड़ाई दोबारा:** खरपतवार नियंत्रण के लिए पहले व दुसरे पानी के बाद एक से दो गुड़ाई करे यदि संभव हो तो 2 खरपतवारनाशको के प्रयोग दोबारा भी खरपतवारों का नियंत्रण आसानी से किया जा सकता है।

गेहूँ में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारो के नियंत्रण हेतु प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशक:-

- 2-4 डी सोडियम साल्ट, 250 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से 35-45 दिन के बाद छिड़काव करें
- 2,4 दूडी एस्टर, 300 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से 35 -45 दिन बाद छिड़काव करें
- एलग्रिप 8 ग्राम, 200-250 लीटर प्रति एकड़ , फ्लैट फेन नोजल का इस्तेमाल कर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है
- जंगली पालक, हिरनखुरी के नियंत्रण हेतु एफ्फिनिटी 20 ग्राम प्रति एकड़ की दर से 200-250 लीटर पानी का घोल तैयार कर बिजाई के 30 -35 दिन बाद छिड़काव करें
- गेहूँ में मिश्रित खरपतवारों के नियंत्रण के लिए एटलांटिस 160 ग्राम प्रति एकड़ की दर से 200-250 लीटर पानी में मिलकर छिड़काव करें परन्तु ऐसे खेत में ज्वार व मक्के की फसल ना ले गेहूँ की पैदावर पर ना केवल खरपतवारो का विपरीत असर दिखाई देता है अपितु पोषक तत्वों की कमी के कारण भी पौधों की बढ़वार व उसके पैदावार पर गहरा असर पड़ता है वैसे तो ये छोटे पोषक तत्व कम मात्रा में ही आवश्यक होते हैं परंतु पौधे की विभिन्न अवस्थाओं की बढ़वार में जरुरी एवं सहायक भी होती है जैसे कि-

- गेहूँ में बालियां बनते समय पत्तियों पर भूरे पीले रंग की धारियां बनाना, बालिया का मुड़ी-तुड़ी होकर निकलना, मैगनीज के लक्षण को दर्शाता है तो 1 किलोग्राम मैगनीज सल्फेट को 200 लीटर पानी प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।
- लोहे की कमी के कारण नई पत्तियों पर पीली धारी बन जाती है इसके उपचार के लिए फैरस सल्फेट का छिड़काव करने से लाभ होता है।
- यदि पत्तों पर हल्का रंग या अनियमत धब्बे आ जाते है पत्तों की नोका वाला सिरा हरा हो और बाकि पत्ता पीला पड़ जाए तो इसका अर्थ है कि पौधे में जस्ते की कमी के लक्षण है यदि खड़ी फसल में ये कमी नजर आये तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 2.5 प्रतिशत यूरिया का घोल बनाकर 15-15 दिन के अंतर पर दो छिड़काव करें।

विशेष सावधानियां

- गेहूँ की बिजाई से पहले मिट्टी की जांच अवश्य करवाएं एवं साइल हेल्थ कार्ड के आधार पर खाद उर्वरक का प्रयोग करें
- बीज उपचारित करके ही बिजाई करें
- जिन क्षेत्रों में कनकी में प्रतिरोधकता की समस्या आ गई है वहां आईसोप्रोटूरान का प्रयोग न करे
- खरपतवारनाशकों के छिड़काव के लिए सदैव फ्लैट फैन नोजल का इस्तेमाल करें
- जब हवा बंद हो, तभी छिड़काव करें
- यदि चना, सरसों या चौड़ी पत्ती वाली फसल ली गई है। वहां 2-4 डी का प्रयोग ना करें नहीं तो विकलांगता आ जाएगी
- हल्की मिट्टी वाले क्षेत्र में नाइट्रोजन की मात्रा 2 बार की बजाय 3 बार में डालें
- सूत्रकर्मी प्रभावित क्षेत्रों में राज.एम.आर. किस्म की बिजाई करें व प्रति एकड़ 13 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान बिजाई के समय प्रयोग करे
- गेहूँ की अनुमोदित किस्मों व प्रमाणित बीजों की ही बुवाई करें

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

हरियाणा राज्य ने दी कृषि विकास के आयामों को नई दिशा

डॉ. विजय कुमार
जिला विस्तार विशेषज्ञ (फार्म प्रबंधन)
कृषि विज्ञान केन्द्र, करनाल (हरियाणा)

रवीना बिश्नोई (छात्रा)
एम.एस.सी. (कृषि अर्थशास्त्र), सीसीएस
एच.ए.यू. हिसार (हरियाणा)

डॉ. सोनिका (सहायक प्रोफेसर)
(पौध प्रजनन) कृषि महाविद्यालय कौल

डॉ. महा सिंह (कोर्डिनेटर)
सीसीएस एच.ए.यू. कृषि विज्ञान केन्द्र करनाल

हरियाणा राज्य 1 नवंबर 1966 को पंजाब से पृथक होकर एक अलग प्रांत बना। उस समय नई तकनीकों के अभाव के कारण कृषि उत्पादों का उत्पादन आज की अपेक्षा बहुत कम था। 1970 में चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इससे हरियाणा की कृषि व्यवस्था व उत्पादन पर बहुत फायदेमंद प्रभाव पड़ा।

विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने उत्पादन, अनुसंधान व विस्तार के क्षेत्रों में अथक प्रयास करके नई-नई तकनीकों का विकास किया और बहुत लाभकारी एंव अच्छा उत्पादन देने वाली अनेक फसलों की किस्में तैयार की। नई-नई तकनीक को विभिन्न प्रसार माध्यमों द्वारा किसानों तक पहुंचाया गया, जिसके परिणाम स्वरुप विभिन्न फसलों के उत्पादन में कई गुना बढ़ोतरी हुई है और अब हरियाणा के गोदाम खाद्यान्न से लबालब भरे हैं। राज्य के किसानों, वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम से ही यह संभव हुआ है। सिंचाई प्रणालियों के विस्तार के साथ ही राज्य का कृषि बहुत तेजी से बदल गया है।

1966-67 में, बाजरा राज्य की सबसे महत्वपूर्ण खरीफ फसल थी, जो मुख्य खरीफ फसलों के तहत कुल क्षेत्र का लगभग 54 प्रतिशत थी, जबकि चावल केवल 12 प्रतिशत की तुलना में बोया जाता था । इसी प्रकार, चना ने रबी के मौसम में रबी की प्रमुख फसलों के अंतर्गत 48 प्रतिशत क्षेत्र पर कब्जा कर लिया, इसके बाद गेहूं (33 प्रतिशत) स्थिति में भारी बदलाव आया है। धान अब खरीफ में खेत की 49 प्रतिशत भूमि पर बोया जाता है। गेहूँ वर्तमान में रबी मौसम में सबसे अधिक भूमि (79 प्रतिशत) लेता है, जिससे ग्राम, जौ और अन्य फसलों के लिए उपलब्ध भूमि की मात्रा कम हो जाती है। गेहूँ-चावल फसल विधि के तहत लगभग 58 प्रतिशत भूमि काम में ली गई है।

हरियाणा कृषि को कृषि-व्यवसाय, रोजगार सृजन और आर्थिक विकास के तेजी से विकास के साथ ग्रामीण-शहरी सातत्य में कार्य करने के लिए तेजी से विविधता लानी है। इसलिए किसानों को उन्नत उत्पादन के लिए नए नवाचारों को सर्वोत्तम तकनीक और कृषि के विविधीकरण को अपनाना होगा।

नई पहल

- सीसीएसएयू में जीन बैंक
- राज्य बीज मिशन
- हाइब्रिड बीज उत्पादन सेल
- छोटे खेतों के मशीनीकरण पर राज्य मिशन
- उत्पादों का प्रजनन

जब हरियाणा अलग प्रांत बना तब खाद्यान्न का उत्पादन 26 लाख टन से भी कम था जो 2018-19 मैं लगभग 7.3 गुणा बढ़कर 181.44 लाख टन हो गया। हरियाणा खाद्यान्न उत्पादन में न केवल आत्मनिर्भर राज्य बन गया है बल्कि केंद्रीय पूल में योगदान करने वाला प्रमुख राज्य है। केंद्रीय पूल में हरियाणा का योगदान 40-50 लाख टन है।

हरियाणा व समस्त भारत में गेहूँ व चावल की औसत उपज

(हेक्टेयर प्रति किलो ग्राम)

	हरियाणा		भारत	
वर्ष	गेहूँ	चावल	गेहूँ	चावल
1	2	3	4	5
1990-91	3479	2775	2281	1740
1995-96	3697	2225	2483	1797
2000-01	4106	2557	2708	1901
2005-06	3844	3051	2619	2102
2006-07	4232	3239	2708	2131
2007-08	4158	3361	2802	2202
2008-09	4614	2726	2891	2186
2009-10	4215	3008	2839	2125
2010-11	4624	2788	2989	2239
2011-12	5183	3044	----	----
2012-13	4452	3268	3177	2461
2013-14	4722	3248	3145	2416
2014-15	3981	3113	2750	2319
2015-16	4407	3061	3034	2400
2016-17	4828	3213	3200	2494
2017-18	4847	3422	3368	2576
2018-19	4925	3121	3533	2638

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण हरियाणा 2018-19

हरियाणा के कृषि क्षेत्र के विकास में योगदान का मुख्य विवरण इस प्रकार है

फसलों का उत्पादन

हरियाणा के अस्तित्व में आने के बाद से विभिन्न फसलों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रफल में उत्पादन में विशेष बढ़ोतरी दर्ज की गई है। गेहूँ के उत्पादन में 12 गुणा, धान में 20 गुणा तिलहन के उत्पादन में 14 गुणा और कपास के उत्पादन में 7 गुणा की बढ़त हुई है। गेहूं के उत्पादकता 1966 में 1425 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी उसके 2018-19 में 4925 बढ़कर किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गई। धान में 1161 से 3121, सरसों में 404 से 2018 और कपास में उत्पादकता 283 से बढ़कर 483 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गई। कुछ फसलों (जैसे बाजरा चना जौ आदि) का बुवाई क्षेत्रफल बहुत अधिक घटने के कारण उनके उत्पादन में कमी आई है हालांकि इन फसलों की उत्पादकता में भी बढ़ोतरी दर्ज की गई है।

फसलों के उत्पादन में वृद्धि निम्न उपादानो के उपयोग से संभव हुई है

उन्नतशील किस्में

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय ने विभिन्न फसलों की लगभग 250 उन्नतशील किस्मों का विकास किया है। इन किस्मों के उगाने से खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

उन्नत उत्पादन तकनीक

प्रदेश के किसानों ने उन्नत कृषि उत्पादन तकनीक जैसे समय-समय पर बिजाई, नई मशीनों से निराई व गुड़ाई, रसायनिक व देशी खादो का उचित इस्तेमाल, पानी का संतुलित प्रयोग, खरपतवारनाशियों का प्रयोग व पौध संरक्षण के नवीनतम उपाय अपनाकर फसलों का उत्पादन बढ़ाने में विशेष योगदान दिया है।

सिंचित क्षेत्रफल में वृद्धि

हरियाणा में सिंचाई क्षेत्रफल 1966-67 में कुल 47.8% था जो 1990-91 में बढ़कर 72.7% और 2018-19 में 91.1 प्रतिशत हो गया।

उर्वरक उपयोग

फसल उत्पादन में वृद्धि में रसायनिक खाद का विशेष योगदान रहा है हरियाणा में 1966-67 में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटेशियम का प्रयोग क्रमशः 12626, 574 व 147 टन हुआ जबकि अब 2018-19 इनका उपयोग बढ़कर क्रमशः 583618,147909 व 13419 टन हुआ। वर्ष 1966 में केवल 4803 ट्रैक्टर उपलब्ध थे जबकि 2018-19 में इनकी संख्या 3,00,792 पहुंच गई। बिजली खपत व ट्रैक्टर संख्या मैं वृद्धि से फसलों के उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। इन सभी उपादानो के समुचित प्रयोग,देखभाल व किसानों की कड़ी मेहनत व अथक प्रयास से हरियाणा ने केवल खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बना बल्कि केंद्रीय भंडार योगदान में भी पंजाब के साथ कंधे से कंधा मिला कर खड़ा है।

फल ,फूल व सब्जी उत्पादन

हरियाणा ने फल फूल व सब्जी के क्षेत्रफल व उत्पादन में भी अच्छी छलांग लगाई है।

फल: 1966-67 में फलों के अधीन कुल 7865 हेक्टेयर क्षेत्रफल व उत्पादन 27527 टन था, जो कि 2019-20 में बढ़कर 67720 हेक्टेयर व उत्पादन 1319466 टन हो गया है।

सब्जियां: सब्जियों के अधीन 1966-67 में कुल 11305 हेक्टेयर भूमि थी जो 2019-20 में बढ़कर 397295 हेक्टेयर हो गई है और उत्पादन 1लाख35 हजार टन से बढ़कर 74.27 लाख टन हो गया।

फूल: राज्य में 1966-67 में फूलों के अधीन क्षेत्र बिल्कुल भी नहीं था जो 2019-20में 3478 हे. हो गया वो उत्पादन 42990 टन हो गया। फल, फूल व सब्जियों के उत्पादन में बढ़ोतरी में अच्छी किस्मों, पौध संरक्षण, उचित देखभाल, खाद व पानी आदि की विशेष भूमिका रही है।

पशुधन विकास

हरियाणा की मुर्रा नस्ल की भैंस और हरियाणा नस्ल की गाय व सांड विश्व में सर्वोत्तम माने जाते हैं चीन ने मुर्रा भैंस को आयात करने में अपनी रुचि प्रकट की है हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा इन की नस्लों के सुधार व सुरक्षा हेतु अनेकों प्रयास किए जाते हैं जिसकी जानकारी विश्वविद्यालय में कृषि विज्ञान केंद्र में उपलब्ध करवाई जाती है हरियाणा में 1966 से 2012 तक भैसों की संख्या 19. 350 लाख से बढ़कर 60-85 लाख हो गई है भैसों की संख्या में बढ़ोतरी के कारण प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध उपलब्धता 1966-67 में 352 ग्राम से बढ़कर 2019-20 में 1142 ग्राम हो गई है इसके अतिरिक्त गाय व भैसों में प्रजनन की समस्याओ व दूध उत्पादन की बढ़ोतरी के सफल निदान के तरीके ढूंढ लिए गए हैं जिससे प्रदेश के किसान लाभ ले रहे हैं।

हरियाणा मे मुख्य फसलो का कृषि उत्पादन (000टन)

वर्ष	गेहूँ	चावल	कुल खाद्यन	गन्ना	कपास (000 गांठे)	तिलहनी
1966-67	1059	223	2592	5100	288	92
1970-71	2342	460	4771	7070	373	99
1980-81	3490	1259	6036	4600	643	188
1990-91	6436	1834	9559	7800	1155	638
1995-96	9669	2695	13295	8170	1383	563
2000-01	9043	3010	13057	8230	2075	836
2005-06	8853	3194	13006	8310	1502	830
2006-07	10059	3375	14763	9650	1805	837
2007-08	10232	3606	15294	8850	1882	620
2008-09	11360	3298	16166	5130	1858	914
2009-10	10488	3628	15346	5700	1918	862
2010-11	11630	3472	16629	6040	1747	965
2011-12	13069	3759	18321	6950	2621	755
2012-13	11117	3941	16354	7440	2378	970
2013-14	11800	3998	17118	7730	2025	899
2014-15	10354	4006	15238	7100	1943	734
2015-16	11351	4144	16333	6990	995	851
2016-17	12384	4453	18094	8220	2041	989
2017-18	12263	4480	18030	9630	1626	1134
2018-19	12573	4517	18141	8500	2033	1311

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण हरियाणा 2018-19

हरियाणा मे मुख्य फसलो के अधीन क्षेत्र (हेक्टेयर मे)

वर्ष	गेहूँ	चावल	कुल खाद्यान्न	गन्ना	कपास	तिलहनी	कुल बोया क्षेत्र
1966-67	743	192	3520	150	183	212	4599
1970-71	1129	268	3868	156	193	143	4957
1980-81	1479	484	3963	113	316	311	5462
1990-91	1850	661	4079	148	491	489	5919
1995-96	2355	1054	4340	143	555	414	6115
2000-01	2317	1024	4218	133	621	715	6425
2005-06	2303	1047	4311	129	584	736	5609
2006-07	2377	1042	4348	141	527	622	5955
2007-08	2461	1073	4478	140	482	512	5953
2008-09	2462	1210	4609	90	455	529	6053
2009-10	2488	1206	4541	79	505	523	5913
2010-11	2515	1245	4714	84	493	521	6499
2011-12	2522	1235	4574	94	601	545	6489
2012-13	2496	1206	4302	100	592	567	6376
2013-14	2499	1228	4356	101	567	548	6471
2014-15	2628	1277	4481	95	647	495	6502
2015-16	2576	1354	4449	93	615	526	6502
2016-17	2564	1385	4562	101	57	523	6502
2017-18	2530	1422	4532	114	668	559	6548
2018-19	2553	1447	4557	108	483	626	6490

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण हरियाणा 2018-19

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई को बनाए रोजगार का साधन

डॉ. मोना वर्मा, डॉ. नीलम सैनी

इन्दिरा चक्रवर्ती गृह विज्ञान महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार- 125004

प्राचीन समय में कढ़ाई उद्योग केवल घरों में निम्न स्तर पर किया जाता था परन्तु समय के साथ-साथ इसकी उत्कृष्ठता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इस उद्योग ने एक विस्तृत रूप ले लिया।वर्तमान समय में यह लघु उद्योग के रूप में किया जाता है जो कि बहुत सारे लोगों को रोजगार के अवसर भी प्रदान करता है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि इस उद्योग में महिलाओं की भूमिका ज्यादा रहती है।

इस दृष्टिकोण से हम कह सकते है कि कढ़ाई उद्योग महिलाओं को केवल रोजगार ही नही प्रदान करता अपितु उनका आर्थिक एवं सामाजिक स्तर भी सुदृढ़ करता है। पुराने समय में अधिकतर महिलायें दोपहर का खाली समय प्रयोग कर कढ़ाई के द्वारा अपनी कलात्मक रूचि को व्यक्त करके विभिन्न प्रकार के उत्पाद तैयार करती थी। धीरे-धीरे बदलते समय के साथ घरेलू स्तर पर प्रयोग होने वाली पारम्परिक कढ़ाई जैसे पंजाब की फुलकारी, बंगाल की कान्था, लखनऊ की चिकनकारी, कश्मीर का कशीदाकारी, कर्नाटक की कसूती तथा बिहार के ऐपलीक के काम ने एक बहुत बड़े व्यवसाय का रूप ले लिया। देखते-देखते इन विभिन्न कढ़ाई द्वारा निर्मित उत्पादों की मांग केवल भारत मे ही नही बड़ी बल्कि विश्व स्तर पर भी, भारत में हस्त निर्मित कढ़ाई को पहचान मिली। फैशन की इस दुनिया में तो यह कला वस्त्र परिसज्जा में अपना वरिष्ठ स्थान रखती है। हाथ की कढ़ाई के साथ-साथ मशीन की कढ़ाई का महत्व भी बढ़ गया है। इस कला से जुड़े लोग विभिन्न माध्यमों का उपयोग करके इसे एक नये रूप में पेश कर रहे हैं।

पहनने वाले वस्त्रों के अतिरिक्त घरों में प्रयोग होने वाले तकिए, चद्दरें, मेजपोश, कुशनकवर, रजाईकवर या पर्दों आदि पर भी कढ़ाई का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा हैं। इस परम्परागत कढ़ाई के काम को जीवित रखने एवं इससे जुड़े कारीगरों को रोजगार के नये साधन उपलब्ध कराने के साथ ही भारत सरकार, कढ़ाई से जुड़े लोगों को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए निरन्तर प्रतिबध है। सरकार इस क्षेत्र से जुड़े विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनायें समय-2 पर चलती रहती है। जिससे इसका सीधा मुनाफा निम्न स्तर पर जुड़े लोगों को सकें। इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के अवार्ड भी सरकार द्वारा घोषित किये जाते है। जिससे स्थानीय कारीगरों को पहचान भी मिल सकें। फैशन के इस युग में परिधान को सुन्दर बनाने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है। जिसमे सेएक विधि है कढ़ाई कला। कढ़ाई को उत्पादन (बनाने की विधि) हम दो वर्गो में विभाजित कर सकते हैं।

1. हस्तनिर्मित कढ़ाई 2. कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई

हस्तनिर्मित कढ़ाई को प्रायः निम्न स्तर पर लकड़ी के फ्रेम या अडे की सहायता से हाथों द्वारा बनाया जाता है। जिसमें काफी समय लगता है और स्कील (हुनर) की आवश्यकता भी ज्यादा होती है। ताकि हस्त निर्मित कढ़ाई द्वारा बनाये गये उत्पाद की सुन्दरता बनी रहें। लेकिन कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई द्वारा हम कम समय और मेहनत से अधिक उत्पाद बना सकते है। और जो बाजार में कम कीमत पर उपलब्ध होती है। इसमें साथ ही कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई करने में लागत भी कम आती है। वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार की कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई मशीन उपलब्ध है। जिसके द्वारा हम आसानी से कढ़ाई कर सकते हैं।

आइये जानते है कि हमें कम्प्यूटरीकृत मशीन को चलाने के लिए किन-किन बातों का ध्यान करना चाहिए। और सामान्य कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई मशीन को कैसे चलाया जाता है।

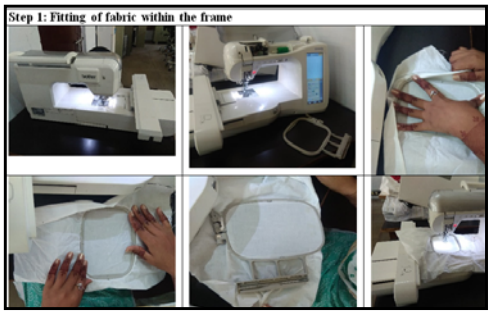

स्टेप-1

- स्बसे पहले मशीन का कवर हटाते हैं। उसके बाद मशीन को साफ करेंगे और मशीन के चलाने के लिए प्लग/स्वीच ऑन करते हैं। ■ मशीन चलाने से पहले हम मशीन की ऑरम को शैट करते है। और फ्रेम जिसमें कढ़ाई के लिए कपड़ा लगाना है। उसे पहले तैयार करते हैं। ■ कपड़े को फ्रेम में इस तरह लगाते है। जिससे कपड़ा टाइट/कसा रहे जिससे कढ़ाई अच्छी तरह से हो सके। फ्रेम लगाने के लिए, फ्रेम को ढीला करेंगें। फ्रेम के एक हिस्से को कपड़े के नीचे रखते है व दूसरे हिस्से को कपड़े के ऊपर रखेंगें। कपड़े में कोई सिलवट/सिकड़न ना हो यह ध्यान रखे। अगर कपड़े में सिलवट हो तो प्रेस करने के बाद कपड़े को फ्रेम में लगाये। फ्रेम को इस तरह लगाते है। ना ही ज्यादा ढीला हो न ही ज्यादा कसा हुआ। जिस जगह कढ़ाई करनी है। उतनी जगह पर पेस्टिंग को कपड़े की उल्टी और लगायें। बिना पेंस्टिंग के कपड़ा न लगाएँ।
- अब फ्रेम मशीन में लगाने के लिए तैयार है। जहाँ मशीन में फ्रेम लगाना है। वहाँ पर एक बटन दिया है। जिसको पहले नीचे करें एवं फ्रेम को रखे और आगे की तरफ धकेल दें। और फिर उस बटन को लॉक कर दें।

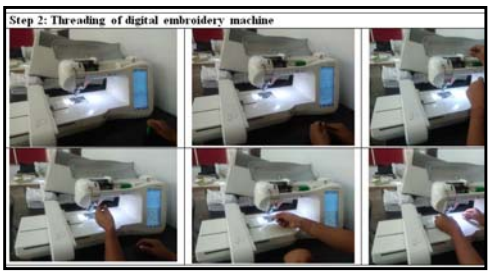

स्टेप-2

- सबसे पहले हम धागे की रील को मशीन के ऊपर दिये गये स्पूल पिन के लगा देगें। और स्पूल कैप की मदद से उसमें फिक्स कर देगें। ■ रील में से धागे को मशीन में दिये गये निर्देशों द्वारा मशीन की सुई में डालते है। फिर एक बार किसी रफ कपड़े को प्रैसरफुट की नीचे रखते है। और अब मशीन को स्टार्ट करते है।
- मशीन को स्टार्ट करते ही मशीन का क्पहपजंस क्पेचसंल ऑन हो जायेगा। क्पहपजंस क्पेचसंल (डिजिटल डिसप्ले) में हम अपनी मनपंसद डिजाईन का चुनाव कर सकते हैं। कम्प्यूटरीकृत मशीन की स्पइतंतल में पहले से ही बहुत डिजाईन दिये गये होते है। हम उन डिजाईनो में से किसी भी डिजाईन का चुनाव कर सकते है या फिर कोई दो या तीन डिजाईन को मिलकर अपनी इच्छा अनुसार नया डिजाईन भी बना सकते है। डिजिटल डिसप्ले की मदद से हम डिजाईन का आकार, टाँकों का चुनाव, डिजाईन का प्लेसमेंट इत्यादि का चुनाव कर सकते है। ■ फिर चुनी हुई डिजाईन को फिक्स कर के कढ़ाई करने के लिए बटन ऑन कर देते है। एक बार निर्देश देने के बाद मशीन उस डिजाईन को पूरा बनारक अपने आप रूक जाती है। इससे हमें मशीन को बार बार कंमाडन हीं देनी पड़ती है। एक बार रफ कपड़े पर डिजाईन बनाकर देख लें। जब संतुष्ट हो उसके बाद ही नये कपड़े पर कढ़ाई करें। डिजाईन कपड़े पर पूरा हो जाने के बाद कपड़े को फ्रेम से निकाललें। और फिर मशीन को बंद करके कवर से ढक दें।

स्टेप-3

- डिजिटल डिस्पले में कमांड निर्देश देना एवं कपड़े कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई करना।

इस प्रकार कम्पयूटरीकृत कढ़ाई द्वारा आप घर में प्रयोग में लाये जाने वाले विभिन्न उत्पाद जैसे कुशन कवर, बैडशीट, सोफाकवर, रजाईकवर, तकियाकवर, कुर्ती, पैजामा, फ्रॉक आदि तैयार कर सकते हैं। आज कल फैशन डिजाइन सभी पारंम्परिक कढ़ाई की डिजाईनों को कम्प्यूटरीकृत कढ़ाई के माध्यम से विभिन्न परिधानों में प्रयोग कर रहें। जो अपने देश में ही नहीं अपितु दुनिया भर में आर्कषण का केन्द्र बन रहें। अब हमारे देश के बड़े-बड़े एक्सपोर्ट हाऊस भी कढ़ाई द्वारा तैयार किये गये परिधानों को निर्यात करके अच्छा खासा मुनाफा कमा रहें है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

बीज उत्पादन में परागणकर्त्ता कीटों का योगदान

डॉ. सीमा ठाकुर, डॉ. राजेश ठाकुर
देविंदर कुमार मेहता
कृषि विज्ञान केन्द्र सोलन, हिमाचल प्रदेश

बीज एक युग्मनज है जो कि भ्रूण, भोजन संरक्षित सामग्री और रक्षक कवच से बना होता है। बीज संवर्धन व परिपक्वता में परागण और युग्मनज की बीज रूप में वृद्धि आदि महत्वपूर्ण घटनायें हैं। परागण परागकणों को एक फूल के पुंकेसर (नर भाग) से फूल के स्त्री केसर (मादा भाग) तक पहुंचाने की क्रिया है।

फल एवं बीज बनने के लिए यह प्रक्रिया बहुत आवश्यक है। जब परागकण एक फूल के पुंकेसर से उसी फूल के स्त्रीकेसर तक स्थानांतरित होते हैं तो इस क्रिया को स्वयं परागण कहते हैं। यदि परागकण एक फूल के पुंकेसर से दूसरे पौधे या उसी पौधे के अलग फूल के स्त्रीकेसर तक स्थानांतरित होते हैं तो इस क्रिया को परपरागण कहते हैं।

परागकणों के प्रसार में विभिन्न बाहरी स्त्रोत/कारक सहायक होते हैं। ये बाहरी कारक तेज हवा, पानी और कीट हो सकते हैं। कुछ एक पौधें में परागकणों का स्थानांतरण कुछ हद तक या पूरी तरह से बाहरी कारक जैसे कि तेज हवा या कीटों पर निर्भर होता है। बीज का बनना या बीज की बढ़ौतरी कीटों द्वारा पराग स्थानांतरण पर निर्भर होती है। स्वयं परागण या तो स्वयं हो जाता है या कीटों द्वारा पराग को उसी फूल के नर भाग से मादा भाग तक पहुंचाने पर निर्भर होता है। कीट परागकणों को एक फूल के पुंकेसर से एक भिन्न पौधे के फूल के मादा भाग तक ले जा सकते हैं और यह पर-परागण क्रिया उर्वरता के लिए बहुत आवश्यक है। खासकर स्वयं परागण न होने वाली फसलों में या बीज व फल की गुणवत्ता व बीज संख्या बढ़ाने के लिए।

परागण किन फसलों में आवश्यक है

एक अनुमान के अनुसार लगभग 50 प्रतिशत से अधिक पौधें की किस्मों में बीजों द्वारा ही प्रवर्ध्न संभव है तथा बीज बनने के लिए परागण क्रिया आवश्यक है। कुछ फसलों में परागण स्वयं हो जाता है। जैसे गेहूँ, मक्का, चावल, बैंगन, भिण्डी आदि। परन्तु फूलगोभी, बंदगोभी, चिकारी, ककड़ी ककड़री प्रजाति की अन्य सब्जियां, सरसों प्रजाति, नीम्बू प्रजाति आदि फसलों में फलों और बीन उत्पादन हेतु परागण न होने के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं:

- नर और मादा भागों का अलग-अलग समय पर व्यस्क होना या पकना।
- कुछ फसलों के फूलों की रचना इस प्रकार होती है कि परागकणों के प्रसार के लिए बाह्य कारक का सहारा आवश्यक हो जाता है।

पर-परागण में मुख्य बाहरीकारक-एक कीट

परागण क्रिया में कीट बहुत सहायक होते हैं। कीट जब फसलों के फूलों से अपनी खुराक पाने हेतु पराग और मधुरस चूसते हैं तो पराग इनके शरीर के बालों पर लग जाता है और जब यह दूसरे फूल पर जाते हैं तो पराग वहाँ गिर जाता है। मधुरस फूल के मादा भाग पर होता है और इसे प्राप्त करते समय परागकण मादा भाग पर छूट जाते हैं और परागण हो जाता है। कुछ कीट जैसे कि तितली, भृंग, सिरफिड मक्खी, पालतू मधुमक्खी, जंगली मधुमक्खी, बलो मक्खियां व भंवरे परागण क्रिया में अपना योगदान देते हैं। इनके शरीर की खास बनावट के हिसाब से यह मुख्य परागणकर्ता कीट हैं।

कीटों द्वारा परागण हेतु फूलों के विशेष गुण

- फसलों के फूलों का आकार बड़ा होना व अच्छे रंगीन होना। फूलों के विभिन्न रंग प्रायः खास प्रकार के कीटों को आकर्षित करते हैं। तितलियां (मौथ) शाम के समय या फिर रात को परागण क्रिया करती हैं, वे सफेद और हलके पीले फूलों पर बैठती हैं। मधुमक्खियां नीले, जामुनी व पीले फूलों पर ज्यादा आती हैं। तितलियां व भृंग लाल रंग के फूलों से आकर्षित होती है।
- अगर फूल छोटे आकार के हैं तो वे झुंड में हों।
- फूल ज्यादातर अच्छे सुंगध्ति होते हैं जो कि कीटों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।
- फूल कीटों के लिये पराग व मधुरस पैदा करते हैं।
- मधुरस की ग्रथियां ऐसी जगह पर होती हैं जहां कीट को पहुंचने के लिये फूलों के नर या मादा भाग को छूना पड़ता है।
- कुछ पौधें के परागकण कंटीले या चिपकने वाले होते हैं।
- मादा भाग भी चिपकने वाला हो ताकि वह पराग को पकड़ सके।
- बहुत से छोटे कीट फूलों पर रात में शरण लेते हैं।

पालतु मधुमक्खियों का परागण क्रिया में उपयोग

प्रकृति में परागण क्रिया स्वभाविक तौर पर होती आ रही थी लेकिन कुछ कारणों से प्राकृतिक तौर पर पाए जाने वाले कीटों की संख्या में कमी आ गई है। इसका मुख्य कारण जंगलों को काटकर कृषि व बागवानी अपनाना है, जिससे इन कीटों के वास स्थानों व भोजन मिलने वाले पौधे में कमी हो गई है। इसके साथ ही कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से भी प्राकृतिक परागणकर्त्ता कीटों की संख्या में कमी हुई है। अध्कितर क्षेत्रों में पर-परागण वाली नकदी फसलों की खेती अधिक की जा रही है। इस लिए प्राकृतिक कीटों की संख्या में कमी व फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए परागण में पालतू मधुमक्खियों (देसी और विदेशी प्रजाति) की आवश्यकता पड़ रही है।

मधुमक्खियों को कृषि व बागवानी फसलों के परागण के लिए प्रयोग किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार केवल मधुमक्खियों द्वारा परागण से विभिन्न फसलों की 10-12 गुणा अधिक पैदावार लेना संभव है। भारत में किए गए शोधकार्यों के अनुसार मधुमक्खियों द्वारा परागण से सरसों के बीज उत्पादन में 131 प्रतिशत, सुरजमुखी के बीज में 3600 प्रतिशत, प्याज में 178 प्रतिशत, गाजर में 500 प्रतिशत व मूली में 700 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

ड्रैगन फ्रूट की खेती एवं स्वास्थ्य लाभ

दीक्षा गेडाम, राजेश चौरे
(पी.एच.डी. शोधार्थी) शेर-ऐ-कश्मीर यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज एंड टेक्नोलॉजी श्रीनगर (जम्मू कश्मीर)

ड्रैगन फ्रूट एक फल है जिसे हिंदी में पिताया के नाम से जाना जाता है। इसका रंग हल्का गुलाबी होता है। यह स्वाद में तरबूजे और किवी की तरह लगता है। यह अमेरिका की अलग-अलग प्रकार की कैक्टस प्रजातियों का देशज फल है। किन्तु पिताया आमतौर पर जीनस स्टेनोकेरेस के फल को कहते हैं जबकि जीनस हिलोकेरेस के फल को पितहाया या ड्रैगन फल कहते हैं। ड्रैगन फल की खेती दक्षिण पूर्व एशिया में, संयुक्त राज्य अमेरिका, कैरिबियन, ऑस्ट्रेलिया, मध्य अमेरिका और दुनिया के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में की जाती है। यह प्रमुख रूप से मलेशिया, थाईलैंड, फिलीपींस, संयुक्त राज्य अमेरिका और वियतनाम जैसे देशों में पैदा किया जाता है. भारत में इसका उत्पादन 1990 के दशक की शुरुआत में हुआ और इसे घरेलू उद्यानों के रूप में उगाया जाने लगा. विभिन्न राज्यों के किसानों द्वारा खेती के लिए ड्रैगन फ्रूट का इस्तेमाल बढ़ने से उसकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ी है। गुजरात सरकार ने इस फल को 'कमलम्' नाम दिया है।

भारत में कहां-कहां पैदा होता है ड्रैगन फ्रूट

वर्तमान में ड्रैगन फ्रूट ज्यादातर कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में पैदा किया जाता है. महाराष्ट्र में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय अजैविक तनाव प्रबंधन संस्थान, बारामती के एक हालिया अनुमान में पाया गया कि भारत के विभिन्न राज्यों में 3,000-4,000 हेक्टेयर में ड्रैगन फलों की खेती की जाती है। देश में हर साल लगभग 12,000 टन फल का उत्पादन होता है इसकी खेती के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है. इसे विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है. ड्रैगन फ्रूट की तीन मुख्य किस्में हैं-सफेद गूदा वाला, गुलाबी रंग का फल, लाल गूदा वाला, गुलाबी रंग का फल और सफेद गूदा वाला पीले रंग का फल।

मध्य प्रदेश में ड्रैगन फ्रूट की खेती

मध्यप्रदेश में सबसे पहले निमाड़ क्षेत्र में ड्रैगन फ्रूट की खेती लघु पैमाने पे शुरू की गई एव खेती में मुनाफे को देखते हुए प्रदेश के अन्य जिलो में भी किसानों को इसकी खेती के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।प्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले के किसान श्यामलाल ने वर्ष 2018 में 0.500 हेक्टेयर क्षेत्र में 2000 पौधों का रोपण किया एव 20 लाख प्रति वर्ष की आय प्राप्त की।

ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए जलवायु

उष्ण कटिबंधीय जलवायु इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम है, यह उसर भूमि एव उच्च तापमान जैसी परिस्थितियों में उगाया जा सकने वाला पौधा है। स्थान जहा वार्षिक वर्षा 50 सेंटीमीटर एव तापमान 20-30 डिग्री सेल्सियस हो वहा इसकी खेती की जा सकती है।

खेत की तयारी कैसे करें

अच्छी जुताई वाली मृदा को कार्बनिक खाद एव बालू के साथ 1:1:1 के अनुपात में तैयार करे एव 60 सेमी.×60 सेमी. ×60 सेंमी परिणाम के गड्ढों की खुदाई करें एवं इन गड्ढों को मिट्टी एव खाद के साथ 100 ग्राम सुपर फॉस्फेट से भर लें।

प्रवर्धन एव रोपण कैसे करें

ड्रैगन फ्रूट के प्रवर्धन की सबसे आम विधि कटिंग है। इसे बीज से भी प्रवर्धित किया जा सकता है लेकिन बीज द्वारा किया गया प्रवर्धन अधिक समय लेता है एव जनक पौधे के वास्तविक गुणों को बनाए रखने में भी अक्षम है इसलिए यह विधि व्यावसायिक उत्पादन के लिए सही नही है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए जनक पौधे से 20 सेंटीमीटर लम्बी कटिंग का चयन कर खेत में रोपण करें।

स्वास्थ्य लाभ

कोलेस्ट्राल: ड्रैगन फ्रूट में कोलेस्ट्राल की मात्र कम होती है न और इसमें कोई हानिकारक कोलेस्ट्राल नही होता है जो मानव शारीर को नुकसान पहुंचाता है ।

वसा: ड्रैगन फ्रूट में असंतृप्त वसा की एक छोटी मात्र होती है इस फल के खाद्य भाग में कई बीज और नट्स में प्रोटीन होता है।

रेशा (फाइबर): पाचन तंत्र की सफाई के गुणों के लिए ड्रैगन फ्रूट सबसे अच्छा माना जाता है। फल में अत्यधिक मात्र में फाइबर होने के कारण यह कब्ज के किये एक अच्छा उपाय है।

एंटीओक्सिडेंट

ड्रैगन फ्रूट एंटीओक्सिडेंट का एक प्राकृतिक स्रोत है, एंटीओक्सिडेंट किसी भी मुक्त कणों से एक व्यक्ति को बाहर निकालने में मदद करते हैं जो कैंसर के साथ-साथ अवांछित स्वास्थ्य को नुकसान पहुचाते है।

गठिया

ड्रैगन फ्रूट जोड़ों की जलन को कम करने में मदद करता है, इसलिए इसे एंटी इन्फ्लामेंटरी फ्रूट कहा जाता है। एक बार जोड़ों की सूजन कम हो जाने पर गठिया के लक्षणों को कम किया जा सकता है।

हृदय स्वास्थ्य

हृदय स्वास्थ्य के लिए ड्रैगन फलों का सबसे बड़ा लाभ है। यह शरीर से खराब कोलेस्ट्राल के स्टार को कम करता है एव अच्छे कोलेस्ट्राल के स्तर को बढ़ता है। यह फल एकल संतृप्त वसा का एक अच्छा स्रोत है जो हमारे हृदय को अच्छी स्थिति में रखने में मदद करता है ।

मधुमेह के नियंत्रण में

ड्रैगन फ्रूट में उच्च मात्र में फाइबर होता है जो व्यक्ति को अपने रक्त शर्करा के स्टार को स्थिर करने में मदद करता है। यह उच्च शर्करा वाले खाद्य पदार्थों को खाने के बाद अक्सर देखि जाने वाली शर्करा से भी बचाता है ।इसलिए यह मधुमेह रोगी के लिए अच्छा है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

पौधों की वृद्धि पर पोटेशियम के घुलनशीलता का प्रभाव

प्रियंका खाती, मनोज परिहार
राहुल देव, जयदीप बिष्ट
लक्ष्मीकांत

भाकृअनुप-विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखंड -263601

आशा कुमारी

भाकृअनुप- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, हजारीबाग, झारखंड-825405

बढ़ती हुई आबादी और बढ़ते खाद्य संकट को देखते हुए हमें अपने कृषि प्रणाली को पर्याप्त और आत्मनिर्भर बनाने की जरूरत है। हमारे वर्तमान कृषि उत्पादन ज्यादातर रासायनिक उर्वरकों के उपयोग पर निर्भर है, जो कि हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाब डालते हैं।

भारतीय कृषि के अधिकांश क्षेत्रों में मिट्टी में नाइट्रोजन, पोटेशियम, और फॉस्फोरस की भारी कमी देखीं गई हैं, जो पौधों के विकास को प्रभावित करती है। इन प्राथमिक पोषक तत्वों में, पोटेशियम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मिट्टी से प्राप्त पोटेशियम का 98 त्न हिस्सा गैर-विनिमेय या खनिज रूप में है ,वहीं 2% विनिमेय और मिट्टी में घुलनशील है। विनिमेय और घुलनशील पोटेशियम एक दूसरे के संतुलन में रेहते है। कृषि गहनता, अधिक उपज देने वाली किस्म और पोटेशियम का असंतुलित निषेचन मिट्टी में पोटेशियम की कमी को जन्म देता है ,जो अंततः कृषि उत्पादन को कम करता है।

मिट्टी में पोटेशियम की बड़ी मात्रा के बावजूद, इसका केवल 2% पौधों के लिए उपलब्ध है और शेष भाग कसकर बाध्य गैर-विनिमेय या खनिज रूप में मौजूद है। सतत उत्पादन हेतु मिट्टी में अनुकूलतम पोटेशियम स्थिति बनाए रखने के लिए, पोटेशियम-घुलनशील जीवाणुओं का उपयोग एक व्यवहार्य विकल्प हो सकता है। मृदा जीवाणु, सक्रिय रूप से पोषक तत्व परिचालन में भाग लेते हैं और खनिज, स्थिरीकरण, भंडारण और पोषक तत्वों की निकासी करके पोटेशियम उपलब्धता को प्रभावित करते हैं। विभिन्न अध्ययनों से, यह बताया गया हैं कि विभिन्न सैप्रोफाइटिक बैक्टीरिया, एक्टिनोमाइसेट्स और कुछ कवक उपभेद मिट्टी से कम घुलनशील रूपों को प्रभावी ढंग से घोल सकते हैं। इस संबंध में, बैक्टीरिया के विभिन्न समूहों जैसे कि एसिडिथियोबासिलस फेरोक्सिडंस, बैसिलस म्यूसिलगिनोस स्यूडोमोनस, बर्कहोल्डरिया और पैनेसिलिलस स्पेसीज को अलग-अलग खनिजों से पोटासियम को घुलनशील बनाने के लिए सफलतापूर्वक सूचित किया जाता है। ये पोटाश - घुलनशील बैक्टीरिया (के. एस. बी.) पोटाश खनिजों की घुलनशीलता में सुधार करके कार्बनिक या अकार्बनिक एसिड का उत्पादन करते हैं, या सिलिकॉन कॉम्प्लेक्स के के मध्यम से पोटेशियम आयन को घुलनशील रूप देते है। बैक्टीरिया के अलावा, एस्परगिलस, एस्परगिलस नाइजर और अरबसक्यूलर माइकोराइजा (ए.एम.) जैसे कवक भी पोटाश बढ़ाने के लिए संभावित उम्मीदवार पाए गए हैं। पोटैशियम को घुलनशील बनाने वाले जीवाणुओं के नियमित प्रयोग से पौधों (जैसे सरसों, मक्का, ककड़ी, काली मिर्च और तंबाकू) की वृद्धि और उपज पर सकारात्मक परिणाम देखे गए हैं। के. एस. बी. का प्रयोग पर्यावरण के अनुकूल है जो रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को सीमित करते है।

भारतीय मिट्टी में पोटेशियम की स्थिति

मृदा में, नाइट्रोजन और फास्फोरस के बाद, पोटेशियम पौधे के विकास के लिए तीसरा सबसे आवश्यक तत्व है। खनिजों के विनिमय स्थलों के साथ मजबूत आत्मीयता होने की वजह से मिट्टी में पोटैशियम कम गतिशील होता है। भारतीय नक्शे के अनुसार मिट्टी के पोटाश की 20% जिलों में कम, 52% मध्यम और 28% में उच्च उपलब्धता है। इससे पहले 1980 के दशक में, यह माना जाता था कि भारतीय मिट्टी पोटेशियम से भरपूर है और इसका प्रयोग पौधों में खराब प्रतिक्रिया दिखाती है। परंतु समय के साथ, नाइट्रोजन और फास्फोरस उर्वरक आवेदन में वृद्धि हुई, जबकि पोटाश की खपत में गिरावट आई।

मिट्टी में पोटेशियम, के रूप उपलब्धता और निर्धारण

सातवें सबसे प्रचुर तत्व के रूप में पोटेशियम पृथ्वी की छाल का 2.4% (वजन आधार) बनाता है। पृथ्वी की छाल में इसकी अधिकता के बावजूद, पौधे की उपलब्धता बहुत कम है और यह मात्र 1-2% है। पोटेशियम तीन पूलों में मिट्टी में स्थिर रहता है जैसे कि मिट्टी का घुलन पूल, विनिमेय पूल और खनिज या गैर-विनिमेय पूल। पहले दो पूल, अर्थात् घुलनशील और विनिमेय पूल पोटाशियम की तुरंत आपूर्ति करते हैं, जबकि गैर-विनिमेय पूल फसलों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बहुत सीमित या लगभग नगण्य राशि में पूर्ति करता है। मिट्टी में पोटाशियम के सबसे सामान्य खनिज अभ्रक और फेल्डस्पार हैं, जो पोटाशियम को अपक्षय प्रक्रिया द्वारा छोड़ते हैं, जो मिट्टी और जलवायु कारकों पर निर्भर होते हैं। पोटाशियम निस्तारण के अलावा, मिट्टी के खनिजों में घुलनशील रुप का निर्धारण भी मिट्टी में उनकी उपलब्धता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकता है। पोटाशियम निस्तारण और निर्धारण एक सिस्टम में संतुलन के साथ होता है। हालांकि, पोटाश निर्धारण पूरी तरह से अपरिवर्तनीय कदम नहीं है, लेकिन पोटाश रिलीज की प्रक्रिया बहुत धीमी है। पोटाश निर्धारण क्रिया या निस्तारण विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है, जैसे पीएच, अन्य धनायनों की सघनता, चूने की मात्रा, नमी, कटियन-विनिमय क्षमता, कार्बनिक पदार्थ, आदि। उपर्युक्त वर्णित कारकों के अलावा,पोटाशियम का निर्धारण काफी हद तक मिट्टी

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

में पोटाशियम और हाइड्रोजन आयन की सांद्रता पर निर्भर करता है। मिट्टी में हाइड्रोजन आयन की सांद्रता इसके पी.एच को कम कर देती है। पोटाशियम का निर्धारण और विमोचन इसके प्रबंधन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण कदम है।

सब्जियों में पोटेशियम की कमी

पौधों में पोटेशियम की कमी के विशिष्ट लक्षणों में भूरे रंग का झुलसना और पत्ती की युक्तियों के साथ-साथ पत्ती शिराओं के बीच क्लोरोसिस (पीलापन) शामिल हैं।पोटेशियम की कमी वाले पौधों में पौधों की वृद्धि, जड़ विकास और बीज और फलों का विकास आमतौर पर कम हो जाता है।उदाहरण के लिए टमाटर में पोटेशियम की कमी से टमाटर का फल पूरी तरह से नहीं पकताऔर चकत्तों में हरा रहता है।

पोटाशियम उपलब्धता हेतु जिम्मेदार मृदा कारक

- मिट्टी की संरचना के लिए मिट्टी के खनिज पदार्थ, वनस्पति, प्रकार और मात्रा शामिल है। मिट्टी के तीन प्रकार (मस्कॉवीट, इलिटिक, और मोंटमोरोलाइट) हैं, जो पोटेशियम को पकड़ते हैं और इसे उपलब्ध कराते हैं।
- सबसॉइल परतों का घनत्व और सबसॉइल में पोटेशियम की मात्रा। यदि सबसॉइल घने परतों को विकसित करता है, तो जड़ों की पैठ कम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप पोटेशियम की उपलब्धता में कमी होती है।
- मिट्टी का तापमान कम होने से पोटेशियम की उपलब्धता कम हो जाती है और पौधों द्वारा उसकी ग्रहण शक्ति कम हो जाती है। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार पोटैशियम लेने के लिए 85° F तापमान को महत्वपूर्ण माना गया है
- मृदा में नमी का होना पौधों में पोटाशियम के लिए आवश्यक है और ये पौधे की जड़ों से ऊपर उठती है। नमी टर्गर दबाव को विकसित करती है जो पौधों में पोटाशियम की कुशल आपूर्ति और प्रसार के लिए आवश्यक है।
- जड़ों की श्वसन के लिए मिट्टी की जोताई अनिवार्य है जो आगे चलकर पोटाशियम के कुशल लेनदेन में मदद करता है।

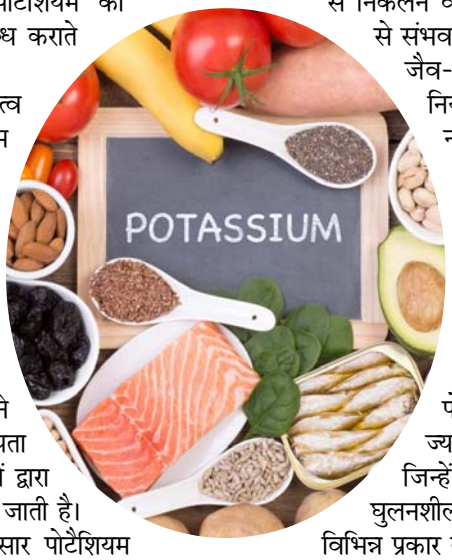

पोटेशियम उपलब्धता के लिए ज़िम्मेदार प्रमुख पौध-घटक

- पोटाशियम लेने की क्षमता फसलों की किस्में पर भी आधारित होती हैं जो मुख्य रूप से जड़ प्रणाली और उनके सतह क्षेत्र पर निर्भर करती हैं। उदाहरण के लिए, रेशेदार और शाखित मूल संरचना के कारण घास, पोटेशियम के अपक्षय के लिए अधिक क्षमता प्रदर्शित करते हैं।
- पौधों में कटियन-विनिमय क्षमता मिटटी से पोटाशियम की पकड़ को दर्शाता है। उच्च कटियन-विनिमय क्षमता यानि ज्यादा पोटाशियम भंडारण।
- जड़ प्रणाली का प्रकार और चयापचय क्षमता भी पौधों द्वारा पोटाशियम उपलब्धता ग्रहण प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

पोटेशियम के घुलनशीलता एवं संग्रहण के लिए जिम्मेदार पी.जी.पी. आर

पौधों की वृद्धि से जुड़े सूक्ष्मजीव राइजोबैक्टीरिया, पौधों की जड़ों के द्वारा पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराते है, जो उनके उचित वृद्धि और विकास के लिए जरूरी है। यह जुड़ाव जीवाणुओं को आकर्षित करने वाले पौधों की जड़ों से निकलने वाले विशिष्ट स्राव के माध्यम से संभव है। ये पी.जी.पी.आर विभिन्न जैव-रासायनिक चक्रों को नियंत्रित करते हैं जिनमें से नाइट्रोजन, कार्बन, फॉस्फोरस और पोटेशियम सबसे महत्वपूर्ण हैं। मिट्टी में पोटाशियम के पर्याप्त स्तर के बावजूद, इसकी जटिल प्रकृति पौधों के लिए पर्याप्त स्तर पर इसकी उपलब्धता में बाधा डालती है। पोटेशियम के ये कॉम्प्लेक्स ज्यादातर सिलिकेट होते हैं, जिन्हें पी.जी.पी.आर के द्वारा घुलनशील किया जाता है। सूक्ष्मजीव विभिन्न प्रकार के कार्बनिक या अकार्बनिक एसिड का उत्पादन करते हैं जो की पोटैशियम को घुलंशील बनाते हैं ।

निष्कर्ष

आम तौर पर, सूक्ष्मजीवों के माध्यम से पोटाशियम की घुलनशीलता ऑक्सीजन, पीएच,खनिजों के प्रकार और बैक्टीरिया के उपभेदों जैसे विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है। इस प्रकार, के.एस.बी के माध्यम से पोटाशियम की घुलनशीलता के लिए आवश्यक इष्टतम स्थितियों का भविष्य में मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। के. एस.एम , मिट्टी का महत्वपूर्ण घटक है और ये न केवल पोटाशियम की उपलब्धता को बढ़ाने बल्कि मिट्टी में पोटाशियम को धीरे धीरे घुलनशील बनाने में कारगर हैं। मिट्टी में सूक्ष्मजीवों के समावेश से फसल की वृद्धि और विकास संभव है।

केंद्रीय कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर का ऐलान

पशुपालकों की आय बढ़ाएगी सरकार

नई दिल्ली। केंद्रीय कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर दो दिवसीय दौरे पर मध्यप्रदेश के श्योपुर जिले पहुंचे. इस दौरान उन्होंने श्योपुर में चल रहे विकास कार्यों का निरीक्षण किया. केंद्रीय मंत्री ने पशु पालकों की आय बढ़ाने के लिए भी प्रयास करने की बात कही. बता दें कि अपने दौरे के पहले दिन केंद्रीय कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर आदिवासी विकास खंड कराहल के गोरस इलाके में पहुंचे. कराहल में आयोजित कार्यक्रम में कृषि मंत्री ने ऐलान किया कि सरकार श्योपुर के गोरस इलाके में पशु पालकों की आय बढ़ाने का प्रयास करेगी. बता दें कि गोरस इलाके में बड़ी मात्रा में गिर नस्ल की गायों का पालन किया जाता है. कृषि मंत्री ने गायों के संरक्षण और संवर्धन की योजना बनाने की बात कही. उन्होंने कहा कि देश में अभी गुजरात में गिर नस्ल की गाय के दूध से पशु पालकों की आय में बढ़ोत्तरी हो रही है, ठीक वैसे ही श्योपुर के गोरस में गिर गाय पालकों की आय बढ़ाने के प्रयास किए जाएंगे. कृषि मंत्री ने श्योपुर के जिला पंचायत कार्यलय में बने निषादराज भवन में 3 करोड़ 39 लाख रुपए कि लागत से होने वाले विकास कार्यों सहित पेंट्रीकार ओर सामुदायिक भवन का भूमि पूजन किया. केन्द्रीय कृषि मंत्री प्रदेश बीजेपी द्वारा शुरू किए गए बूथ विस्तारक कार्यकम के तहत कराहल के मालीपुरा गांव भी पहुंचे और वहां उन्होंने बीजेपी के बूथ कार्यकर्ताओ को संबोधित किया. इसके बाद कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर मालीपुरा में ही बीजेपी के पुराने और बुजुर्ग कार्यकर्ता मंसाराम सुमन के घर पहुंचे और वहां अन्य भाजपा नेताओं के साथ मंसाराम सुमन के घर भोजन किया. उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में बीजेपी में टिकटों को लेकर चल रही उठा-पटक को लेकर उन्होंने कहा कि किसे टिकट देना है किसे नहीं, यह चुनाव प्रबंध समिति का फैसला है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

जैविक खेती, एक चिरस्थायी विकल्प

निधि लूथरा
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली

सरकार ने वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य रखा है। पिछले कई महीनों से कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय और कृषि वैज्ञानिक किसानों की आय बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में जैविक खेती की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। जैविक खेती को बढ़ावा देने और कृषि रसायनों पर निर्भरता को कम करने के लिये परम्परागत कृषि विकास योजना की शुरुआत की गई है।

परम्परागत कृषि विकास योजना के तहत सरकार मिट्टी की सुरक्षा और लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिये जैविक खेती को बढ़ावा दे रही है। जैविक खेती को चिरस्थायी होने की कसौटी पर खरा उतरने के लिए ये गुण काफी है।

एक तरफ हम किसानों की आय दोगुनी करने का स्वप्न देखते हैं और दूसरी तरफ कम लागत वाली जैविक खेती को अपनाने से कतराते हैं। अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष द्वारा भारत में किये गए अध्ययनों से इस बात की पुष्टि हुई है की जैविक खेती अपनाने से किसानो की आय में वृद्धि होती है। जैविक खाद्य पदार्थो की कीमत परम्परागत पदार्थो की तुलना में 10-100 प्रतिशत तक अधिक होती है। जहाँ तक बेनिफिट कॉस्ट अनुपात की बात है , तो जैविक खेती में यह अनुपात 1.5 तक पाया गया है। 21 वर्षीय **D.O.K.** के परिक्षण के परिणाम हों या अमेरिका के रोडेल संस्थान का 20 वर्षीय परिक्षण हों, भारत में **ICRISAT** द्वारा 7 वर्षीय दीर्घ प्रक्षेत्र परिक्षण हो या **ICAR** द्वारा 4 वर्षीय जैविक खेती की नेटवर्क परियोजना, सभी के परिणाम यह सत्यापित करते है की पहले 2-4 वर्ष की परिवर्तन अवधी को छोड़कर कम लागत वाली जैविक प्रक्रिया उत्पादन के मामले में पारम्परिक खेती के समकक्ष रही और तो और मृदा में पोषण तत्व, ऊर्जा की खपत, जल संधारण, सूखे

अवस्था में उत्पादन, आर्थिक लाभ, मानव श्रम और न जाने कितने पैमानों पर पारम्परिक खेती से बेहतर सिद्ध हुई। हम सभी इस बात से भली-भांति अवगत है की 60 के दशक में किसान एक बीघा में एक कुंटल उर्वरक डालता था। अब वह 5-10 क्विंटल डालकर अधिक पैदावार करता है। 5-10 गुना ज्यादा उर्वरक डालने के बावजूद भी भारत की मिट्टी में 40% जिंक, 12.6% आयरन, 4.5% कॉपर, 6% मैगनीज़ और 22.8% बोरोन की कमी पाई गई। 38-50% जल प्रदूषण का कारण हानिकारक रसायन ही हैं। 90% से ज्यादा अमोनिया का उत्सर्जन कृषि से होता है। ऐसी स्थिति में बिना जैविक खेती को अपनाये हमारे जीवित रहने की परिकल्पना भी असंभव है।

हरित क्रान्ति की सफलता ने हमे खाद्यान्न उत्पादन में तो आत्मनिर्भर बना दिया परन्तु अतिरिक्त लाभ कमाने की प्रवर्ति से रासायनिक उर्वरको व रासायनिक कीटनाशकों के अवैज्ञानिक प्रयोग से हर घर आज एक कैंसर वार्ड बनता जा रहा है। जैविक खेती अधिकाधिक बाह्य संसाधनों के उपयोग पर आश्रित नहीं है। इसके पोषण के लिए जल की अनावश्यक मात्रा भी वांछित नहीं है। पूरी विधा प्राकर्तिक प्रक्रियाओं में सामंजस्य व उनके एक दूसरे पर प्रभाव पर आधारित है। इससे न तो मृदा जनित तत्वों का दोहन होता है और न ही मृदा की उर्वरता का ह्रास होता है।

जैविक खेती का अर्थ ही प्रकर्ति के साथ जुड़कर खेती करना है, इसीलिए निःसन्देय जैविक खेती एक चिरस्थायी विकल्प है। विश्व को जैविक खेती भारत देश की देन है। भारत जहाँ 1.4 करोड़ जैविक उत्पादको द्वारा लगभग 3.5 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में जैविक खेती की जा रही ही। भारत जो 5,97,000 उत्पादकों के साथ सर्वाधिक उत्पादकों वाला देश है। भारत जो वर्ष 2007 में 77,000 टन जैविक कपास उत्पादन के साथ सर्वाधिक जैविक कपास उत्पादक देश बन गया। जैविक खेती का नीति निर्धारण प्रक्रिया में प्रवेश तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में उत्कृष्ट उत्पाद के रूप में पहचान इसकी बढ़ती महत्ता का प्रतीक है। इस विधा से न केवल स्वस्थ वातावरण, उपयुक्त उत्पादकता तथा प्रदूषण मुक्त खाद्य प्राप्त होगा अपितु इसके द्वारा सम्पूर्ण ग्रामीण विकास की एक नयी, स्वपोषित, स्वाबलंबी प्रक्रिया शुरू होगी। अतः जैविक खेती ही है हल, आज नहीं तो कल, बनाये रखे फसल की गुणवत्ता, करे मृदा में पोषक तत्वों की सुरक्षा, जल, जमीन और वायु का गुण भी सुधारें, हानिकारक रसायनो का शरीर में स्तर भी गिरावे, हर पैमाने पे है स्वास्थ व प्रकर्ति के अनुकूल और हर उस मर्ज़ से मुक्ति दें जो है मानव के प्रतिकूल।

जैविक खेती के फायदे

- जैविक खेती करने पर भूमि, जल और वायु प्रदुषण बहुत कम होता है।
- इसमें किसी भी प्रकार के रासायनिक पदार्थो, कीटनाशकों और केमिकल फर्टिलाइजर्स का इस्तेमाल नहीं होता है।
- जैविक खेती करने पर पौष्टिक और जहर मुक्त भोजन का उत्पादन होता है।
- जैविक खेती से उपजने वाले खाद्य पदार्थों का स्वाद भी नियमित रूप से उपजे खाद्य वस्तुओं से बेहतर होता है।
- खाद्य वस्तुओं में कई प्रकार के विटामिन भी पाए जाते हैं।
- इससे उपजने वाले वस्तु पशु चारा के रूप में भी अच्छे होते हैं।
- जैविक खेती करने पर मिट्टी के पोषण को भी बढ़ावा मिलता है और इससे मिट्टी की उर्वरता में भी सुधार होता है।
- यह किसानों के लिए काफी लाभदायक होता है क्योकि इसमें पानी का इस्तेमाल बहुत कम होता है और साथ ही महंगे रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का कोई उपयोग नहीं किया जाता है।
- यह पर्यावरण के अनुकूल होता है साथ ही ऋद्धस्त्रह्वष्द्ग, **Reuse** और **Recycle** को भी बढ़ावा देता है।
- जैविक खेती ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के कई अवसर प्रदान करता है जिससे किसानों और मजदूरों की आर्थिक हालातों में भी सुधार होता है।

जैविक खेती के नुकसान

- इसमें खाद्य पदार्थों की उत्पादकता बहुत कम होती है।
- पारंपरिक खेती की तुलना में जैविक खेती से फसलों की उपज काफी कम होती है।
- जैविक खेती में आधुनिक मशीनों के इस्तेमाल के बजाय मानवीय श्रम की आवश्यकता ज्यादा होती है।
- इसमें किसानों को कुशलता के साथ ही जैविक खेती के सभी घटकों का ज्ञान भी रखना पड़ता है।
- पारंपरिक खेती के मुकाबले ऑर्गेनिक खेती करने में ज्यादा समय लगता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

संतरे का फसलोत्तर प्रबंधन एवं मूल्य संवर्धन

रोहित कुमार पी.एच.डी. शोध छात्र (उद्यान) फसलोत्तर प्रबंधन, भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु (कर्नाटक)

डॉ. प्रिया अवस्थी (प्रोफेसर) (उद्यान) फसलोत्तर प्रौद्योगिकी, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बांदा (उ.प्र.)

संदीप गौतम एम.एस.सी.(कृषि) कृषि अर्थशास्त्र, आचार्य नरेंद्र देव कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

संतरे के उत्पादन में विश्व में पहले स्थान पर ब्राजील देश आता है यहां पर विश्व का लगभग 176.18 लाख टन उत्पादन होता है। विश्व क्षेत्रफल की दृष्टि से संतरे का दूसरा तथा उत्पादन की दृष्टि से तीसरा स्थान आता है। भारत में इसकी खेती लगभग 4.5 लाख हेक्टेयर भूमि पर की जाती है जिससे संतरे का उत्पादन लगभग 35.5 लाख टन होता है। भारत में संतरे की खेती करने वाले प्रमुख राज्य-महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, असम, राजस्थान, मिजोरम, मेघालय, नागालैण्ड और कर्नाटक हैं।

भारत में महाराष्ट्र के नागपुर और राजस्थान के झालावाड जिले में संतरे की खेती प्रमुख रूप से की जाती है। संतरा ठण्डा, शक्तिवर्द्धक, अम्ल, मीठा, स्वादिष्ट, खण्टा-मीठा, क्षुधावर्द्धक (भूख बढ़ाने वाला) है। गर्मी में संतरे की खपत सबसे ज्यादा होती है। संतरे के अन्दर विटामिन-ए.,बी.,सी एवं कैल्शियम भरपूर मात्रा में पाया जाता है यह पाचन में अत्यन्त लाभकारी होती है संतरा खून को साफ करता है। संतरे के रस या इनसे बनाये गये विभिन्न प्रकार के उत्पाद जैसे- मार्मलेड, कैंडी, स्क्वैश, रेडी टू सर्व अत्यन्त पौष्टिक होते है। संतरा तन एवं मन को प्रसन्नता देने वाला फल है। जिस व्यक्ति की पाचन शक्ति खराब हो उनको संतने का रस 3 गुना पानी में मिलाकर देना चाहिए, संतरा सुबह खाली पेट या खाने के 5 घंटे बाद सेवन करने से ज्यादा लाभ मिलता है। संतरे में विटामिन-सी भरपूर मात्रा में पाया जाता है एक व्यक्ति को जितने विटामिन-सी की आवश्यकता होती है वह एक संतरा रोजाना खाने से पूरी हो जाती है।

फसलोत्तर प्रबन्धः किसान बीज की बुवाई से लेकर फसल तैयार होने तक जीतोड मेहनत करके उत्पादन करता है लेकिन किसान का काम यही खत्म नही होता संतरे की फसल उगाने के बाद उन्हे बाजार तक पहुचाने के लिए बड़ी जिम्मेदारी का काम होता है। संतरे के खराब रख-रखाव और परिवाहन तथा भण्डारण के कारण लगभग 15-40% तक नुकसान की संभावना होती है। अतः इसके परिणाम स्वरूप या संतरे की तुडाई के उपरान्त बेहतर प्रबन्ध करके इस नुकसान से बचा जा सकता है।

फलों की तुडाईः स्तंरे के फलो की तुडाई जनवरी से माच

के महीने तक की जाती है जब फलो का रंग पीला और आकर्षक दिखाई दे तब उन्हें डंठल सहित काटकर अलग कर लेना चाहिए जिससे फल ज्यादा समय तक ताजा रहता है। संतरे की तुड़ाई के उपरान्त साफ गीले कपड़े से पोछ लें और किसी छायादार स्थान पर रख दे तथा बाद में उसे वैक्स के घोल से उपचारित करने से ये सिकुड़ते नहीं और इनका रंग लंबे समय तक अच्छा रहता हैं।

- सामान्यतौर पर संतरे की तुड़ाई क्लीपर से की जाती है।
- फलो की तुड़ाई करने से पहले सिंचाई न करें इससे उत्पाद की गुणवत्ता और भंडारण क्षमता दोना में सुधार होता है।
- संतरे के वृक्षों में कटाई-छटाई करने से फलों का आकार बढ़ता है और घुलनशील ठोस तथा अम्लीयता घटती है।
- फलों की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए पोटेशियम मैग्निशियम व जस्ते का अनुप्रयोग करें। ■ संतरे की तुड़ाई के पश्चात सड़न को रोकने के लिए 0.1% बेनलेट व 0.1% बाविस्टिन का 15 दिन के अन्तराल पर तुड़ाई से पहले तीन छिड़काव करना चाहिए।

तुड़ाई कब करें

- संतरा को दूर बाजार में भेजने के लिए फल पकने से कुछ समय पहले तुड़ाई करे जबकि नजदीक बाजार के लिए पूरी तरह पकने पर ही तुड़ाई करनी चाहिए। ■ फलों की तुड़ाई दिन के ठंडे समय पर करनी चाहिए विशेषतया सुबह के समय तुड़ाई करें ■ वर्षा के दौरान व तुरन्त बाद तुड़ाई नही करनी चाहिए क्योकि यह सूक्ष्म जीवाणुओ के गुणन की सबसे उपयुक्त समय होता है। ■ संतरे को वर्षा के दौरान तोड़ने से उनकी त्वचा स्पिथ तथा आसानी से टूटने वाली हो जाती है।

धुलाई व छटाईः फलो की धुलाई करने से बाहरी आकर्षण के साथ-साथ हानिकारक जीवों एवं विषैले रसायनो का प्रभाव समाप्त हो जाता है। फलों की छटाई उनके आकार, रंग, कोमलता को ध्यान में रखकर करना चाहिए। छटाई का मुख्य उद्देश्य मूल्य को बढ़ाना है।

बैक्सिंगः संतरे को वैक्स के घोल से उपचारित करने पर ये सिकुड़ते नही है और रंग रूप अच्छा रहता है जिससे फल लम्बे समय तक ताजे बने रहते है।

बाजार में दो तरह के वैक्स उपलब्ध हैं

- डब्लू-जो केवल नमी को संरक्षित रखता है। ■ ओ-जो नमी संरक्षण के साथ-साथ फलों में चमक बढ़ाता है।

पूर्वशीतनः अधिक तापमान पर फल जल्दी खराब हो जाते है इसलिए 10^0C से कम तापमान बनाये रखने के लिए पानी में बर्फ डालकर ठंड पानी का छिड़काव करे या पैकिंग के ऊपर बर्फ रखना चाहिए।

पैकिंगः संतरे को भण्डारण या विपणन के दौरान सुरक्षित रखने के लिए अच्छी पैकिंग की आवश्यकता पड़ती है। पैकिंग सुरक्षा देने वाली हो तथा ठण्डा रखने के लिए हवा के उचित संरक्षण की व्यवस्था हो । संतरा की उचित पैकिंग के लिए गत्ते के बाक्स या लकड़ी के बक्से का प्रयोग में लाना चाहिए।

परिवाहनः संतरा एक मोटे छिल्के की वजह से अत्याधिक सुरक्षित होता है जो उसे परिवहन के लए काफी मजबूत फल बनाता है। सही यातायात साधनो का प्रयोग करना चाहिए लकड़ी के बाक्स या गत्ते के बाक्स में अधिक भराव नही करना चाहिए। वाहन धीरे-धीरे तथा सही ढंग से चलाना चाहिए।

- संतरे के परिवाहन हेतु शीत वाहनों का उपयोग करना चाहिए

मूल्य संवर्धनः सामान्यतौर पर यह देखा गया है की बाजार में संतरे का मूल्य कम मिलता है लेकिन संतरे का रस या रस से बने उत्पाद को बाजार में बेचा जाए तो अच्छा मूल्य मिल सकता हैं

संतरे के रस से बने उत्पाद

रेडी टू सर्व : संतरे के रस से यह एक प्रकार का उत्पाद है जिसमे कम से कम 10 प्रतिशत फल का रस होता है और कम से कम 10 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (शर्करा) होता है इस उत्पाद को बिना पानी के मिलाये पिया जाता है।

स्क्वैशः स्क्वैश एक प्रकार का संतरे से बना उत्पाद है जिसमें कम से कम 40% कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (शर्करा) तथा 25% फल का रस होता है। इस उत्पाद का पीने से पहले जल से साथ मिश्रण कर लिया जाता है।

नेक्टरः इसको उपयोग करने से पहले पानी के साथ मिश्रण नही किया जाता। इसमें 20% फल का भाग तथा 15% कुल घुलनशील ठोस पदार्थ होता है। नेक्टर हमेशा ताजे फलो के रस से बनाया जाता है। तथा इसमें कोई भी परिरक्षक या कृत्रिम रंग नही मिलाया जाता।

सिरपः यह उत्पाद स्क्वैश पेय के समान है तथा इसको उपयोग करने से पहले पानी के मिश्रण में मिला लेना चाहिए। इसमें लगभग 25 प्रतिशत फल का रस और 65 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (शर्करा) होता है।

बारले वॉटरः यह एक प्रकार का पेय पदार्थ है संतरे के रस से बनाया जाता है। इसको उपयोग करने से पहले जल के मिश्रण में घोल लेना चाहिए, इसमे 25 प्रतिशत फल का रस एवं 30 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (शर्करा) होता है।

जैमः जैम एक प्रकार का अपारदर्शक उत्पाद है जिसमें कम से कम फल के रस का 45 प्रतिशत चीनी के हर 55% का उपयोग किया जाता हैं तथा इस उत्पाद में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 68% होता है तथा इस उत्पाद का **PH** 3.35-3.70 होता है।

मार्मालेडः यह जैली उत्पाद की तरह एक फल जैली है जिसमें सेट जेल में फल या छिल्के के टुकडे निलम्बित होते हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

फलों की संरक्षित खेती

देवी दर्शन (विद्यावाचस्पति शोधार्थी)
बागवानी और वानिकी महाविद्यालय, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना (पंजाब)

पूजा (विद्यावाचस्पति शोधार्थी)
बागवानी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी वि.वि. नौणी, सोलन (हिमाचल प्रदेश)

प्रदीप कुमार बैरवा
(विद्यावाचस्पति शोधार्थी) उद्यानिकी और वानिकी महाविद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)

ग्रीनहाउस विभिन्न तरह की आवरण सामग्रियों जैसे कांच या प्लास्टिक की छत और अक्सर कांच या प्लास्टिक की दीवारों के साथ बनी एक संरचना है; यह गर्म होता है, क्योंकि सूर्य द्वारा भेजे जा रहे दृश्य सौर विकिरण को पौधों, मिट्टी और भवन के भीतर स्थित अन्य चीजों द्वारा अवशोषित किया जाता है। कांच इस विकिरण के लिए पारदर्शी है। ग्रीनहाउस के भीतर गरम संरचनाएं और पौधे इस ऊर्जा को फिर से अवरक्त में विकीर्ण करते हैं, जिससे कांच आंशिक रूप से अपारदर्शी हो जाता है और वह ऊर्जा ग्रीनहाउस के भीतर कैद हो जाती है।

हालांकि, प्रवाह के कारण उष्मा का कुछ नुकसान होता है, लेकिन इससे ग्रीन हाउस के अंदर ऊर्जा (और इस तरह तापमान) में विशुद्ध वृद्धि होती है। गर्म आंतरिक सतहों के ताप से गरम हुई हवा को छत और दीवार द्वारा ईमारत के अन्दर बरकरार रखा जाता है। इन संरचनाओं का आकार छोटे से शेड से लेकर बहुत बड़ी इमारतों तक हो सकता हैं। ग्रीनहाउस को कांच के ग्रीनहाउस और प्लास्टिक ग्रीनहाउस के रूप में विभाजित किया जा सकता है। प्लास्टिक में ज्यादातर पीई फिल्म और पीसी या पीएमएमए (च्डड।) की कई दीवारों वाली चादरें प्रयुक्त की जाती है। कांच के व्यावसायिक ग्रीनहाउस में अक्सर सब्जियों या फूलों के लिए उच्च तकनीक वाली उत्पादन सुविधाएं होती हैं। कांच के ग्रीनहाउस स्क्रीनिंग स्थापना, गर्म करने, ठंडा करने, प्रकाशमान करने जैसे उपकरणों से परिपुर्ण होते हैं और यह एक कंप्यूटर द्वारा स्वचालित रूप से नियंत्रित हो सकता है।

संरक्षित खेती के लिए जिम्मेदार कारक

- जलवायु और मिट्टी की स्थिति
- चुनी गये फलो के प्रकार।
- किसान के पास उपलब्ध संसाधन
- सरकार प्रायोजित योजनाएं, यदि उपलब्ध हों
- गुणवत्तापूर्ण उत्पाद बेचने के लिए उच्च बाजार की उपलब्धता।

लाभ

- पौधों के लिए अनुकूल और सूक्ष्म जलवायु प्रदान करता है।
- सभी मौसमों में खेती की स्थितियां संभव हैं।
- प्रति यूनिट बेहतर गुणवत्ता के साथ उच्च उपज।
- नमी के कारण कम सिंचाई की आवश्यकता होती है।
- जैविक (हवा, बारिश, बर्फ और ओले) और अजैविक तनाव (रोग और कीट) से बचाव।

ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस के प्रकार

कम लागत वाला ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस: यह एक पारदर्शी पॉलिथीन से ढका हुआ या फुलाया हुआ ढांचा है जो की 200 माइक्रोन (800 गेज) पारदर्शी पॉलिथीन का बना होता है। उच्च वर्षा से बाचाव के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

मध्यम लागत वाला ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस: एक मध्यम लागत वाला ग्रीनहाउस जिसे 15 मिमी व्यास के जीआई पाइप (कक्षा बी) के साथ थोड़ी अधिक लागत से जाता है जो मुख्यत क्रांसेट के आकर का होता है। फ्रेम और आवरण सामग्री का जीवन काल लगभग 10 वर्ष और 3 वर्ष होता है।

उच्च लागत ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस: यह एक गुंबद या शंकु वाली संरचना है जिसका निर्माण लोहे/एल्यूमीनियम से किया जाता है। फसलों की आवश्यकता के अनुसार आर्द्रता और प्रकाश स्वचालित रूप से नियंत्रित होते रहते है। दीवारें का तल और किनारे एक हिस्सा कंक्रीट से बना होता है और अत्यधिक टिकाऊ होता है।

अन्य सुरक्षात्मक संरचनाएं

प्लास्टिक लो टनेल: प्लास्टिक लो टनेल ग्रीनहाउस का लघु रूप हैं जो (0.75- 1.0 मीटर) ऊंचाई का बना होता है। जो की पौधे को बारिश, हवाओं, कम तापमान, ठंढ और कीट से रक्षा करता है।

नेट हाउस: नेट हाउस संरचनाएं समतल बनावट के साथ 3 मीटर ऊंचाई की होती है। यह उपयुक्त छायांकन क्षमता (35-90 छाया) के छायांकन जाल से ढका हुआ होता है।

संरक्षित खेती के लिए उपयुक्त फल

फलों की फसल या विधि	फल या किस्म का नाम और अंतरालन
एकल तना फल	केला, पपीता, अनन्नास
शाखायुक्त तना	स्ट्रॉबेरी, आम, आड़ू, अंगूर, लोकाट
खुबानी	सन गोल्ड
केला	नेंद्रन (2-2 मीटर), रोबस्टा (1.2-1.2 मी.)
स्ट्रॉबेरी	सेलबा
अंगूर	थॉमसन सीडलेस ब्लैक हमबर्ग
पपीता	सोलो (1.5-1.5 मी.), मार्दोल(1.5-2.0 मी.)

संरक्षित खेती के तहत उच्च घनत्व रोपण

उद्देश्य

- निकट दूरी द्वारा प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की आबादी बढ़ाकर प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाना।
- यह कई समशीतोष्ण फलो में सफलतापूर्वक किया गया क्योंकि कटाई और छंटाई और पौधों के आकार को नियंत्रण के लिये बौना रूटस्टॉक और रासायनिक विनियमन की उपलब्धता है।
- उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय फलों में संकुचित सफलता के कारण निम्नलिखित है।
- बौने रूटस्टॉक की कमी।
- साल भर में पौधों की जोरदार वृद्धि।
- कटाई और छंटाई के लिए खराब प्रतिक्रिया।

संरक्षित के तहत फर्टिगेशन और उनकी एकाग्रता

नाइट्रोजन-यूरिया, अमोनियम नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट (150-200 पीपीएम)

फास्फोरस- फॉस्फोरिक एसिड, मोनो अमोनियम फॉस्फेट (50 पीपीएम)

पोटैशियम- पोटेशियम क्लोराइड, पोटेशियम नाइट्रेट, पोटेशियम सल्फेट, मोनो पोटेशियम (200-400 पीपीएम)

कटाई और छंटाई:

छंटाई: पौधों की वृद्धि के आकार और दिशा को नियंत्रित करने वाली भौतिक तकनीकों को कटाई के रूप में जाना जाता है।

शीर्ष की ऊंचाई: पहली शाखा से जमीन से ऊंचाई
कम शीर्ष-0.7-0.9, मध्यम शीर्ष- 0.9-1.2, उच्च शीर्ष- 1.2

मचान शाखाओं की संख्या: 5-7, मचानों का वितरण-45-70 सेंटीमीटर

कटाई: अवांछित पौधों के हिस्सों को हटाना, जैसे कली, अंकुर, जड़ आदि को छंटाई के रूप में जाना जाता है।

कटाई के प्रकार

फ्रेम प्रूनिंग: यह छँटाई एक पौधे को उसके प्रारंभिक वर्षों में आकार और रूप प्रदान करने के लिए की जाती है।

रखरखाव प्रूनिंग: यह छँटाई उत्पादन स्तर और समान प्रदर्शन को बनाए रखने के लिए की जाती है।

औसत उपज

फलों का नाम	खुला परिस्थिति	संरक्षित परिस्थिति
केला	60 टीएम/हे./वर्ष	70-100 टीएम/हे./वर्ष
पपीता	40-50 टन /हे./ वर्ष	3 साल में 200 टीएम/हे. से अधिक
आम	400-600 फल/पेड़/वर्ष	6 साल में 37.5 टीएम/हे.
अनानास	10-15 टन/हे./वर्ष	40 टीएम/हे./ वर्ष

जड़ी-बूटी औषधीय अदरक के पौधे की खेती उद्यमिता और प्रतिरोधक क्षमता से भरपूर

अनिल कुमार सिंह
(सहायक प्राध्यापक) पंडित दीनदयाल उपाध्याय उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी, पूर्वी चम्पारण

रंजु कुमारी (सहायक प्राध्यापक)
सह वैज्ञानिक (पौधा प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग)
नालंदा उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय, नालंदा-803113

कृष्ण कुमार (अधिष्ठाता), पंडित दीनदयाल उपाध्याय उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी, पूर्वी चम्पारण -845429

विकास कुमार (संविदा शिक्षक), पंडित दीनदयाल उपाध्याय उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी, पूर्वी चम्पारण

अदरक का वानस्पतिक नाम जिंजिबर ओफिसेनाली है। इसके करीब 150 प्रजातियाँ उष्ण एवं उपोष्ण एशिया और पूर्व एशिया में पायी जाती है। इसे मशाला फसल भी कहा जाता है। भारत में अदरक की खेती करीब 136 हजार हेक्टर में की जाती है। जो उत्पादित अन्य मशाला फसलों में प्रमुख है। इसकी मांग विदेशो में अत्यधिक होने के कारण इसकी खेती विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का एक अच्छा श्रोत है।

भारत अदरक उत्पादन में पूरे विश्व का आधा भाग पूरा करता है। इसकी खेती व्यवसायिक फसल के रूप में मुख्यतः केरल, उड़ीसा, आसाम, उश्रर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, आंघ्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार में किया जाता है। जिसमें 25 प्रतिशत मात्र केरल में उत्पादन होता है जो देश में अदरक उत्पादन में प्रथम स्थान रखता है। इसका उपयोग मशाला, औषधि तथा सौंदर्य प्रसाधन में किया जाता है। इसका सेवन करने से शरीर में शक्ति एवं स्फुर्ति प्रदान होती है साथ ही यह कई प्रकार के रोगों में भी लाभ पहुँचाता है।

जलवायु एवं मिट्टी

अदरक एक उष्णकटिबंधीय फसल है। इसकी खेती के लिये गर्म एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिये 1500 से 1800 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा होना आवश्यक होता है। अदरक की बुआई से लेकर अंकुरण तक हल्की बारिस एवं पौधों के वृद्धि - विकास के समय बीच-बीच में भारी बारिस की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिये औसत तापमान 25 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त होती है। गर्मियों में जहाँ का तापमान 35 डिग्री सेल्सियस होता है वहाँ पर बगानों में अन्तवर्ती खेती के रूप में की जाती है। अदरक को हल्की छाया में बुआई करने से खुले खेत की अपेक्षा 25 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

भुमि का चुनाव

अदरक की खेती ऊँची एवं मध्यम भूमि में की जाती है। इसकी खेती सभी प्रकार के मिट्टी में की जाती है परन्तु बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जीवाश्मों की प्रचुरता हो एवं जल निकासवाली हो सबसे ज्यादा उपयुक्त होती है। वैसी मृदा जिसका पीएच मान 5.6 से 6.5 होती है अदरक उत्पादन के लिये उपयुक्त मानी जाती है। एक ही भूमि में बार-बार अदरक की खेती करने से मृदा जनित रोगकारकों में वृद्धि होती है इसलिये फसल चक्र अपनानी चाहिए।

खेत की तैयारी

अदरक के कन्द जमीन में मिट्टी के नीचे बनते है इसलिये मिट्टी काफी बारीक एवं मुलायम होनी चाहिए जिसके लिये चार ये पाँच क्रास जुताई की आवश्यकता होती है। पहली जुताई मिट्टी पलट हल से एवं शेष जुताई कल्टीवेटर या देसी हल से करनी चाहिए।

प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाना अनिवार्य होता है। अंतिम जुताई के समय 250 से 300 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट के साथ 5 किलोग्राम पी0 एस0 बी, 5 किलोग्राम एजोटोबैक्टर, 5 किलोग्राम ट्राईकोडर्मा विरीडी को मिलाकर प्रति हैक्टर (हे0) की दर से खेत में समान रूप से बिखेरकर मिट्टी में मिला देनी चाहिए। इसी समय खेत से खरपतवार निकालकर खेत को ढ़ालूनुमा बना कर सिंचाई हेतु क्यारियाँ बना लेनी चाहिए।

आधुनिक किस्में

प्रभेद	रेशा (प्रतिशत में)	तेल (प्रतिशत में)	सूखा अदरक (प्रतिशत में)	ओलेरेसिन (प्रतिशत में)	परिपक्वता अवधि (दिन में)
सुप्रभा	4.4	1.8	20.5	8.9	229
सुरभि	4.0	2.1	23.5	10.2	225
सुरूचि	3.8	2.0	23.5	10.0	218
हिमगिरि	6.4	1.6	20.6	4.5	230
महिमा	2.36	6.0	9.0	19.0	200

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

उन्नत प्रभेद

प्रभेद	औसत ऊपज (क्विं./हे.)	रेशा (प्रति. में)	सूखा अदरक (प्रति. में)
मारन	232.25	10.04	22.10
नदिया	239.00	8.13	20.40
रियो-डि-जिनेरियो	293.5	5.19	16.25
नारासपट्टनम	185.21	4.64	21.90
कारकल	121.90	7.78	23.12
वर्द्धमान	144.39	2.22	21.90

बीजोपचार

अदरक फसल को बीज जनित, मृदा जनित एवं वायु जनित तीनों प्रकार के रोगकारकों से नुकसान पहुँचता है। अतः आवश्यकता है कि बीज को उपचारित कर ही रोपा करें। प्रति किलो हल्दी के प्रकन्द को उपचारित करने के लिये 5 ग्रा0 ट्राईकोडर्मा विरीडी, 5 ग्रा0 स्यूडोमोनास फ्लेरेसेंस एवं 2 मिली0 ह्यूमिक अम्ल की आवश्यकता होती है। उपरोक्त सभी को 1 ली0 पानी, 10 मिली ली0 गोमुत्र एवं 250 ग्रा0 गाय के गोबड़ का तैयार घोल में मिलाकर बीज को उपचारित कर बुआई करनी चाहिए।

बुआई का समय

अदरक की बुआई प्रायः मई एवं जून के महीने में की जाती है। जहाँ पर सिंचाई की सुविधा हो वहाँ पर अप्रैल से मई के महीने में की जाती है परन्तु 15 मई से 30 मई तक का समय अदरक बुआई हेतु सबसे उपयुक्त है। सिंचित क्षेत्रों में फरवरी माह में बुआई करने से अधिक ऊपज प्राप्त होता है जबकि पहारी क्षेत्रों में 15 मार्च के आसपास। चन्द्रमा के दक्षिणायन की स्थिति में बुआई करने से अच्छा लाभ प्राप्त होता है क्योंकि इस समय बुआई करने से ब्रह्माण्डीय ऊर्जा जड़ के आसपास प्रभावी होता है जिससे जड़ का विकास अच्छा होता है।

बीज दर

2.5 से 5 सेंमी. लम्बा प्रकन्द जिसका वजन 20 से 25 ग्राम हो तथा जिसमें कम से कम तीन गांठ हो बुआई हेतु उपयुक्त होता है। प्रति हेक्टर 1,40,000 पौधा कि आवश्यकता होती है जिसके लिये लगभग 20 से 25 क्विंटल बीज पर्याप्त होता है। अदरक की खेती में लागत का 40 से 45 प्रतिशत भाग प्रकन्दों (बीज) में ही लग जाता है। अतः बीज की प्रजाति, मात्रा एवं प्रकन्दों के आकार पर विशेष घ्यान रखनी चाहिए।

बुआई की विधि

प्रायः अदरक की बुआई दो प्रकार से की जाती है समतल विधि एवं क्यारी विधि।

समतल विधि

इस विधि में खेत को समतल एवं ढ़ालुनुमा बना लिया जाता है ताकि खेत में पानी का जमाव न हो। प्रत्येक 3 मीटर की दूरी पर खेत में 25 से 30 सेंटीमीटर नाली का निर्माण कर लिया जता है। मेड़ का निर्माण पूरब से पश्चिम की तरफ करनी चाहिए। प्रकन्द की बुआई हेतु कतार से कतार की दूरी 30 सें0मी0 एवं पौधा से पौधा की दूरी 20 सें0मी0 रखनी चाहिए। तथा प्रकन्द को 5 सेंटीमीटर जमीन के नीचे बोनी चाहिए।

क्यारी विधि

इस विधि में खेत की अंतिम जुताई के बाद खेत को समतल कर लिया जाता है तत्पश्चात 1 मीटर चैड़ा एवं 3 मीटर लम्बा एवं 12 से 15 सेंटीमीटर ऊँची उठी क्यारी का निर्माण कर लिया जाता है दो क्यारी के बीच 50 सेंमी0 चैड़ी नाली जल निकास के लिये बनाया जाता है। क्यारियों में कतार से कतार की दूरी 30 सेंमी0 एवं पौधा से पौधा की दूरी 20 सेंटीमीटर पर प्रकन्द की बुआई की जाती है। प्रकन्द की बुआई 5 से 6 सेंटीमीटर की गहराई में की जाती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

अदरक एक लम्बी अवधि की फसल है जिस कारण इसे अत्यधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। खेत की पहली जुताई के समय 250 से 300 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद के साथ पी.एस.बी. 5 किलोग्राम, एजोटोबैक्टर 5 किलोग्राम को मिलाकर उपयोग करनी चाहिए। अन्तिम जुताई के समय 20 किलोग्राम नेत्रजन, 50 किलोग्राम फास्फेट एवं 80 से 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टर की दर से उपयोग करना चाहिए। बुआई के 25 से 30 दिनों के अन्दर 20 किलोग्राम नेत्रजन प्रति हेक्टर की दर से उपरिवेशन करना चाहिए। पुनः 50 से 60 दिनों के बाद 20 किलोग्राम नेत्रजन का प्रति हेक्टर की दर से दूसरा उपरिवेशन करना चाहिए। पहली जुताई में सुक्ष्मपोषक तत्व मिश्रण 12 से 15 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से उपयोग करनी चाहिए। यह लौह तत्व संवेदनशील फसल है अतः 60 से 90 एवं 90 से 120 दिन के अन्दर फेरस सल्फेट 5 से 10 ग्राम के साथ 1 से 1.5 ग्राम सिट्रिक अम्ल या 10 से 15 बूंद नींबू डालकर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

अदरक एक खरीफ फसल है। अतः इसे सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन वर्षा नहीं होने की अवस्था में आवश्यकतानुसार प्रत्येक महीने में दो बार सिंचाई करनी चाहिए। अदरक में प्रकन्दों का बनना सितम्बर माह में प्रारम्भ होता है। इस समय नमीं की अत्यन्त आवश्यकता होती है। माह सितम्बर से नवम्बर तक माह में दो से तीन सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

यह लम्बी अवधि की फसल है अतः इसकी खेती में चार से पाँच सिंचाई की आवश्यकता होती है। प्रत्येक सिंचाई के बाद जब खेत निकाई - गुड़ाई लायक हो जाय तब निकाई- गुड़ाई करनी चाहिए। निकाई- गुड़ाई करने से जड़ के आसपास वायु का संचार अच्छा होता है जिससे प्रकंद का विकास अच्छा होता है। बीज जमाव के पहले एलाक्लोर या डायक्लोरोमेट खरपतवारनाशी 2 किलोग्राम को 800 से 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर खेत में समान रूप से प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करनी चाहिए। अदरक के बगल से कल्ले निकलने पर इसे खुरपी की सहायता से काट देते हैं। ऐसा करने से प्रकन्द का आकार बड़ा होता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

कीट प्रबंधन में कृषि अवशेष प्रबंधन का महत्व

मनोज कुमार, नागेन्द्र कुमार
अमित कुमार

कीट विज्ञान विभाग, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा (समस्तीपुर) बिहार

श्याम बाबू साह

बिहार कृषि विश्वविद्यालय सबौर (भागलपुर) बिहार

मानव प्रजाति अपने दैनिक भोजन वस्त्र एवं आवास की आवश्यकता को पूर्ण करने हेतु पौधों के एक खास समूह का नियमित प्रबंधन करता है, जिसे कृषि की संज्ञा दी गई है। ऐतिहासिक काल में जब मानव स्थाई रुप से एक जगह रहना प्रारम्भ किया तभी से संगठित खेती की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। इससे विभिन्न प्रकार के नाशीजीवों की समस्या उत्पन्न हुई जिसमे अन्य प्रकार के पौधे (खरपतवार) छोटे-मोटे जीव-जन्तु (कीट) एवं रोग उत्पन्न करने वाले कारकों का व्यवधान प्रारम्भ हो गया।

कालान्तर मे बढते हुए जनसंख्या दबाव के कारण कृषि क्षेत्र मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और अन्य जीवों का चाहे या अनचाहे कृषि क्षेत्र से भोजन लेना आवश्यक हो गया, जिससे नाशीजीवो की संख्या में वृद्धि होती गई तथा सफल फसलोउत्पादन मे नाशीजीव प्रबंधन एक आवश्यक शस्य क्रिया बन गया। जैसे हमारे अधिकांश फसल अपना जीवन चक्र एक वर्ष या इससे कम में पूरा करते है वैसे ही इनको प्रभावित करने वाले कीट कारक भी अपना जीवन चक्र एक वर्ष या इससे कम समय मे अपना जीवन काल पूरा करते है। इसी प्रकार फसलों एवं कीटों के समयानुकुलता समान होने पर कोई कीट विशेष उस फसल विशेष की कीट समस्या बनती चली गई। फसल अवधि के पूरा होने के पश्चात उसके विभिन्न भाग स्वरुप अगली फसल तक सुरक्षित होते है। ठीक उसी प्रकार कीटो के विभिन्न स्वरुप जैसे अण्डा, इल्ली या डिम्भक स्वरुप मे विपरीत मौसम मे सुरक्षित रहते है एवं अनुकुल मौसम आने पर ये सुसुप्तावस्था से सक्रिय होकर पुनः अपना जीवन चक्र प्रारम्भ कर देते हैं।

सभी कीटों के जीवन यापन हेतु एक खास प्रकार के मौसम की अनुकुलता आवश्यक है। लेकिन, अगर मौसम अनुकुल नही है अथवा भोजन उपलब्ध नही है ऐसी अवस्था मे कीट निष्क्रीय अवस्था में चला जाता है जिसे निष्क्रीयता मौसम के आधार पर नामांकरण किया गया है। जैसे शीत निष्क्रियता, ग्रीष्मनिष्क्रीयता तथा डायपास जैसे तकनीकी नामांकरण किए गए है। सुसुप्तावस्था अक्सर भूमि में अथवा फसल अवषेष में होते है। कुछ दषक पहले तक, जब दुनिया में जिवाष्म इंधन का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर नही था तब तक इन फसल अवषेष का इस्तेमाल पशुओं को हरे चारे की उपल्बद्धता कम होने की अवस्था में सुखे चारे के रूप मे या परिमार्जित चारे के रूप में (साईलेज) किया जाता था। किन्तु बढ़ते पैदावार, सधन खेती एवं मशीनीकरण के दौर में जानवरो की संख्या घटने लगी जिससे फसलों के दोयम दर्जे के उत्पाद का सदुप्रयोग समुचित ढ़ग से नही हो पा रहा है। अन्यथा दोयम उत्पादो का उपयोग पशुपालन एवं रसोई इंधन में किया जाता रहा है। इन दिनों जीवाष्म इंधन के प्रयोग से एवं पशुपालन के कम होते रिवाज की वजह से फसल अवशेषों को जलाने की परंपरा चल गई है। जो वातावरणीय प्रदूषण का एक प्रमुख कारक बनकर सामने आया है। यहाँ दो प्रकार का प्रदूषण साथ हो रहा है, एक तो जिवाष्म इंधन के धुआँ के कारण तथा दूसरा कृषि अवउत्पाद के जलाने से। दोनों प्रकार के प्रदूषण सभी जीवों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। कृषि अवउत्पाद को जलाने से उसमे उपस्थित सुसुप्त लधु एवं सुक्ष्म जीवों के जीवन समाप्त हो जाते हैं, जिससे वायुमण्डलीय संतुलन तथा खाद्य श्रृंखला प्रभावित होता हैं। कृषि अवउत्पाद जलाने के कारण भूमि मे पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव जो हमारे मित्र है, जो इन अपषिष्टे पर जीवन यापन करते है सब समाप्त हो जाते है। वातावरण मे अनेक प्रकार के ऐसे जीव है जो अपना जीवन कई फसलो पर व्यतीत करते हैं। फसल समाप्त होने पर निकटवर्ती अन्य पौधो पर अपना जीवन व्यतीत करता है जिनमे हमारे मित्र जीवों की संख्या कही ज्यादा है, हानिकारक जीवों की तुलना में दूसरी तरफ फसलो से उत्पन्न अवशिष्टों के रूपांतरण के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले कार्बनिक पदार्थ नष्ट हो जाते है। जिससे हमारे वातावरण में कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र जैसे प्रकृति मे होने वाले कई प्रकार के पुनः चक्रण कार्य प्रभावित हो कर वातावरण में परोक्ष रूप से हानि पहुँचाते है। कृषि मे प्रयोग होने वाले यन्त्रो की दक्षता को भी बढ़ाने की आवश्यकता है। आज के कृषि में दिन-प्रतिदिन कम्बाईनड हार्वेस्टर का प्रचलन बढ़ता जा रहा है जो फसलों को काफी ऊँचाई से कटाई करता है जिससे ठूंठ (पराली) काफी बच जाता है। यह ठूंठ अगली फसल के बुवाई एवं बढ़वार मे समस्या पैदा करती है। यदि कम्बाईनड हार्वेस्टर की दक्षता बढ़ाया जाय जो जमीन से 3-5 सेंमी. की ऊँचाई से कटाई करे तो छोटे ठूंठ जमीन मे दबाया या सडाना आसान हो जायेगा।

यदि फसल के अवउत्पाद का प्रयोग पशुपालन तथा कृषि के अन्य सहचर व्यवसाय मे उपयोग नही होता है तो इसे कागज, दफ्ती तथा कार्टून बनाने जैसे कार्य के आलावे पैकिंग सामग्री के रूप में भी प्रयोग किए जा सकते है। हाफ फिल्ड हार्वेस्टर नामक मशीन फसल अवशेष (पराली) को जमीन से 3 सेंमी उपर से काटता है जो आसानी से पुनः चक्रण प्रकिया में खाद बनाने का कार्य करता है।

छोटे किसानो की संख्या अधिक होने की वजह से छोटे कृषि यंत्रो को बढ़ावा दिया जाय जो कृषि और किसान के परिमाण के अनुसार कारगर एवं उपयोगी होना चाहिए। कई अन्य देशों मे इस तरह के छोटे यन्त्र प्रयोग किए जाते है जिस तकनीक का प्रयोग अपने देश में भी किया जा सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में एक माईक्रोवियल कनसोसीयम तैयार किया गया है जो फसल अवशेष को सड़ाने की गति को त्वरित करता है। कुछ फसल अवशेष जो नरम होते है अगले आने वाली फसल बुआई के उपरांत पहली सिंचाई के समय यूरिया नामक खाद का निवेशण करने पर अतिशीघ्र गलना प्रारम्भ हो जाता है जो कि खेत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाने के साथ भूमि की उर्वरता बढ़ाने मे सहयोगी होता है। जो भूमि के संरचना सुधार, जलधारण क्षमता का विकास तथा मित्र सूक्ष्म जीवो की संख्या मे बढ़ोत्तरी करता है। फसलों के अवउत्पादों का चारे के रूप मे प्रयोग हेतु साईलेज जैसी तकनीको का प्रचार प्रसार बढाने से भी इसकी समस्या का निदान संभव है। कुछ दशक पूर्व कृषि के अवउत्पाद जो कि सीधे उपयोग में नही आते थे जाड़े में पशुबाड़ा को गर्म रखने हेतु जलाने का प्रचलन था अथवा प्रक्षेत्र के एक किनारे में रखकर ठेर छोड़ देते थे जो कि वर्षा के मौसम में धीरे-धीरे सड़कर खेत में कार्बनिक पदार्थ में बढ़ोतरी करते थे । इस तकनीको को भी पुनः प्रयोग मे लाया जा सकता है। खाद बनाने के

प्रक्रिया जो नवीनतम तथा त्वरित प्रक्रिया जैसे वर्मीकम्पोंटिग जैसी प्रक्रिया का लाभ भी लिया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है जिससे इन कार्यो को प्रोत्साहित किया जाय तथा इसमे जो बाधक है उन प्रक्रियाओ को हतोत्साहित की जाय। कृषि व्यवसाय में धटती आमदनी से युवा वर्ग कृषि से विमुख होते जो रहे है। जो कृषि कार्य मे लगे है उनमें भी एक बड़ा तबका सहृदयता से इस कार्य मे संलिप्त नहीं हैं। अतः कृषि की कई बारिकीयो दूर है। आजकल एक स्थिति ऐसी बन गई है कि किसी छोटे जीव जन्तु को देखते ही कहते है कि मेरे खेत मे कीटो की समस्या बढ़ गई। जबकि वास्तविकता यह है कि सभी कीट हमारे दुष्मन नही है। कीटो की एक बड़ी जमात हमारे पर्यावरण मे लाभदायक भूमिका निभाते है। कुछ कीटों की समस्या है। अन्धाधुन्ध नियंत्रण की वजह से पिछले 4-5 दषक मे कीटों की विविधता मे भारी कमी आई है जिससे हानिकारक कीटों की समस्या बढ़ी है। अतः कृषि परिवेश में पाये जाने वाले मित्र कीटों और शत्रु कीटों की पहचान एवं उसके जीवन चक्र की जानकारी के द्वारा भी उनके बेहतर प्रबंधन को अंजाम दिया जा सकता है।

Jointly Organized by:

3rd FarmTechAsia®

Jointly Organized by:

11 12 13 14 March 2022

Venue: Agriculture College Ground, IGKV University, Raipur, Chhattisgarh

Largest International Agriculture Exhibition of Chhattisgarh

Shri Bhupesh Baghel
Hon'ble Chief Minister
Government of Chhattisgarh

गढ़बो नवा छत्तीसगढ़

Shri Ravindra Choubey
Hon'ble Agriculture Minister
Government of Chhattisgarh

BOOK YOUR STALL NOW!

International Exhibition & Conference On Agriculture, Horticulture, Dairy & Food Processing Technology

GLIMPSES OF FARMTECH ASIA 2019

Visitors Attended from More than 16 States of India

More than 160 Companies Participated

Participation of Companies From India and 6 other Countries

PARTICIPANTS FROM COUNTRIES

GERMANY INDIA ISRAEL ITALY JAPAN SWEDEN USA

Organiser: Co-Organiser: Supported by:

Stall Booking Contact Details:

Mr. Pradeep Thakor Mobile: +91 9998889578 Email: mktg@farmtechasia.com | Mr. Savan Shah Mobile: +91 7575007740 Email: fta@farmtechasia.com

www.farmtechasia.com

पौधरोपण: मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने इंदौर प्रवास के दौरान रेसीडेंसी कोठी में पौधा-रोपण किया। मुख्यमंत्री श्री चौहान ने अमरूद और बरगद का पौधा लगाया।

भ्रमण: उप संचालक कृषि छिंदवाड़ा जितेन्द्र सिंह एवं कृषि वैज्ञानिकों के संयुक्त भ्रमण दल ने ग्राम चन्हियाकलां व मेहकीताल में कृषकों की सरसों व अन्य फसलों का किया अवलोकन।

पोषण वाटिका: केविके पन्ना के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ. पी.एन. त्रिपाठी के मार्गदर्शन में कार्यालय स्थिति पोषण वाटिका ईकाई में संकर गोभी किस्म कैरोटिना लगाई गई। इस किस्म का फूल पीला होने के साथ-साथ पोषक तत्वों से भरपूर होता है।

सम्मान: गणतंत्र दिवस के मौके पर कलेक्टर नीमच मयंक अग्रवाल द्वारा कृषि विभाग मनासा में बी.टी.एम. रघुवीर सिंह लोढ़ा को वर्ष 2021 में विभागीय कार्यों में विशिष्ट उल्लेखनीय कार्य पर प्रशस्ति देकर सम्मानित किया गया।

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2019-2021

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

फरवरी - 2022

आज़ादी का अमृत महोत्सव

देश के लिए बलिदान होने वाले वीर सपूतों को शत्-शत् नमन।

श्री नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

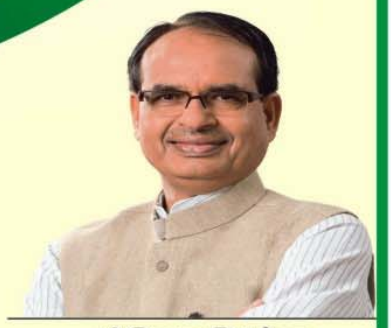

श्री शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

73वें गणतंत्र दिवस की प्रदेशवासियों को हार्दिक शुभकामनाएँ

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

जनभागीदारी से आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

D18222-21

आकल्पन - मध्यप्रदेश माध्यम/2022

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान संपादक राजू गुर्जर द्वारा सर्वोदय प्रिंटिंग प्रेस, महाडिक की गोठ, जनक हॉस्पिटल के पीछे कम्पू रोड, लश्कर-ग्वालियर से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास दीनदयाल नगर ग्वालियर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: राजू गुर्जर. मोबा. 9425101132, 94245-22090